महाप्रभु श्री कल्याणराय जी

भविष्यके प्रकाशन

भविष्यमें आनन्दकन्द (सटीक) का प्रकाशन कागजकी सुविधानुसार कराया जायगा। आनन्दकन्दकी संस्कृत भूमिका (भाषानुवाद) रसक्रियामें प्रवेशेच्छुओंके लिये रससंस्कार आदिका परिचय (अनुभूत विधि) दर्शानेमें अति उपयोगी है। इसलिए उसे "रसशास्त्र प्रवेशिका" का नाम देकर संस्कृत मूल और भाषा टीका सहित प्रकाशन करानेका प्रबन्ध किया गया है। पुस्तक प्रेसमें दी है। आशा है सितम्बरमें ग्राहकोंको मिल सकेगी।

कागज माइज वाइट प्रिंटिंग पेपर २०×३० १६ पेजी २८ पोंड।

मूल्य सजिल्द २) रु० पोस्ट खर्च अलग।

छप रहा है! छप रहा है!! छप रहा है!!!

कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमालाका २५ वाँ रत्न

रसोपनिषत्

"रसहृदयतंत्रम्" ग्रंथमे रसायन और धातुवादका विवेचन किया गया है, इस विषयका विशेष विवेचन "रसोपनिषत्" मे मिलता है। यह ग्रन्थ वर्तमानमें अप्राप्य है।

हिन्दी टीका और वक्तव्य सह ग्रन्थ छपनेके लिये प्रेसमें दिया जा चुका है। इसमें रस, रसायन और धातुवादपर विशेष प्रकाश डाला गया है। इसकी पृष्ठ संख्या लगभग ७०० होगी और इसके अन्तर्गत श्लोक संख्या २६०० होगी।

* कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन, कालेड़ा *

के मूल संस्थापक एवं जन्मदाता

पू० स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराज

श्रीधन्वन्तरये नमः

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।
सर्वकार्येष्वन्तरङ्गं शरीरस्य हि रक्षणम् ॥

संपादकः—
आचार्य नित्यानन्द
भू० पू० उपाध्यक्ष, निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ
अध्यक्ष, राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन
भू० पू० सहमन्त्री, नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन,
अध्यक्ष, बिरला आयुर्वेद संग्रहालय, पिलानी (राजस्थान)

सहायक सपादकः—
राजवैद्य पं० शांतिलाल प्रा० जोशी
रसायनाचार्य.
प्रबन्ध संपादक—
वैद्यराज बद्रीनारायण शर्मा
आयुर्वेदाचार्य, काव्यतीर्थ, आयुर्वेद रत्न

वर्ष ६.अङ्क ९-१०] कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर) [मई-जून १९५९

पारदो रसराट् स्वयम्

रचयिता—वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, प्रधान वैद्य
कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन, कालेड़ा (अजमेर)

रसो ब्रह्म रसो ह्यात्मा रसो जीव इति श्रुतिः ।
रसश्च पंचभूतात्मा रसो जीवस्थितित्रये ॥ १ ॥

रसना रसरूपा च सरसा देहधातवः ।
रसशास्त्रे ऽप्यसौ व्याप्तः लोहधातुषु वै रसः ॥ २ ॥

रसो सानुषु गच्छत्सु शुकपिकालिवाजु वै ।
गोरसेषु रसो मुख्यश्चाम्रेषु कुसुमेष्वपि ॥ ३ ॥

रसः श्रृंगारनृत्येषु ह्यौषध्यश्च रसान्विताः ।
रसः प्रेमस्वरूपश्च युगले मिथुनेऽप्यसौ ॥ ४ ॥

अमृतं रसरूपं स्यात् सागरा रससप्लुताः ।
नहि हीनं जगत्सर्वं पारदेन रसेन वा ॥ ५ ॥

रस हीनाश्च ते लोकाः निर्जीवा नीरसा मताः ।
रसो मुख्यस्तु सर्वत्र पारदो रसराट् स्वयम् ॥ ६ ॥
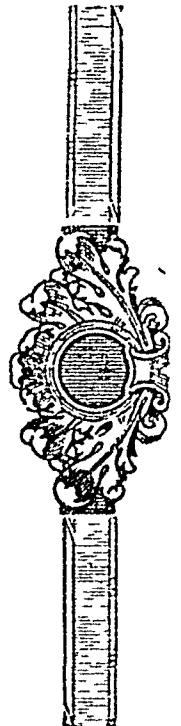
★ कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवनकी महत्ता ★

(रचियता—श्री शिवशंकरजी पाण्डेय "शिव" मैनपुरी)

गोपाल है जहा, वहां पर कृष्ण कैसे न हो,
काव्य-कलाकार कहते रहे सदैव ही ।

जिस जगह गोपाल और कृष्ण मिल बैठ जाए,
आनद वहा तो भरता है सदा दैव ही ॥

"कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन" की उपज,
सही मानियो मे कहती पुकार कर यही ।

"शिव कवि" आयुर्वेद चमक के रहेगा ही,
मनवा ही लेगा कि विज्ञान है यही सही ॥

महोत्साही कलावाप्त, विमुक्तो रागबन्धनै ।
महायुर्वेदसेवाया समुज्जृम्भतु शाश्वतम् ॥
कल्पस्य या परिनृत्ति', कृता स्वामी महाशयै ।
सदादर्श जगत्यायु श्रुते सस्थापयिष्यति ॥

—विश्वनाथ द्विवेदी B. A.
आयुर्वेद शास्त्राचार्य, जामनगर

देवाधिदेव आदि वैद्य भगवान शिव की असीम अनुकम्पासे अखिल भारतीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन यहां आशातीत सफलतासे सम्पन्न हुआ। इस महासम्मेलनने आयुर्वेदके क्षेत्रमें सैद्धान्तिक और प्रक्रियात्मक रूपसे उच्च स्तरीय विचार-विमर्श करने की जिस आदर्श परम्पराका सूत्रपात किया है, वह आयुर्वेदोन्नतिके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखी जाएगी। इस महोत्सव की आयोजनामें स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराजका अथक प्रयास स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था।

श्री कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन की ओरसे सम्मेलनके क्रियाकलापके लिए एक अत्यन्त भव्य सभा मण्डप तैयार किया गया था। भारतके कोने-कोनेसे रसायनाचार्य पधारे थे। भवनमें पारद-अनुसन्धानका कार्य प्रारम्भ हुए लम्बा समय नहीं बीता है, फिर भी मार्मिक विद्वान और रसायनाचार्य श्री शान्तिलाल भाईके तत्त्वावधानमें श्री कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन ने पारद-शोधके जो कार्य किये है, उनकी भीनी-भीनी महक दूर-दूर तक फैल गई थी, जो कि सुप्रसिद्ध रसायनाचार्योंसे लेकर गुप्त रसायनशास्त्रियों तकको आकृष्ट करनेमें सफल हुई। मै एक धातुवादी को जानता हूँ, मैंने देखा कि वे भी सुदूर स्थानसे पहुँच गए हैं और मचके नीचे प्रतिनिधियों की चौबीसवीं पंक्तिमें चुपचाप सम्मेलन की कार्यवाहीमें रस ले रहे हैं। इस प्रकार रसशास्त्रवेत्ताओंका जो जमघट यहां देखनेको मिला, वह वर्णनातीत है।

प्रतिनिधियोंके निवास की व्यवस्था अर्धचन्द्राकार रूपमें छोटे बड़े अनेक तम्बू और छोलदारी लगाकर पारद प्रदर्शनीके सामने की गई थी। प्रदर्शनीके बाजू में मनोरजनके लिए रंगमच था और दूसरी तरफ भोजनालयकी व्यवस्था थी। इतने छोटेसे ग्राममें सब प्रकारकी सुख-सुविधाओं और साज-सज्जाओंका जुटाना ठाकुर श्री नाथूसिहजी की कार्यकुशलता का परिचायक है।

इस त्रिदिवसीय सम्मेलन को कार्यकलापोंके आधार पर तीन भागोंमें बांटा जा सकता है।

१. रस

२ रसायन

३. धातुवाद

कोटाके श्री युवराज कुमार द्वारा सम्मेलनका और राजस्थानके उपस्वास्थ्य मत्री श्री भीखा भाई द्वारा विद्वत्परिषद् और प्रदर्शनीके उद्‌घाटनके बाद शास्त्रीय कार्य मध्याह्नमें प्रारम्भ हुआ। इसके अध्यक्ष जामनगर के रस शास्त्रके प्राध्यापक श्री वासुदेव भाई थे। इस अवसर पर श्री शान्तिलाल भाई ने रस शास्त्रके सम्बन्ध में अपना महत्त्व पूर्ण वक्तव्य दिया। अध्यक्ष महोदय के भाषणसे उनकी उद्‌भट विद्वत्ता प्रत्यक्ष थी। उन्होंने पारदके सम्बन्धमे अधिकार पूर्ण एवं प्रमाण संगत प्रवचन किया। रातको सुप्रसिद्ध रसायनाचार्य श्री नारायण स्वामी जी की अध्यक्षतामें पारदके सम्बन्धमें विभिन्न प्रश्नोत्तर हुए। स्वामी जी के पारदानुसन्धान सम्बन्धी प्रयासोंकी भारत व्यापी चर्चा रह चुकी है। पहले आप देवप्रयागमें थे, आजकल कनखल आगए हैं। आप भी श्री कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन द्वारा पारद अनुसन्धानमें की गई प्रगतिसे अत्यन्त सन्तुष्ट प्रतीत होते थे। सम्भवत. यही कारण था कि उन्होंने इस अवसर पर श्री शान्तिलाल भाईको 'रसायनाचार्य' उपाधिसे विभूषित किया।

दूसरे दिन प्रात बम्बईके उपस्वास्थ्य मंत्री डा० कैलासकी अध्यक्षतामें रसायन पर विचार विमर्श हुआ। इस अवसर पर स्वामी श्री कृष्णानन्द जी महाराजका लिखित प्रवचन नितान्त सारगर्भित था। रसायनवादकी दूसरी बैठक राजस्थान आयुर्वेद विभाग के संचालक श्री प्रेमशंकर जी भिषगाचार्यकी अध्यक्षता में हुई। शांतिलाल भाई के भाषणके बाद आपने अध्यक्षीय भाषण किया।

तृतीय दिवसकी कार्यवाही धातुवादके सम्बन्धमें स्वामी श्री चेतनानन्द जी चिदाकाशी की अध्यक्षतामें हुई। श्री शांति भाई का धातुवादपर विद्वत्ता पूर्ण भाषण हुआ, दोपहर बाद महन्त श्री मुरलीमनोहरजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्यकी अध्यक्षतामें समारोह समाप्त हुआ।

इस महोत्सवमें सैद्धान्तिक विवेचनाके साथ प्रयोगात्मक स्वरूप भी था। श्री कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवनकी पारद अनुसन्धान शालामें पारद द्वारा अभ्रक सत्व एवं स्वर्णका भस्म आदि कई प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से दिखालाये गये। इस कार्यक्रमसे बाहरसे आने वाले वैद्य बन्धु अत्यन्त सन्तुष्ट प्रतीत होते थे।

भारतमें सर्वप्रथम पारद प्रदर्शनी का आयोजन भी यहां किया गया था। इसमें पारद निर्मित शिवलिङ्ग, अग्निस्थायी पारद, बद्ध पारद, अष्ट संस्कारोंमें पारद की विभिन्न स्थितियां, विभिन्न प्रकारके सत्व एवं बिड, अन्तर्धूम जारित पारद तथा पारद सम्बन्धी दस प्रक्रियामें काम आने वाले अनेक प्रकारके यन्त्र आदि प्रदर्शित थे। प्रदर्शनीको रस शास्त्र-सम्बन्धी चित्रावली एवं दिव्य जड़ी बूंटियोंसे अत्यन्त आकर्षक और सहज ज्ञानवर्धक बनानेका प्रयास पूर्ण सफल रहा।

प्रतिनिधियोंके मनोरञ्जनके लिए 'श्री धन्वन्तरि-अवतरण' तथा 'आजका वैद्य' नामक नाटक एवं सिनेमाका प्रबन्ध भी था। इस प्रकार सर्वाङ्ग सुन्दर कार्यक्रमके साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

समागत सभी प्रतिनिधियोंकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि इस प्रकारके वैज्ञानिक वातावरणसे युक्त पारद अनुसन्धान सम्मेलन भारतमें प्रतिवर्ष हुआ करें। इसे क्रियान्वित करनेके लिए अ० भा० पारद अनुसन्धान समिति की घोषणा भी इस सम्मेलनमें की गई।

आयुर्वेद जगतके अन्य सम्मेलन भी इस परम्परा को आगे बढावें तो आयुर्वेदोन्नति अनिवार्य है।

सम्पादकीय टिप्पणियां—

लोक सभा में आयुर्वेद—

लोक सभामें स्वास्थ्य मंत्रालयके अनुदानकी मांग के अवसर पर संसद् सदस्योंने जोरदार शब्दोंमें आयुर्वेदके पक्षको उपस्थित किया। इस प्रसंगमें केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री करमरकर ने कहा कि जामनगरकी आयुर्वेदीय अनुसन्धान शालामें सशोधनका जो कार्य हो रहा है, उसके अतिरिक्त भी यह निश्चय किया गया है कि विभिन्न देशी दवाइयोंका विभिन्न रोगोंपर परीक्षण किया जाए और जो वस्तुए सफल हों, उसका अधिक प्रयोग किया जाए। यह प्रयोग सरकारी दवाखानोंमें हो सकेगा। आपने आगे यह भी दावा किया कि 'सरकार ने आयुर्वेदके सम्बन्धमें किसी भी योजना को अब तक अस्वीकृत नहीं किया है।'

आयुर्वेद संसार को चाहिए कि वह भारत सरकार के सामने अब साङ्गोपाङ्ग योजनाएं रखें ताकि भविष्य में स्वास्थ्य मंत्री कमसे कम यह बहाना तो न कर सकें।

तृतीय पंच वर्षीय योजना—

आयुर्वेद हितैषियोंका कर्तव्य है कि वे तृतीय पंच वर्षीय योजनामें आयुर्वेदको उचित स्थान दिलानेके लिए पूरा प्रयत्न करें। प्रथम और द्वितीय पञ्च वर्षीय योजनाओंमें आयुर्वेदकी उपेक्षा आइनेकी तरह स्पष्ट है। भारतके पास आयुर्वेदके रूपमें अपने पूर्वजोंकी विशाल सम्पत्ति है, इसे सुरक्षित रखना तथा उन्नत करना भारतीयोंका कर्तव्य है। यह तभी सम्भव है, जब कि सरकारको उसकी ओर प्रेरित कर तृतीय पंच वर्षीय योजनामें आयुर्वेदको न्यायोचित स्थान दिलाया जाए।

रसशास्त्र यह भारतीय विज्ञान शास्त्र है। इस सम्बन्धमें प्राचीन आचार्योंने प्रथक् परिश्रम किया है और जनताकी ४ प्रकारसे सेवा की है। रोगविनाश करना, देहको स्वस्थ और सुदृढ़ बनाना, स्मरण शक्तिको अत्यधिक सबल बनाना, और आर्थिक सहायता प्रदान करना।

रसशास्त्र बुद्धिपूर्वक कृतिका अभ्यास करके ही प्राप्त किया जाता है। मात्र शास्त्राध्ययनसे अनुभव नहीं मिल सकता है, शास्त्राध्ययन करने वाले वार्तिकोंने (जिनने कृतिके लिए परिश्रम नहीं किया है), जनताको कई बार भ्रमपूर्ण विचार दिये हैं।

रसशास्त्र और आयुर्वेद शास्त्र, दोनो पृथक् शास्त्र हैं। जब आयुर्वेदके आचार्योंने रसशास्त्रकी महिमाको जाना और औषधियोंके प्रभावका अनुभव किया, तब उनने उसके कुछ अंशको आयुर्वेदमें स्थान दिया है। आयुर्वेदके महा-महारथी प्रिन्सीपाल या सरकारी सम्मानित विद्वान् ऑफिसरोंको भी रसशास्त्रकी कृति सम्बन्धमें बिना अनुभव किये न्याय देना उचित नहीं माना जायगा।

वर्तमानमें आयुर्वेदके आचार्योंने रसशास्त्रकी पुस्तकोंकी टीका लिखनेका साहस किया है। वे पुस्तकें पाठ्य पुस्तक रूपसे स्वीकृत हुई हैं। अध्ययन कराने वाले भी रसशास्त्रसे अनभिज्ञ होते हैं। विद्यार्थी वृन्द शब्दोंको रटकर कण्ठ कर लेते हैं। कोई कृति करने लगते हैं। सफलता न मिलनेपर रसशास्त्रको भांग पी कर लिखा हुआ शास्त्र कह देते हैं। कई वैद्य बन्धु और छात्र सम्मेलनपर पधारे थे। उनमेंसे कई अधिक जाननेके उत्सुक थे। मिनिटोंमें रस शास्त्रकी क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहते थे। किस तरह होसके, यह हम नहीं समझ सके। जैसे माता अपनी प्यारी पुत्री को एक दिनमें रसोई करना नहीं सिखला सकती वैसे यह गम्भीर विज्ञान शास्त्र बिना परिश्रम किये कैसे कोई प्राप्त कर सकेंगे? जिनने यह विज्ञान प्राप्त किया है, उनने दीर्घ कालतक परिश्रम करके ही प्राप्त किया है।

कई बार अनधिकारी रसशास्त्रसे अनभिज्ञ ऐसे सत्ताधारी विद्वानोंसे मिलनेका प्रसंग आया है एवं कई बार स्वार्थी चिकित्सक एवं स्वार्थी व्यापारियोंसे मिला हूँ। अनेकों की यही इच्छा रहती है, कि हमें ऐसा मार्ग दर्शा दें, जिससे कुछ समयमें, थोड़े परिश्रमसे वेध कार्य सम्पन्न हो सके। जिस तरह प्रथम कक्षाका विद्यार्थी दशवीं कक्षाका प्रश्न पूछता है। समझानेमें असमर्थता दर्शानेपर विद्यार्थी हँस देता है, उसी तरह रस शास्त्र से अनभिज्ञको समझानेमें रस विदोंकी स्थिति होती है।

कई विद्वानोंको उत्तर उनके विचारके अनुरूप न मिलनेपर वे नाराज होते हैं, कई क्रुद्ध होते हैं, अभिशाप देते हैं अथवा अग्नि उगलने लगते है। सब सहन करना पड़ता है। मिथ्या मधुर शब्दोंसे प्रसन्न नहीं कर सकेंगे।

कई विद्वानोंने रसशास्त्रकी पुस्तकोंका पठन किया है, मन गढंत अर्थ करते हैं। फिर यथार्थ क्रियाको मिथ्या कर देनेका भी साहस करते हैं। शास्त्र वचन का प्रमाण देते हैं। शास्त्रके मर्मको जब तक नहीं जानेंगे, तब तक उनको हम दोष भी क्या देवें। उतना ही कहेंगे, वे दयापात्र हैं।

योग वासिष्ठमें कहा है कि—

अन्तः शीतलतायां हि लब्धायां शीतलं जगत्।
अन्त स्तापोपतप्तानां दाव दाहमयं जगत्॥

जिनके अन्तरमें शीतलता, शान्ति प्रसन्नताका साम्राज्य होगा तो बाह्य जगत् शीतल भासेगा। जिनके अन्तरमें राग, द्वेष-ईर्ष्या-क्रोध आदि आसुरी संस्कारोंकी प्रधानता होगी, उनकी दृष्टिमें यह जगत् दावानलसे जलता हुआ-प्रपञ्च पूर्ण भासेगा। यह हृदयसे प्रार्थना है। श्री हरि सबको सुमति प्रदान करे,

"विश्वानि देवसवित दुरितानि परासुव"।
यद्भद्रं तन्न आसुव॥

लेखोंकी वास्तविकताका उत्तरदायित्व !

प्रस्तुत विशेषांकमें अनेक प्रतिभाशाली विद्वानोंके उत्तमोत्तम लेख प्रकाशित किये गये हैं। साथ ही ने

(शेष पृष्ठ ४९२ पर देखें)

पारद महिमा

धातून्मुखे समुत्पन्ने यदा भुक्ते रसोऽखिलान् ।
तदा मृत्यु–दरिद्राणा भयं नैव भृशं भवेत् ॥ १ ॥

विश्वबीज सदा नित्य वन्दे सूत मिहामरम् ।
रोगदारिद्र्यतमसा–मर्क वै नाशने स्थितम् ॥ २ ॥

शतसहस्रलक्षाणा कोटिधूम्रादिवेधनम् ।
शब्दवेधं च धातूना कुरुते साधितो रसः ॥ ३ ॥

मूर्च्छितो हरते व्याधि मृतो जीवयति स्वयम् ।
बद्ध खेचरता कुर्याद्. रसो वायुश्च भैरवि ॥ ४ ॥

पारद सर्वरोगाणा जेता पुष्टिकर स्मृत. ।
सुज्ञेन साधित कुर्यात् ससिद्धि देहलोहयो ॥ ५ ॥

रसविद्या परा विद्या त्रैलोक्येऽपि च दुर्लभा ।
भुक्तिभुक्तिकरी यस्मात् तस्माज्ज्ञेया गुणान्वितै ॥ ६ ॥

दोषै विहीन विहृत रसेन्द्र सुशोधित स्वदेनमर्द्दनाद्यै ।
यदौषधीना मुखजातदिव्य दारिद्र्यरोगाखिलहारि दिव्यम् ॥ ७ ॥

परमा पारदी विद्या सर्वलोकेषु दुर्लभा ।
भोगमोक्षप्रदा पुण्या पुत्रारोग्यविवर्धिनी ॥ ८ ॥

त्व माता सर्व भूताना पिता चासि सनातन. ।
द्वयाश्च यो रसो देवि ! महा मैथुनसभव ॥ ९ ॥

केदारादीनि लिगानि पृथिव्या यानि कानिचित् ।
तानि दृष्टवा च यत्पुण्य तत्पुण्य रसदर्शनात् ॥ १० ॥

चन्दनागुरुकर्पूरकुकुमान्तर्गतो रस ।
मूर्च्छित शिवपूजा सा शिवसान्निध्यसिद्धये ॥ ११ ॥

भक्षणातपरमा शान्ति हन्ति पापत्रय रस ।
दुर्लभ ब्रह्म विष्णवाद्यै. प्राप्यते परम पदम् ॥ १२ ॥

उदरे सस्थिते सूते यस्यो त्क्रामति जीवितम् ।
स मुक्तो दुष्कृताद्घोरात् प्रयाति परम पदम् ॥ १३ ॥

—अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसंधान सम्मेलन—

रसायन सभाके मान्य अध्यक्ष —
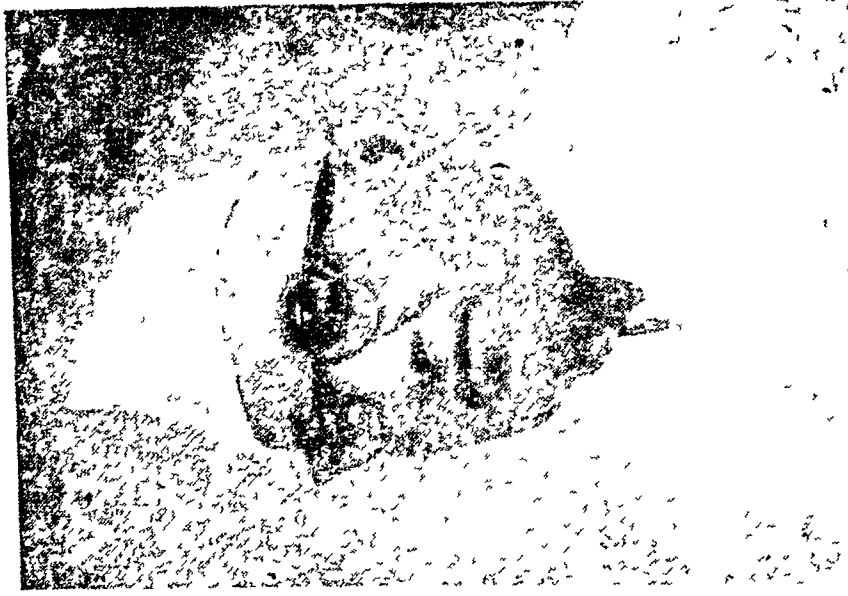
श्री० माननीय डॉ० कैलाश N N, M. B B S

उपस्वास्थ्य मंत्री, बम्बई प्रान्त

——अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसंधान सम्मेलन——

विद्वत्परिषद् एवं प्रदर्शिनीके उद्घाटनकर्ता:—

श्री० माननीय भीखाभाई उपस्वास्थ्य मंत्री (राजस्थान)

श्रीमान् माननीय डा० कैलाश N. N., M. B. B. S.

डिप्टी हैल्थमिनिस्टर, पब्लिक हैल्थ डिपार्टमेन्ट बम्बई का

ओजस्वी भाषण

पूज्य स्वामी कृष्णानन्द जी, पूज्य साधुगण तथा वैद्य समाज,

आज मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि हम लोग एक शोध कार्यके देखने तथा उस विषय पर चर्चा करनेके लिये इकट्ठे हुए हैं। कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन जो सेवा वर्षोंसे आयुर्वेदकी करता आया है वह हम सब लोगोंको विदित है। आयुर्वेद पर शोध आजके समयमें कितनी आवश्यक है आप जैसे विद्वद् बन्धुओंको तो विदित ही है। पर ऐसा शोध भारतमें मेरी जानकारी के अनुसार सिर्फ श्रीनगर, काशमीर, लखनऊ, जामनगर तथा कालेड़ा-कृष्ण गोपाल भवनमें ही हो रहा है। कालेड़ामें शोधका कार्य इस लिए आगे बढ रहा है क्योंकि यहां तो स्वयं सेवक तथा निःशुल्क या कम शुल्क लेकर कार्य किया जा रहा है। अभी हम सब लोगोंने देखा कि पारद पर किस प्रकार शोधकी जा रही है। अगर यह संस्था इस कार्यमें सफल हुई, जिस की मुझे पूर्ण आशा है तो आयुर्वेद भी एलोपेथीकी कुछ औषधियों की तरह चमत्कार दिखा सकेगा। कई भयंकर रोगोंको रोका जा सकेगा तथा इलाज भी काफी सरल तथा सफल हो जायेगा। शोधका विषय इतना गहन है कि इसे या तो जन साधारणका आश्रय या राज्य आश्रय अवश्य चाहिये। यह ही नहीं किसी शोधकसे समयके विषयमें प्रश्न भी नहीं किया जा सकता क्यों कि प्रयोग कब सफल होगा यह निश्चय रूपसे कहा ही नहीं जाता। यह सौभाग्यकी बात है कि राज्य सरकारें तथा केंद्र सरकार आयुर्वेदके उत्थान में सहायता कर रही हैं। यह दोष दिया जाता है कि राज्य या केंद्र सरकार एलोपैथीको ज्यादा धन देती हैं तथा आयुर्वेदकी ओर ध्यान नहीं देती। मुझे यह सुनकर दुःख होता है। यह शायद कुछ वैद्योंकी राज-नैतिक भाषा है जो और सब वैद्योंको भुलावेमें डाल देती है। अगर आप देखेंगे तो राज्य सरकारोंने इन पिछले ५ वर्षोंमें ज्यादा आयुर्वेदिक औषधालय एलो-पैथिक दवा खानोंके मुकाबलेमें खोले हैं। नये शिक्षा स्कूल या कालेज खोले हैं तथा शोध केन्द्र भी बनाये गये हैं। इस प्रकारकी भाषासे हम हमारे डाइरेक्टर ऑफ आयुर्वेदके प्रति अश्रद्धा प्रगट करते हैं तथा हम हमारे हितके विरुद्ध ही कार्य कर बैठते हैं। अगर आज सबसे ज्यादा आयुर्वेदका अहित हो रहा है तो वह हमारे वैद्य समाजके ही कारण है न कि राज्य सरकारों के कारण। मैं आपको यह भी बता देना चाहता हूँ कि भूतमें क्या हुआ या आज क्या हो रहा है इसमें अपना समय खराब करनेके बजाय हमें तो अपने भविष्यका ठीक निर्माण हो उस पर सोचना तथा तप करना है। यह मैं इस लिये कह रहा हूँ कि जो कुछ आज किया जा रहा है या और दो वर्षों तक होगा वह तो सिर्फ द्वितीय पंच वर्षीय योजनाके हिसाबसे ही हो सकता है। हम उस फायदेके बाहर नहीं जा सकते। इस योजनाको हमारे दूसरे साथियोंने बनाया था पर हमें आज उस प्रकार काम करना पड़ रहा है। यह कठिनाई है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि अगर हम आयुर्वेदका उत्थान चाहते हैं तो हम तीसरी पंच वर्षीय योजना इस प्रकार बनाये जिससे हम उसे काफी अच्छी प्रगतिकी ओर ले जा सकें। पाठ्यक्रमकी ओर ध्यान देना है जिससे हम सुयोग्य वैद्य तैयार कर सकें हमें आयुर्वेदिक अस्पताल तैयार करने हैं जिससे हम

पास हुए वैद्योंको रख सकें, उसमें शोध कर सके तथा तथा जन साधारणको सस्ता इलाज दे सके। इससे जो आज हम करोड़ो रुपये ऐलोपैथी दवाओंमें बाहर भेज देते ह वह भी रोक सकेंगे। हमें हमारी औषधियो का (Standardisation) करना है जिससे कि वैद्यों को सुविधा हो जाये। औषधि निर्माण शालाओंकी मदद करना है कि वे शुद्ध तथा ठीक औषधियां बनाए हमें पाठ्य पुस्तकें भी तैयार करनी हैं जिसमे विद्यार्थियों को आजके रोगो तथा शोध शस्त्रोंका भी ध्यान रहे। यह काम काफी बड़ा है पर आखिर हमें ही तो करना है। राज्य सरकार या केन्द्र सरकार रुपया खर्चकर सकती है। डाइरेक्टर रख सकती है पर सारे कार्यों को चलानेका भार तो वैद्य समाज पर ही है जिसके लिये आजका वैद्य समाज, मुझे दुःखसे कहना पडता, है, तैयार नहीं हैं। हां टीका टिप्पणी करना कमेटियो में चुना जाना इत्यादिमें रत है। हमें तो आज चाहिये पुस्तकें लिखने वाले, अध्यापक, निर्माण शालोंकी देख भाल करने वाले, शोध करने वाले तथा हमारे आयुर्वे-अस्पतालोंको चलाने वाले। मेरी आप सबसे प्रार्थना है कि आप जिस प्रकार काफी दूर दूरसे पारद शोध क्रिया देखने पधारे हैं उस ही लगनसे तीसरी पंच वर्षीय योजनाके निमार्ण कार्यमें भी साथी बनें। तब ही आयुर्वेदकी उन्नति होगी।

मुझे तो कालेडा-कृष्णगोपाल संस्थाके कार्यमें पूर्ण संतोष है। उस संस्थाने हर दिशामें आयुर्वेदकी सेवा की है। हम सब भाईयोंको मिलकर इस संस्थाकी हर तरह सहायता करनी चाहिये। आशा है यह संस्था निकट भविष्यमें संसारको एक नई औषधि भेट देगी।

— सम्पादकीय टिप्पणियां —

(पृष्ठ ४८९ का शेष)

शास्त्र विधि युक्त अपने अपने अनुभव सहित प्रत्येक विषयोंका उल्लेख किया है। रस-रसायन एवं धातुवाद का यह विषय अतिगंभीर एवं दुर्गम्य है। इन विषयों पर जो जो क्रियाऐं हमारे यहां भवनकी रसायनशाला में हुई और की गई तथा जिनपर हमारे यहांके अधिकारियोंने विस्तृत प्रकाश डाला है उनके लिये सतोषप्रद समाधान देनेका उत्तरदायित्व हमारा है क्योंकि वे लेख यहां के प्रत्यक्ष अनुभवके आधारसे लिखे हैं, चाहे वर्त्तमानके अनुसंधानमें उस कोटिकी औषधि तैयार न होनेसे न दिखलाई हो, हमने प्रथम प्रयोग किया है इस हेतु जो भी लिखा या कहा है वह वास्तविक है। जिन्होंने गुणाधान संस्कार किये हैं, या जारण क्रिया की है वे ही वास्तविक अर्थ समझ सकते हैं। अन्य व्यक्तियोके सत्य समझ लेनेपर भी उनकी बुद्धिमें स्थिरता नहीं आसकती। अतः अन्य व्यक्तियोंके लेखोंकी क्रियाओं का उत्तरदायित्व लेखकों पर ही है।

क्षमा याचना

यह विशेषांक २०० पृष्ठोंका निकालनेका निर्णय पहलेसे कर लिया गया था और उसपर हम दृढ़ भी थे। किन्तु लेख व भाषण देरसे प्राप्त होने तथा कागज मिलनेमें अनेक कठिनाइयां उपस्थित होनेसे विवशता हुई है।

बाजार भावसे मुंह मांगे दाम देकर कागज खरीद करना पड़ा है।

साथ ही जिस क्रमसे हमें लेख प्राप्त होते गये वैसे ही प्रकाशित किये गये हैं। कई संभावितोंके लेखों को भी उचित स्थान इन्हीं कारणोंसे नहीं दे सके हैं। अतः क्षमा याचना है।

प्र० सम्पादक

* कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा के *

मैनेजिंग ट्रष्टी एवं संस्थापक

श्री ठाकुर नाथूसिंहजी सा० 'केसरेहिन्द', आयुर्वेद रत्न

भू पू. इस्तमरारदार कालेडा, बोगला

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय की
स्थापना और वृत्तांत

[लेखक—श्री ठाकुर नाथूसिंहजी कालेड़ा]

卐卐卐卐

प्रारम्भिक स्पष्टीकरण

आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालयकी स्थापना महाप्रभु कल्याणराय और सृष्टिकी सञ्चालक भगवतीकी प्रेरणासे ही हुई है। आज्ञाके पालनार्थ श्री स्वामीजी और मैंने श्रद्धासह अपने जीवनको समर्पित किया है। संस्थाके निर्माणार्थ इन्होंने इनके जीवन को नींव (Faundation) रूप बना दिया है। फिर उन देवकी प्रेरणा अनुसार निष्काम भाव और सद्भावसह दृढ़ता पूर्वक नीतिके पालन सह सेवा कार्यमें जुट गये। जिससे क्रमश उन्नति होती गई। एवं आपत्तियोंके समय बराबर अचिन्त्य शक्तिने संस्थाका संरक्षण किया। एवं उतना ही नहीं, उन्नतिके पथपर बिखरे हुए काटों को दूर किया और मार्ग अन्तरायसे मुक्त कर दिया।

यदि कोई मानते हों कि धन और सत्ताके बलसे इच्छानुसार कार्य होता है। संस्थाका निर्माण हो सकता है और विकास भी। किन्तु यह कथन ठीक नहीं है। उस तरहके निर्माण और विकास बालुकाके बगलेके समान होता है। कब बगला ढह जाय यह नहीं कह सकते। पूर्ण नीतिके पालन और निःस्वार्थ भाव विना सच्चा विकास नहीं हो सकेगा।

ई० १९३० में यह संस्था प्रारम्भ हुई यह बहुधा सम्बन्ध वाले सज्जन जानते हैं। किन्तु किसने स्थापित की? किस स्थितिमें स्थापित हुई? क्या उद्देश्य था? यह बात बहुत कम सज्जन जानते हैं। उसका संक्षिप्त में स्पष्टीकरण करता हूँ।

पूज्य स्वामीजीका परिचय सबसे पहले देवली निवासी कर्नल ठाकुर शिवसिंहजी शक्तावतसे उदयपुर में हुआ था। उनके आग्रहसे वे इस देशमें १९२६ ई० से आते रहे हैं। १९२८ ई० में आयुर्वेदके गुजराती ग्रन्थ आर्यभिषक को संशोधन करनेके लिए पूज्यपाद स्वामी श्री अखण्डानन्द जी महाराज (सस्तुं-साहित्य वर्द्धक कार्यालयके संस्थापक) ने स्वामीजीके पास देवली भेजा था। उसे सुविधा अनुसार संशोधन करते रहते थे। उसे देखकर ठाकुर शिवसिंहजीने उनको पूछा कि यह क्या है। इन्होंने उत्तर दिया कि यह आयुर्वेदका गुजराती ग्रन्थ है। संशोधनार्थ गुरुदेवने मेरे पास भेजा है। तब वे कहने लगे कि आप आयुर्वेद जानते हैं। मेरे पुत्र कुशलसिंहको सिखला देवे तो वह जनताकी सेवा करे। स्वामीजीने कहा मेरे पास विद्या बेचनेके लिए नहीं है, बांटनेके लिए ही है। कोई भी अधिकारी सीख ले और सेवा करे मुझे उसे देखकर प्रसन्नता ही होगी।

फिर ठाकुर शिवसिंहजीने आयुर्वेदकी पुस्तके माधवनिदान, शार्ङ्गधर, भावप्रकाश, लोलिम्बराज, आदि मगवाये। एवं कई वनौषध द्रव्य, खनिज धातु उपधातु आदि बाहरसे मगवाकर इकट्ठे किये। साधन खरल आदि भी बुद्धगया तथा आगरासे मगवाये। शुभमुहूर्तमें कार्यारम्भ और विद्यारम्भ कराया। जब स्वामीजी देवलीसे बरार गये, तब कुशलसिंहजी उनके साथ बरार भी चले। वहांपर भी अभ्यास करते रहे। इस तरह अभ्यास होता रहा था। यह सुनकर मेरा विचार भी आयुर्वेदका अध्ययन करनेका हुआ।

१९२८ ई० में चले जानेके बाद फिर स्वामीजी १९३० ई० में पुनः देवली आये तब मैं उनके पास गया। आयुर्वेदके अभ्यास करनेका विचार दर्शाया। सदाचारी, सेवापरायण और जिज्ञासु वृत्ति वाले हैं, ऐसा जानकर १९३० ई० में कालेड़ा आये। पहलेसे खरले, इमाम-दस्ते, गोबरी, लकड़ी

खनिज, धातु-उपधातु, वनौषध द्रव्य मगवा लिये थे। पुस्तकें कुछ स्वामीजीके साथ थी। कुछ नयी आयी थी। विधि विधानसे औषध निर्माण और चिकित्सा आदि का अनुभव कराया गया, परिणाममें गरीबोंकी सेवा नियमित हो सके इसलिए कृष्णगोपाल औषधालयकी स्थापना अक्षय तृतीया दिनांक १-५-१९३० ई० को की।

प्रारम्भमें १२ घण्टे या अधिक समय तक मैं औषधि वितरणके लिए समय देता था। रोगी संख्या अधिक नहीं थी। किन्तु रोगियोंके आनेका समय अनियमित होनेसे समयकी व्यवस्था योग्य नहीं होती थी। कई बार रोगियोंको देखनेके लिए मुझे रात्रिको १२ बजे और २ बजे भी जानेका काम पड़ता था। कभी दुख नहीं माना। ३० वर्षके भीतर कड़वा शब्द किसीको नहीं सुनाया। सद्भाव पूर्वक प्रभु सेवा समझकर सहर्ष सेवा करते रहते थे।

प्रारम्भमें कठिनाइयां काफी आती थी। अनुभवके अभावमें भूलें होनेसे आर्थिक हानि भी उठानी पड़ती थी। तथापि मैं प्रसन्नचित्तसे सबको आदर पूर्वक संतोष देता रहता था।

जैसे कई परिचित सज्जन आकर कहते थे। अन्दाता अमुक वैद्यजीने मेरे चाचाजीको (भाईको, मामाजीको बहनको) कहा है कि ये औषधिया मगवा देवें, तो बुखारका (या जो रोग हो उसका) उपचार कर सकूंगा। बात करके १०-२० या ३० रु० की औषधियां मुफ्त ले जाते थे। इस तरह कई बार कई सज्जनोंने अनुचित लाभ लिया था।

ई० १९३२ में एक बार स्वामीजीके समक्ष हम बैठे थे। तब एक सम्बन्धी समीपके गावके इस्तमरारदारका पत्र आया। रोग मलावरोध जनित ज्वर था। ६ माशे त्रिभुवनकीर्तिरस १ तोला इच्छाभेदी रस, १ तोला अभ्रक भस्म, १ तोला सुवर्णमालिनी वसन्त आदि ५०) रु मूल्यसे अधिक औषधि लिखी थी। मैंने स्वामीजी को पूछा इस प्रकारकी आपत्तिया बार बार आती रहती है। क्या करना चाहिए? काफी हानि पहुँच गई है। आगे किस तरह सेवा कार्य निभाया जाय, यह समस्या दुस्ह हो गई है।

हमें समझाया किसीको भी इस तरह औषधि न देवें मात्र रोगीको देखकर आवश्यक औषधि प्रदान करें। नूतन आशुकारी (Acute) रोगोंमें बाहर से आने वालोंको भी १ या २ दिनकी तथा जीर्ण चिरकारी (Chronic) रोगोंमें ४ या ८ दिनकी देवें। यहां ही जो रहते हैं, उनको मात्र एक ही दिनकी औषधि देवें।

जो परिचित या अपरिचित सज्जन मूल्यवान औषधियां मांगते हैं। उनको मूल्य लेकर देवें। इसलिए मूल्य पहलेसे निर्णित करें। उस मूल्यका उपयोग सेवाकार्यमें ही करें। जिससे प्रारम्भ किया हुआ सेवाकार्य क्रमश सुदृढ़ बने और अधिक रोगियोंकी सेवा करने के लिए समर्थ हो सके। मैं भी मान गया। नियम बना लिया। दृढतासे पालन करने लगे।

प्रारम्भमें उपर्युक्त इस्तमरारदारको उत्तर मधुरभाषा में दिया; किन्तु औषधियां बिना मूल्य नहीं भेजी गई। घोर निन्दा टीका करना आरम्भ किया सब सम्बन्धी स्नेही और परिचितोंमें बढा-चढाकर कई बातें पहुँचाई शान्तिसे सस्था सहन करती। विरोध करनेका प्रयत्न नहीं किया। कुछ समयमें सबने सेवा कार्यकी आवश्यकता, नियम और सत्यको जान लिया फिर यह उपाधि दूर हुई।

प्रारम्भमें अर्थिक कठिनाई बार-बार सताती थी। कभी-कभी ५०-१००) रु० की व्यवस्था करनेमें भी कठिनाई आती थी। यह कठिनाई काफी समय तक रही। उस समयका चित्र १९३८ में रसतन्त्रसार प्रथम खण्डके द्वितीय संस्करणके प्रकाशनपरसे कुछ कल्पना हो सकेगी।

द्वितीय संस्करणकी २५०० प्रति छपाई थी। प्रेस वालोंकी छपाई कागज मूल्य जिल्द आदिके मिलकर ४५००) रु० खर्च आया है। इनमें जिल्दकी रकम शनैः शनैः देनी पड़ी है। छपाई पूरी होने तक ३६००) रु० देना पड़ा था। इसके लिए १००-१०० और ५०-५०) रु० स्नेही सज्जनोंसे एक वर्षके लिए उधार लिया था। उधार देने वालोंमेंसे कईयोने बड़ा उपकार

करते है, ऐसा भाव दर्शाया था। एवं एक-एक प्रति भेट मांगी थी। सस्थाके लिए समय उसी प्रकारका था। सब सहन किया।

पुस्तक तैयार होनेपर ३८ एजेण्ट पुस्तक वेचने वाले बनाये। जो कमीशन नहीं लेने वाले थे। सेवा-कार्यमें सहायता करना चाहते थे। इस प्रकारकी योजना बनानेपर ५०% कमीशन देकर १६०० पुस्तके १ वर्षके भीतर वेच दी और ऋण देने वालोंको सप्रेम रकम वापस लौटा दी गई।

उक्त एजेण्टोंमेंसे २-३ एजेण्ट महास्वार्थी निकले उनने पुस्तके बेच तो दी। किन्तु एक पाई संस्थाको नहीं दी। २-३ एजण्टो ने पुस्तकोंका मूल्य आधा तुरन्त दिया, फिर कुछ दिया। इस तरह चौथाई या अधिक मूल्य खा गये।

सस्थाको आर्थिक कठिनाई बार-बार प्रतीत होती थी। फिर भी मानसिक चिन्तामें सस्था मुक्त रहती थी। संस्थाको दृढ विश्वास था कि हमारे लिए प्रेरक-शक्ति किसी न किसी प्रकारका मार्ग खोल देगी। हमारा सेवा-कार्य निर्विघ्न बढता जायगा।

रहीमने भी कहा है कि—

निजकर क्रिया रहीम कहि, सिद्धि भाविके हाथ।
पासे अपने हाथमें दाव न अपने हाथ॥
रहिमनको कोऊ का करे जवारी चोर लबार।
जो पत राखनहार है माखन चाखनहार॥

इस विश्वासपर संस्था दृढतापूर्वक रहती थी। आज दिन तक बार बार मार्ग निर्विघ्न और सरल बन गया है।

फिर तृतीय सस्करणके समय भी रकमकी आपत्ति उसी प्रकार आई थी। किन्तु सज्जनोंमेंसे अनेकोको यहांकी सत्यता और नीतिका उदाहरण मिल चुका था। इस हेतुसे बरार वासियोंने सदभावसह २००-२०० और १००-१००) रु० उधार दिये यह रकम भी यथा समय साभार वापस लौटा दी गई थी।

१९४२ ई० के पश्चात् आर्थिक खैंच कम हुई। फिर भी पूर्णाशमें मुक्ति नहीं मिली। औषध निर्माण, प्रकाशन कार्य आर्थिक सुविधाके अनुरूप कर रहे थे। आवश्यकता अनुसार आकोला-खामगांवसे रकम उधार ले लेते थे और वापस पहुंचा देते थे। क्रमशः विक्री भी बढ़ती जाती थी। इस हेतुसे कुछ न कुछ रकम सस्थाके पास संचित होती जाती थी।

१९४५ ई० में ५००००) रु० की सम्पत्ति हो गई थी। सम्बन्धी स्नेहियोके हृदयपर हमारी नीति और सत्यताकी दृढ छाप हो गई। इसलिए सेवाकार्य सरलता पूर्वक चल रहा था। ऐसी अवस्थामें पुनः आक्रमण होने लगा।

सस्थाके पास सपत्ति बढ रही थी। हमारी सेवा परायणताके हेतुसे कीर्ति फैल रही थी। यह कईयोसे सहन नहीं हुआ। द्वेषपूर्ण बुद्धिसे प्रचार करना प्रारम्भ किया कि ठाकुर साहिब सस्थाके नामका बहाना करके व्यापार कर रहे हैं और जगत्‌को लूट रहें है। कई संभावितोसे यह समाचार मिलनेपर मुझे हार्दिक वेदना हुई। स्वामीजीको पूछा उनने उत्तर दिया कि—

जितने तारे गगनमे उतने शत्रू होय।
कृपा होय रघुनाथकी, बाल न बांका होय॥

इसके पहले भी मुझे अन्तरमें कुछ वेदना तो होती रहती थी। कई बार कह चुके थे कि भावी सन्तान अयोग्य निकले या लेनदार सस्थाकी सम्पत्तिमेंसे दबाने चाहे या सरकारकी कोई आपत्ति खडी हो जाय, तो सस्थाके कर्जमें मै रह जाऊं और सेवा कार्य बन्द भी हो जाय। इस तरह अपकीर्ति और अन्तरका भय, दो कारण एक साथ मिल गये। परिणाममें हो सके उतना जल्दी ट्रस्टडीड रजिस्टर्ड करा लेना यह निर्णय हुआ फिर ट्रस्टडीड लिख देने वाले संस्थाके ट्रस्टी श्री शिवनारायणजी पनपालिया अकस्मात यहां पंजाबसे आगये उनको २४ घण्टे रोककर ट्रस्टडीड लिखवा लिया। फिर अजमेरमे नये ट्रस्टी बनाकर ट्रस्टडीड रजिस्टर्ड करा लिया।

उक्त प्रारम्भिक इतिहास कष्टोसे भरा हुआ था। पूरा चित्र नहीं दर्शा सकते। कई बार कठिनाइयो का सामना करना पड़ता था। धन और साधनोंकी कमी, सहायकोंका अभाव, राग द्वेष करने वालोंसे

रक्षा, सरकारी आफिसरोंकी अकृपा न हो जाय यह भय, रोगीको हानि पहुँचकर अपकीर्ति न होजाय यह भय, उधार औषधि लेजाने वाले कइयोंने वापस रकम नहीं दी है, यह अनुभव, ये सब सेवा पथमें कांटे बिछे हुए थे। जिन दयालु सज्जनोंने उस समय की यहांकी स्थिति देखी थी, वही सच्ची कठिनाईको जान सकते है।

१९४५ ई० में चीफ कमिश्नर साहिब श्री शिवदासानी I C S ने आतुरालय भवनका शिलारोपण किया फिर ७००००) रु० लेखित रकम न मिलनेपर १९४७ ई० से पुन महा आपत्ति खड़ी हुई। बाहर से ऋण लेना पड़ा। ४५००-४०००) रु० व्याज प्रति वर्ष देना पड़ता था। फिर भी वह आपत्ति ट्रस्टडीड होनेके पहले उत्पन्न कठिनाइयोंके समान विशेष महत्व की मानी जायगी। हमें अन्तरमें दृढ विश्वास था हमारी रक्षा होती जायगी। हमें तो यन्त्रवत् या चाकर बनकर आज्ञाका पालन करना है। थोड़े ही समयमें रकम उधार मिल गई। फिर शनै शनै' २००००) रु० चंदा रूपसे मिल गये। ऋण भार हलका हुआ।

संस्थाकी सुकीर्ति भी चारो ओर फैल चुकी थी। व्यापार भी क्रमश बढता जाता था। दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति देख रहा था। और हमें धैर्य दे रहा था। बाहरसे प्रतीत होने वाली आपत्तिका प्रवेश हृदयमें नहीं होता था। इस तरहके आगे भी कई प्रसङ्ग आये है और आश्चर्य है, उस तरह ठीक समयपर अकस्मात मार्ग निकल आया है। इस संस्था पर महाप्रभुकी कृपा रही है। और इसी हेतुसे यह संस्था वैद्यसमाजकी पूर्ण विश्वास पात्र बनी हुई है।

अनेक चिकित्सक एवं परिचित सज्जनोंकी ओर से बारबार यह प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित होता है कि यह छोटासा ग्राम, जो रेलवे लाइनसे ४२ मील दूरीपर है, जहां मात्र ३००-४०० अपठित निर्धन मनुष्य की आबादी थी, जहा किसी भी वस्तुकी प्राप्ति सरलता से नहीं होती, इसे पसन्द कैसे किया ? किसी शहर या रेलके समीप रहे हुए कस्बेको पसन्द क्यो नहीं किया ? गुजरात जो तन, मन, धनसे सहायता कर सकता है, उसे छोड़कर दण्डकारण्यके समान देशमें कैसे कार्यारम्भ किया ? बाह्य दृष्टिसे ये सब प्रश्न उचित ही है। यह अति कठिन स्थान हैं। किसी प्रकारसे सहायता यहांसे नहीं मिल सकती। चाहे उतनी सेवा करें, सामान्य अगोंव जनतापर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मात्र प्रोत्साहन देने वाले या सेवा कार्यका भार अपने पर उठाने वाले मेरा परिवार धर्मपत्नी और कुंवर साहब आदि कुटुम्बी हैं। बाहरकी आशा नहीं रख सकते।

प्रभु परायणता जब स्वीकार की जाती है, तब मनुष्य किसी कार्यको प्रारम्भ करने वाला नहीं बन सकता। मनुष्य जीवनकी बागडोर तो उनके हाथमें है। जैसे नाच नचावे वैसे नाचना पड़ता है। सुख दुखको समान मानते हुए प्रेरणा शिरोधार्य करनी पड़ती है। कसौटीपर कसने चाहते हो तो मनुष्य कैसे इनकार कर सकेगा ? जो प्रारम्भ हुआ है, यह भविष्य का विचार किये बिना आज्ञा पालनार्थ परवश बनकर किया है। जिस तरह कमाण्डिङ्ग इनचीफ (मुख्य सेनाधिपति) के आर्डरको छोटे सेनापति और सैनिक आदि सबको पालन करना ही पड़ता है। वैसे ही स्वामीजीने आज्ञा पालन की थी।

श्री हरि कृष्ण-गोपाल धर्मार्थ औषधालयके सेवा कार्यको क्रमश. व्यापक बनाते गये हैं। १९४५ ई० मे ट्रस्टडीड रजिस्टर्डकी आज्ञा हुई। उसका सम्यक् प्रकारसे पालन किया फिर हॉस्पिटल (आतुरालय) बना। फिर तो आपत्तिकी जो वर्षा हुई है, वह ब्रजपर इन्द्रदेवने क्रुद्ध होकर की हुई वर्षाके समान थी। ब्रजपर जलकी वर्षा थी। संस्थापर आर्थिक कष्ट की वर्षा थी।

आतुरालयके लिए ब्रिटिश सरकारने ७००००) रु देनेका वादा किया था। पोस्टवॉर कन्स्ट्रक्शन फण्ड से मिलनेका लिखित नोट हो गया था। दैवयशात् ब्रिटिश सरकारके स्थानपर राज्य भारत सरकारका हुआ पाकिस्तानके प्रदेशसे निराश्रित होकर बड़े समूहो में भारतीय जन आये। उनके लिए भारत सरकारको

(शेष पृष्ठ ५०२ पर देखें)

निखिल भारतवर्षीय पारद अनुसंधान सम्मेलन

कालेड़ा-कृष्णगोपाल (राजस्थान)

के

त्रिदिवसीय कार्य-क्रम का संक्षिप्त विवरण

(लेखक—वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री प्र० सम्पादक)

दिनांक २७-३-५९ शुक्रवार

प्रात: ७½ बजे मंगलमयी वेलामें ध्वजोत्तलन श्री ठाकुर साहब नाथूसिंहजी द्वारा सम्पन्न हुआ।

प्रात ८ बजेसे ९ बजे तक श्री धन्वन्तरि भगवान् का पूजन सभा मण्डपमें श्री कुंवर जसवन्तसिंहजीके द्वारा किया गया।

तत्पश्चात् ९ बजे कोटाके युवराज कुमार श्री बृजराजसिंहजी सभा मडपमें पधारे उस समय लगभग २०० व्यक्तियोंकी उपस्थिति थी, पश्चात् धीरे धीरे वैद्य प्रतिनिधियोंकी उपस्थिति बढ़ती गई, कुल मिलाकर ३५० वैद्य प्रतिनिधि भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तो गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान, बम्बई प्रान्त, पंजाब, दिल्ली, मध्यप्रदेश, उडीसा, हिमाचल, उत्तर प्रदेश, आदिमे पधारे एव सामान्य दर्शक जनता भी लगभग ३००-३५० की सख्यामें हो गई।

९॥ बजे श्री युवराज कुमार कोटाने सम्मेलनका उद्घाटन तथा रसेश्वर भगवान्का पूजन सभा मडप मे किया।

पश्चात स्वागताध्यक्ष रायसाहब श्री ब्रह्मदत्तजी भार्गव B A. LL B. ने आगन्तुक वैद्य महानुभावो एव सन्मान्य अतिथियोका स्वागत किया एवं अपना सुमधुर स्वागत भाषण दिया।

स्वागताध्यक्षके भाषणके पश्चात् वैद्य बन्धुओ व मान्य विशिष्ट जनोंके सदेश श्री वैद्य पुरुषोत्तमजी शर्मा ने पढकर सुनाये।

१०॥ बजे राजस्थानके उपस्वास्थ्य मंत्री श्री भीखाभाईने भव्य प्रदर्शिनीका उद्घाटन किया। एवं अपना उद्घाटन भाषण दिया। दोनो सन्मान्य अतिथियोको अभिनन्दन-पत्र भेट किये गये।

पश्चात् ११ बजे सब सन्मान्य अतिथियों एव वैद्योंने प्रदर्शिनीकी १-१ वस्तुओ, औषधियोका सम्यक् निरीक्षण किया। जिसमें रसायनाचार्य श्री शातिलाल जी जोशीने प्रत्येक पारद निर्मित औषधियो, रसायनो, सत्वों, रंजक द्रव्योका पूरा व्योरेवार विश्लेषण किया तथा प्रत्येक द्रव्यकी निर्माण विधि बताई। जिसमें सभी वैद्यवरो एवं मान्य अतिथियोने बड़ी दिलचस्पी ली और बहुत सराहना की।

११॥ से २ बजे तक भोजन एवं विश्रांति करनेके पश्चात् २ बजेसे ४ बजे तक श्री शातिलालजी जोशी ने रसवादकी सारी क्रियायें क्रमश. पारदके सस्कार गंधक-स्वर्णमाक्षिक व पारदसे स्वर्णका जारण आदि प्रत्यक्ष बतलाये।

४ से ६ बजे तक रसायन शास्त्री श्री वासुदेव भाई प्रिंसिपल रिसर्च इन्स्टिट्यूट जामनगरके सभापतित्वमें श्री शांतिलालजी जोशीने रसशास्त्रके विषयमें अपना सारगर्भित भाषण दिया। तथा अन्य वक्ताओंके भाषणके पश्चात् श्री वासुदेव भाईका रसवादपर बड़ा विश्लेषणात्मक मार्मिक भाषण होकर आभार प्रदर्शन के उपरांत आजकी कार्यवाही समाप्त हुई।

६ से ८ तक भोजन एवं विश्रान्तिके पश्चात् ८ से १० बजे तक पूज्य नारायण स्वामी, कनखल (हरिद्वार)की अध्यक्षतामें रसशास्त्र सेमिनार हुआ।

दिनांक २८-३-५९ शनिवारको प्रात. ८ बजेसे ९ बजे तक श्री शांतिलालजी जोशीने रसायनशालामें

ही पारदके विविध संस्कार, सत्व निष्कासन, स्वर्ण-जारण आदि क्रियायें सब रसायनशास्त्रियों एवं वैद्यवरोंके सम्मुख एक एक करके साफ-साफ प्रत्यक्ष करके बतलाई। जिसमें वैद्योंके अनेक उलझे हुये प्रश्नोंके उत्तर आपने ठीक ढगसे बतलाये।

९ से ११॥ बजे रसायन सभाकी कार्यवाही मंडप में प्रारम्भ हुई। जिसमें सर्वप्रथम श्री शिवनारायणजी पनपालिया व स्वागत मंत्री श्री कुवर जसवन्तसिंहजी ने आजके मान्य अतिथि श्री डॉ० कैलाश N N M B B. S उपस्वास्थ्य मंत्री बम्बई प्रान्त एवं आजकी सभाके अध्यक्षका स्वागत किया। पश्चात् श्री हरिभाई प्रा० जोशी का रसायन शास्त्रपर विश्लेषणात्मक सारगर्भित भाषण हुआ, तदुपरांत श्री स्वामी चेतनानन्दजी चिदाकाशी, दिल्लीका भाषण होकर सभापतिजी को अभिनन्दन-पत्र समर्पण किया गया फिर सभापतिजी का ओजस्वी भाषण होनेके बाद सभाकी कार्यवाही सायकालके लिये स्थगित हुई।

११॥ बजेसे २ बजे तक भोजन एव विश्रान्तिके बाद २ बजेसे ४ बजे तक विद्वत्परिषद्में रसायन शास्त्र विषयमें प्रशस्त चर्चा हुई।

पश्चात् ४ से ६ बजे रसायन सभाकी सायं कालीन कार्यवाही श्री वैद्यराज प० प्रेमशंकरजी सचालक आयुर्वेद विभाग, राजस्थानकी अध्यक्षतामें प्रारम्भ हुई। उस समयमें अ० भारतवर्षीय पारद अनुसन्धानके बारेमें एक कमेटी नियुक्तकी गई और उसमें ३ प्रस्ताव सर्वानुमतिसे पास हुये। जिसमें स्वयं श्री शातिलालजी जोशीने रसायन सेवनके मार्मिक-रहस्यमय विधियोंका गवेषणात्मक भाषण दिया और त्रिगर्भा कुटीर व समगर्भा कुटीरके प्रत्यक्ष नमूने तथा वातातपिक एव कुटि प्रावेशिक विधियोका दिग्दर्शन करवाया। पश्चात अन्य वक्ताओंके भाषण व अध्यक्षजीके भाषणके उपरांत आजकी सभाकी कार्यवाही समाप्त हुई।

६ से ८ बजे तक भोजन विश्रान्तिके बाद १ और नाटक तथा दूसरी और सिनेमा बतलाये गये जो कि सम्मेलनकी अधिक शोभा बढानेमें उपयुक्त रहे। इसके बावजूद उस समय रसायन शास्त्री वैद्यगण, श्रीनारायण स्वामीकी अध्यक्षतामें रसायन शास्त्रकी चर्चा का आनन्द ले रहे थे।

दिनांक २९-३-५९ रविवार प्रातः ८ बजेसे ९ बजे तक श्री शातिलालजी जोशीने प्रदर्शनी-भवनमें रसशास्त्रियोके समक्ष तलस्थपूर्ण चन्द्रोदय, अग्निस्थायी पक्षच्छिन्न पारद, कूपियां, संस्कृत पारदके अनेक रूप रूपान्तर, बिड निर्माण, सत्वनिष्कासन, पारद बुभुक्षिकरण गंधक जारणके ३ प्रकार गौरीयत्र, भूधर यंत्र, तथा नलिका डमरुयत्र द्वारा बतलाया।

९ बजेसे ११॥ बजे स्वामी चेतनानदजी महाराज दिल्लीकी अध्यक्षतामें धातुवाद सभाकी कार्यवाही प्रारंभ हुई। जिसमें शातिलालजी जोशीके सारगर्भित भाषण हुये। फिर अन्य वक्ताओंके भाषण एव सभापतिजी के भाषणके पश्चात् सभा विसर्जन हुई। ११॥ बजेसे २ बजे भोजनादिके उपरात २ बजेसे ३॥ बजे तक औषधालय भवनके प्रांगणमे अनेक रसविद्या विशारदो की विद्वत्गोष्ठी हुई, जिसमे अनेक विद्वानोने अपने अपने प्रत्यक्ष क्रियाके प्रदर्शन किये।

४ बजेसे ६ बजे धातुवाद सभाकी साय कालीन कार्यवाही श्री वैद्यराज महन्त मुरलीमनोहरजी उदयपुर की अध्यक्षतामें हुई। श्री शांतिभाईने धातुवादपर उत्तम विवेचन किया और अन्य वक्ताओंके भाषणके बाद आभार प्रदर्शन व अध्यक्षीय भाषण होकर सभा-विसर्जन हुई।

रातको भोजन एव विश्रान्ति तथा आयुर्वेदीय नाटकसे मनोरंजन हुआ।

तदुपरात सब वैद्य प्रतिनिधि महानुभाव यथा-स्थान पधारे।

अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसंधान सम्मेलन

कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर)

प्राक्कथन

[लेखक:—श्री शिवनारायणजी पनपालिया]
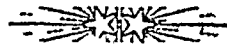
आज इस सम्मेलनका उद्घाटन इस छोटेसे ग्राममें हो रहा है। भारत देहातमें है। देहाती दुनियामें इस गम्भीर रसविद्याका विचार विमर्श होना यह भारतके मूलभूत सिद्धान्तोंके अनुसार ही है। प्राचीन भारतमें ब्रह्मविद्या, योगविद्या आदि की खोज अरण्यमें ही होती थी। रसविद्या भी ऐसी ही समकक्ष विद्या है। इस विद्याका विशेष रूपसे विवेचन रसोपनिषद्, रसार्णव, रसहृदयतन्त्रम् ·आदि ग्रन्थोंमें मिलता है। यह विद्या आधुनिक समयमें प्राय' लुप्त ही है। इसकी भाषा शैली भी काव्यमय, उपमामय होनेसे सरलता से समझमें आती नहीं।

इस विद्याको गोपनीय रखनेका आदेश भी है। क्योंकि इसका दुरुपयोग न हो। अधिकारीको ही प्रदान करनेका आदेश है ताकि वह इसका सदुपयोग करे और अपनी भौतिक तथा पारमार्थिक उन्नति करे।

श्री कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय जिसके अन्तर्गत श्रीकृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन है इसने अपने जीवन कालमें सन् १९३० से आज तक आयुर्वेद जगत्की सेवाका कार्य ही अपना लक्ष्य बना रखा है। इस संस्थाके संस्थापक तथा प्रवर्त्तक श्री स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराज तथा श्री ठाकुर नाथूसिंहजी इसी उद्देश्यको लेकर इस संस्थाके कार्यमें संलग्न हैं। सन् १९४५ में यह संस्था ट्रस्ट बोर्डकी सुरक्षिततामें सौंपी गयी तब इसकी पूंजी करीब पचास हजार रुपये थी आज करीब छे लाख है। संस्थाकी अपनी रसायन शाला, मुद्रणालय, आतुरालय तथा अन्य भवन है। अब विशेष रूपसे पिछले दो वर्षोंमें संस्थाने रस विद्यामें प्रवेश करना शुरु किया है। शास्त्रीय विधिके अनुसार पारदके अष्ट संस्कार किये हैं जिनके प्रयोग प्रदर्शनी में रखे हैं। आगेके संस्कार भी चालू हैं ये सब प्रयोग बंबईके राजवैद्य श्री शान्तिलाल जोशी की देखभालमें हो रहे हैं। आजकल पारदकी कमी, महंगाई तथा फण्डकी कमीके कारण इस कार्यमें कुछ रुकावट आती है, फिर भी संस्था इस कार्यकी महानता को देखकर आगे बढानेमें प्रयत्न शील है।

उद्देश्य

समस्त भारतका लक्ष्य इस महान कार्यकी तरफ आकर्षित हो, संस्कार युक्त पारदसे अनेक आयुर्वेदीय दिव्य औषधियोका निर्माण हो, वैद्य समाज इसको समझे इसी उद्देश्यको लेकर इस सम्मेलनका आयोजन किया है। संस्था तथा संस्थाके ट्रस्ट मंडलको पूरी उम्मेद है, गुण ग्राही यहाँ एकत्रित हुवा विद्वत् समाज, इस विद्या को समझनेकी चेष्टा करे तथा इस कार्यमें प्रवृत्त होवे।

सिंहावलोकन

आज तीन दिनमें यह रसशास्त्रका यज्ञ रूप कार्य अव्याहत रूपसे चल रहा है। अनेक विद्वानोंके प्रवचन सामने है रसशास्त्र रसविद्याकी और समस्त भारत का ध्यान आकृष्ट किया गया है। यह भी आनन्दका

विषय है विद्वन् समाजने इसी कार्यको आगे चालू रखनेका निश्चय किया है। भुक्ति, मुक्ति प्रदायिनि रस विद्याकी और पारदके संस्कारोकी और भारतीय शासनका भी ध्यान आकृष्ट किया है। राजस्थान शासन के जो प्रतिनिधी यहांपर उपस्थित है उन्होंने भी इसको प्रोत्साहन देनेका स्वीकार किया है, यह गौरवकी बात है। यह संस्था इस कार्यमें उत्तरोत्तर सहयोग देनेका अपना अभिवचन देती है।

रसविद्या समस्त वनस्पति, खनिज पदार्थ आदिमें प्रवेश करती है। पारदके विविध संस्कारोंमें धातु पर क्रिया प्रतिक्रिया की जाती है। मलका शोधन तथा गुणाधान या गुणोंकी वृद्धिकी जाती है। विशेष गुण युक्त विविध रसायन निर्माण करनेकी और प्रयास है जिसके उपयोग देहके रोगोका उन्मूलन तथा शारीरिक बलकी वृद्धि हो। (Sound mind in a Sound Body) स्वस्थ शरीरमें मन भी प्रशान्त रहता है। शान्त एकाग्र मनसे चित्तवृत्तिका निरोध होता है। वासना काबूमें आती है। मनोनिरोध, वासनाक्षयके साथ साथ ज्ञानका प्रकाश भी फैलने लगता है। घृत्ति पदार्थ विशेष अन्दर घुसनेसे बुद्धिकी तीव्रता बढती है। एकाग्र, व्यवसायात्मिका बुद्धि मनुष्य मात्रको शान्त, सरल, तथा ज्ञानका अधिकार प्रदान करती है और हृदयमें ज्ञान सूर्य प्रकट होता है। जिससे अन्तिम लक्ष्य मोक्षकी और मनुष्य मात्र बढ़ सकता है।

पदार्थ विज्ञानकी दृष्टिसे भी इस कार्यका विशेष महत्व है। शास्त्रमें श्रद्धा होना तो जरूर आवश्यक है। अधिकारीके सद्गुण भी आवश्यक हैं। इसी मूल नींवपर खड़ा रहकर इस विद्यामें प्रवेश करना चाहिये। सभी भाई बहन स्वच्छ अन्तःकरणसे, बुद्धियुक्त होकर एकाग्र चित्तसे इसमें प्रवेश करे यही प्रार्थना है।

इस विद्याके विविध पहलू पर प्रकाश डाला गया है। धातुवाद में प्रवेश होने पर अन्य धातुओं पर पारद की क्रियासे सुवर्ण भी बन सकता है किन्तु धातुवाद गहन है अभी इस संस्थाका लक्ष्य रसायन वादकी तरफ ही है जिससे अन्य दिव्य औषधी निर्माण हो सके। आयुर्वेद जगत् में संस्था ने अपने रसतन्त्रसार, चिकित्सा तत्त्व प्रदीप आदि २८ ग्रन्थों द्वारा प्रकाश डाला है उसीको आगे बढ़ानेके लिये रस शास्त्रका अंगीकार किया है। प्रभु हमें इस कार्यमें आगे बढावे, यही प्रार्थना है।

आप गुणग्राही जन इस कार्यमें सहयोग देकर संस्थाके कार्यको आगे बढनेमें सहायक हों तो इसका प्रचार उत्तरोत्तर बढेगा, यह हमको उम्मेद है।

यह संस्था तथा उसका ट्रस्ट मंडल, आपने यहां पधार कर अपना अमूल्य समय दिया तथा इस सम्मेलनको सार्थक बनाया इसके लिये हम आपका हृदय से अभिनन्दन करते है।
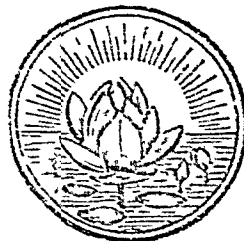
★ अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन का उद्घाटन ★
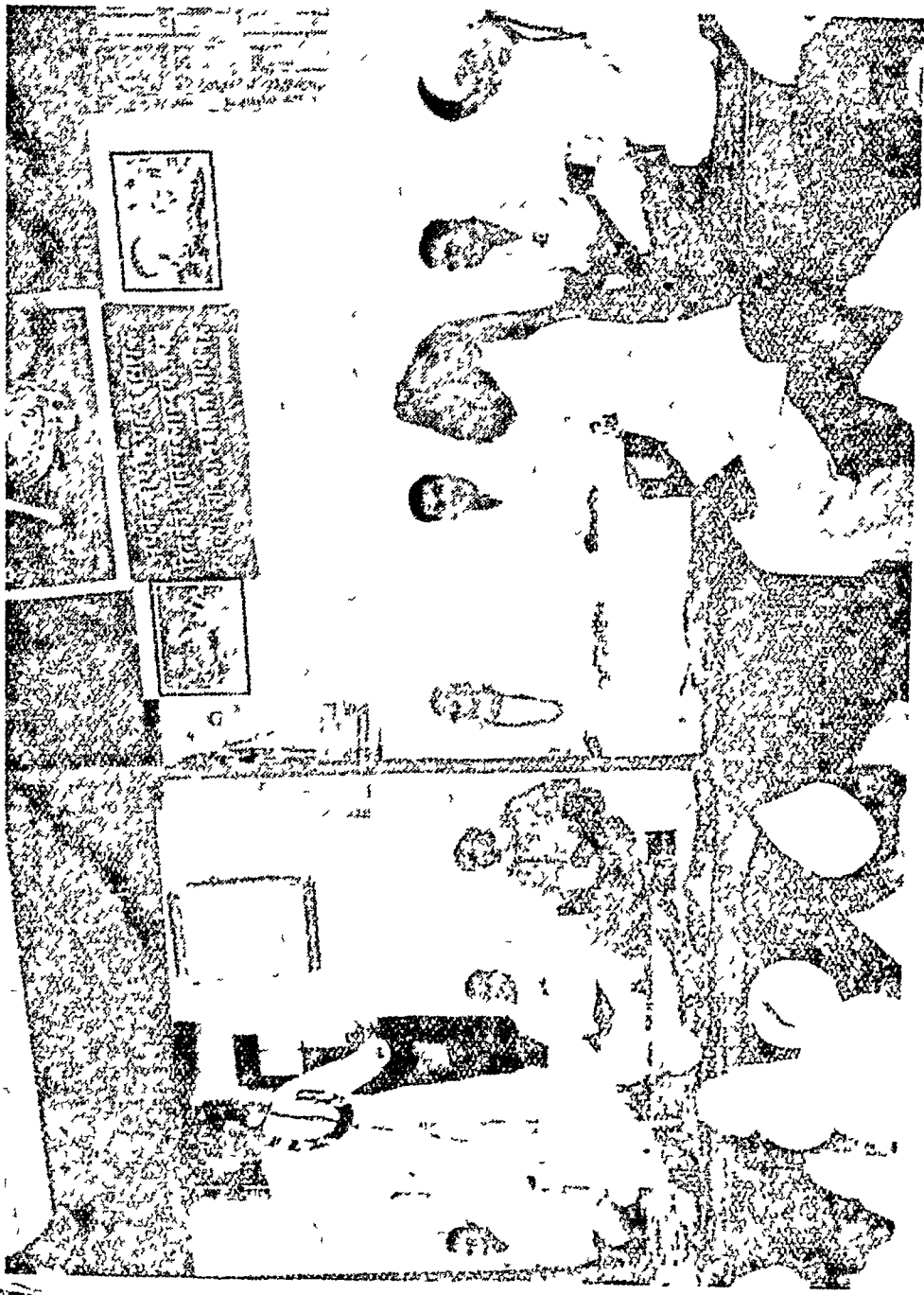
श्री शिवनारायणजी पनपालिया (आकोला) प्राक्कथन निवेदन करते हुये, बांये से दांये—श्री नारायण स्वामीजी कनखल, श्री सम्पूर्णानन्दजी चम्बा, पूज्य स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराज कालेडा, श्री युवराजकुमार कोटा, श्री ब्रह्मदत्तजी भार्गव तथा श्री ठाकुर नाथूसिंहजी कालेड़ा विराजे हैं।

अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन
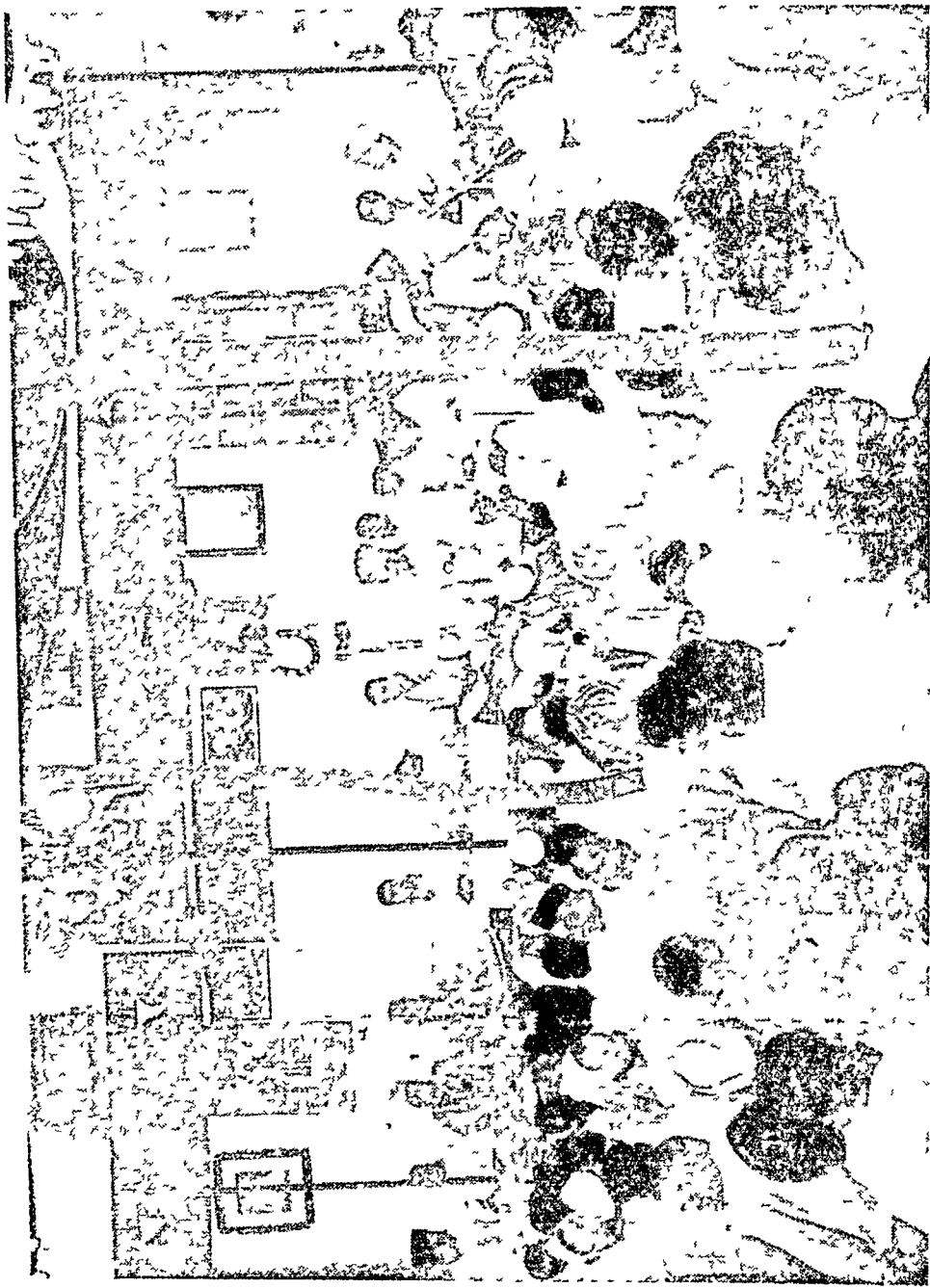
वैद्यवर श्रोताओंके सम्मुख श्री रा ब सेठ श्री भागचन्दजी सोनी सम्मेलन के भव्य आयोजन के प्रति दो शब्द निवेदन कर रहे है।

श्री० रायसाहब ब्रह्मदत्तजी भार्गव B. A. LL. B. किशनगढ़

स्वागताध्यक्ष-श्री पारद अनुसन्धान सम्मेलन, कालेड़ा-कृष्णगोपाल का

आदरणीय महाराज कुमार-कोटा श्री० पूज्य स्वामीजी तथा समस्त देशदेशान्तर गत रसशास्त्रियो वैद्य बन्धुओं एवं देवियों !

आज पारद अनुसंधान सम्मेलन का श्री गणेश हुआ है। मैं इस संस्था का ट्रस्टी हूँ किन्तु मैं यहां ट्रस्टी की हैसियत से नहीं आया हूँ बल्कि देश के नागरिक के नाते निवेदन करता हूँ, इस कार्य का श्रेय जिनको है उनके लिये श्री० पलपालियाजी ने आप लोगों के सम्मुख निवेदन किया है।

वनस्पतियो पर आधारित कृष्ण गोपाल आयुर्वेदीय औषधालय का मुख्य केन्द्र इस ग्राम में अवस्थित है। जिसका शुद्ध एव वनस्पति के वातावरण में होना एक परम सौभाग्य की बात है। उससे भी परम सौभाग्य की बात यह है कि उसी सुन्दर एवं पवित्र वातावरण में आज यह अखिल भारत वर्षीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन होने जारहा है।

इस संस्था की सारी आय आयुर्वेद की तथा संस्था की उन्नति करने में ही लगाई जाती रही है। सब प्रकारके प्रयोग वैद्य जगत में प्रसारित किये जाते हैं कोई भी प्रयोग गुप्त नहीं रखा जाता। यहां यह १ विशेषता आपको मिलेगी। इसी लिये यह छोटा सा गांव होते हुये भी कार्य क्षेत्र में खूब बढा हुआ है।

पूज्य स्वामीजी महाराज ने इस कार्य के लिये इस छोटे से गांव को चुना, यहां इन्होंने काफी कष्ट उठाये। १२-१३ वर्ष तक लगातार कष्टो व बाधाओ को सहते हुये भी पूरी लगन से कार्य किया। जिसके फल स्वरुप यह सुन्दर, विशाल व जनउपयोगी संस्था आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

मुझे प्रसन्नता है कि इस संस्था ने थोड़ेमे समयमें कितनी प्रगति की है और आज पारद अनुसधान सम्मेलन करने जा रही है। जिसके द्वारा आयोजित विशाल सम्मेलन को देखने व भाग लेने के लिये आप विद्वान वैद्य एकत्रित हुये। यह बनावटी प्रसिद्धि नहीं किन्तु वास्तविक प्रगति व प्रसिद्धि है। प्राचीन समय में वैद्य लोग गुप्त भाषा में ग्रन्थ रचना कर गये और बहुतोंने प्रयोगों को गुप्त भी रखा किन्तु किसी भी विद्याको किसी भी प्रकार से गुप्त नहीं रखना चाहिये, उनको प्रकट करने से ही उन्नति होना संभव है। यही नीति इस संस्था की है। यहां की प्रकाशित पुस्तको में जिनमें कि अनुभूत प्रयोग व चिकित्सा स्पष्ट प्रकट की गई है, उनको सरकार की ओर से मान्यता भी प्राप्त है, विद्यालयों में यहां की पुस्तकें पढ़ाई जाती है। और लोग उनका आदर व प्रशसा करते हैं।

आयुर्वेदीय पद्धति व औषधियां देश, काल व ऋतु अनुकूल होने से भारत की जनता के लिये अन्य विदेशी पद्धतियो की अपेक्षा अधिक उपयोगी है।

आयुर्वेद में पारद का विशिष्ट स्थान है और उसी से अनेक रस रसायन बनते हैं जो कि लोक में महान उपकारी व वरदान सिद्ध हुये हैं। उन्ही का विश्लेषण इस सम्मेलन में किया जायगा।

मुझे पूर्ण विश्वास है। कि इस सम्मेलन में जो विद्वानोंद्वारा विचार विमर्श होगा उससे इस अनुसन्धानको अवश्य लाभ पहुँचेगा।

पूज्य स्वामीजी ने अपने ध्येय व कार्य को स्थायी बनाने हेतु जो प्रण लिये वे नियमित व उदार हैं ये प्रण जनता के हितो के हेतु ही हैं।

जो प्रगति यहां हुई है उसका आप सब निरीक्षण करें। पारद सम्बन्धी प्रक्रियाओ को देखें। और इस विज्ञानको देश हितके लिये आगे बढ़ानेमें हाथ बटावे।

अब मैं मेरे भाषण की समाप्ति के पूर्व पूज्य स्वा० कृष्णानन्दजी महाराज तथा ठा० श्री नाथूसिंहजी को जिन्होंने अपना सर्वस्व तथा जीवन इस संस्था के शुभ निर्माण कार्य में अर्पण किया व आज ऐसा शुभ अवसर प्राप्त करवाया उनको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ।

श्री० युवराज कुमार कोटा तथा उपस्वास्थ्य मन्त्री राजस्थान के श्री भीखाभाई तथा विशिष्ट विद्वान वैद्यराजों का हार्दिक स्वागत करते हुये जो उन्होंने इस ग्रीष्म ऋतुमें यहां पधारनेका कष्ट किया हैं तथा हमें जो प्रोत्साहन दिया है उसके लिये सादर आभार प्रदर्शन करता हूँ।

— स्थापना और वृतांत —

(पृष्ठ ४९६ का शेष)

उक्त पॉम्ट वारफराडका उपयोग करना पड़ा परिणाममें अजमेर स्टेट गवर्नमेण्टसे सस्थाको कुछ भी नहीं मिल सका था। ७००००) रु० कर्ज हुआ। ४०००-४५००) रु० व्याज प्रतिवर्ष बढने लगा। व्याजसह इस ऋणको किस तरह जल्दी वापस देकर उऋण हो सके. यह चिन्ता था उपाधि बाह्य दृष्टिसे शिरपर सवार हुई थी। श्रीहरि ने बाहरसे सहायता मिलनेका मार्ग निकाल दिया था। एवं कुछ कालके पश्चात् केन्द्रीय सरकारके आरोग्य मन्त्री श्री राजकुमारी अमृतकौर से भी २५०००) रु० मिला इस तरह् भार कम होता गया और १९५५ में सस्था विशेपांशमें निश्चित् बनी थी।

फिर थोड़े ही समयके भीतर मुद्रणालयके विकास और पारद अनुसंधानको वेग देनेकी प्रेरणा मिली। इस निमित्त कुछ सहायता पूर्व अफ्रीकासे मिल गई। कहां भारतके छोटेसे गांवमें यह छोटी सी संस्था और कहां पूर्व अफ्रीका। प्रेरक शक्तिने विदेशमें प्रेरणा पहुँचाई। पूर्व आफ्रीका वासियोके हृदयमें आकर्षण उत्पन्न कराया। वहांसे सद्भावपूर्ण पत्र आया। मैं वहां गया ५००००) रु० अधिक सहायता प्राप्त हुई। भावी सम्बन्ध स्थापित हुआ, जो अभी तक सुदृढ है।

उतनी सहायता मिलनेपर भी काफी कमी महसूस होती थी। श्रीहरि मार्ग निर्विघ्न बनायेंगे, यह विश्वास दृढ था ही। काफी रकमकी व्यवस्था करनेकी आवश्यकता थी। यह भार भी श्री हरिने ही वहन किया था और हमारी चिन्ता दूर होकर मानसिक प्रसन्नता हमें मिली थी।

१९५७ ई० के आरम्भसे ही मकान निर्माण कार्य और पारद अनुसधान कार्योंको काफी वेग देना पड़ा। उपास्य देवने वंशागत प्राप्त अनुभव वाले रसायनाचार्य को छोटे ग्राममें रहनेकी प्रेरणाकी। रसायनाचार्य शांतिलाल प्राणजीवन जोशी बम्बईसे यहां आये और उनने दिन-रात एक करके एक वर्षमें शास्त्र कथित पारद क्रियोपयोगी कई नूतन द्रव्य निर्माण किये। पारद अष्ट संस्कार ४ बार किये। पक्षछिन्न और बुभुक्षित पारद तैयार किया उसमेंसे तलस्थ पूर्ण-चन्द्रोदय हेमगर्भपोटली रस, पारद भस्म ये ३ औषधियां तैयारकी। अन्य औषधियां अब तैयार हो रही है। जो शनैः शनैः क्रमशः बनती जायगी।

उक्त दो कार्योंके लिए भी काफी रकम खर्च करनी पड़ेगी। हां विशेष निर्मित औषध विक्रीकी कुछ-कुछ आय भी होती जायगी किन्तु ५५०००) रु० कर्ज था और इसके अतिरिक्त शीघ्र जनता और वैद्य समाज के समक्ष सब प्रयोग उपस्थित कर देने की प्रेरणासे सम्मेलन बुलाया गया था। ८०००) रु. से १००००) रु. खर्च हो गया है। इस ऋणभारको कम कराना है। नया खर्च चालू रहेगा इन दो कारणोसे इस वर्षके अन्त तक कठिनाइयोका सामना हमें करते ही रहना पड़ेगा, ऐसा अभी अनुभव हो रहा है। आगे तो हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारा मार्ग निष्कंटक ही रहेगा।

अब श्रीमद्भागवत् एकादश स्कन्ध का एक समर्पण मन्त्र कहकर समाप्त करता हूँ।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद्यत् सकलं परस्मै
नारायणेति समर्पयेत् ॥
ॐ शान्तिः। शान्तिः। शान्तिः॥

अ० भा० पारद अनुसन्धान सम्मेलन
कालेड़ा

श्री युवराज महाराजकुमार श्री बृजराजसिंहजी सा. M.A.
कोटा (राजस्थान)

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा
— के —
सैक्रेटरी महोदय
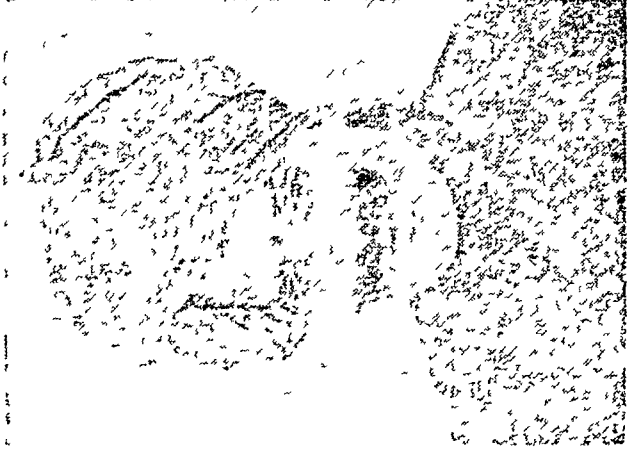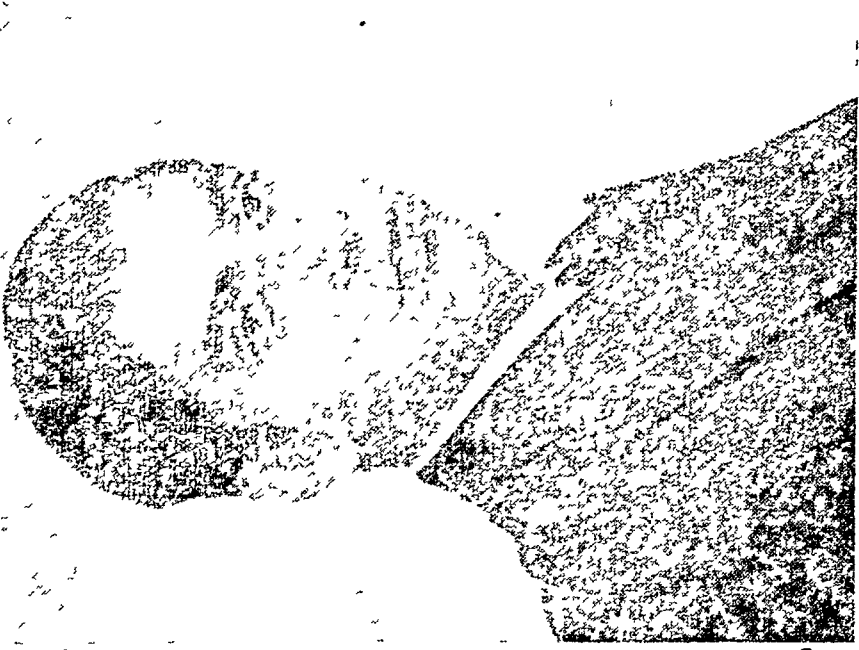
चि० कुमार श्री जसवन्तसिहजी साहब
कालेडा (अजमेर)

अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसंधान सम्मेलन कालेड़ा में

परम आदरणीय, हाड़ा-कुल दिवाकर, श्री श्री युवराज (महाराज कुमार)

श्री बृजराजसिंहजी महाराज सा० बहादुर कोटा का

उद्घाटन भाषण

देवियों और सज्जनो।

मुझे बड़ा हर्ष है कि आज आप सज्जनों के मध्य में 'अखिल भारत वर्षीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन का उद्घाटन करने को उपस्थित हुआ हूँ।

आज से लग भग २९ वर्ष पूर्व जिस कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय की स्थापना रोग पीड़ित ग्रामीण जनता की आर्त्तपुकार से द्रवित होकर स्वामी श्री कृष्णानन्दजी ने इस कालेड़ा ग्राम में उदारचित्त, सेवापरायण ठा० श्री नाथूसिह जी के सहयोग से की थी, उसे इस विशालरूप में देख कर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। यह इनके परिश्रम व हार्दिक लग्न का ही फल है कि आज हम यहां इस संस्था की विभिन्न प्रवृत्तियां-रसायनशाला, आतुरालय, चिकित्सालय, मुद्रणालय, आयुर्वेदिक पुस्तकालय आदि देख रहे हैं।

सदियों की पराधीनता के कारण हमारे प्राचीन आयुर्वेद के ग्रन्थों और औषधियों का ह्रास हुआ और देशमें विदेशी औषधियों ने महानता पाई। परन्तु इससे विरोध नहीं किया जा सकता कि भारत के अन्न, जल, वायु से पले पोसे मानव समाज को यहां की भूमि से उपजी हुई औषधियां ही व मुकाबले विदेशी औषधियों के विशेष गुणकारी व लाभ दायक प्रमाणित हुई हैं।

विदेशी चिकित्सा पद्धतियों के इसे जड़मूल से उखाड फेंकने के प्रबल आक्रमणों के बाद भी यह आयुर्वेद चिकित्सा 'छिन्नोद्भवा अमृता, सजीवनी आदि अलौकिक औषधियों के प्रभाव से हरी दूब की तरह इस देव भूमि में जीवित है और जीवित रहेगी।

भारत को स्वतन्त्र हुये बारह वर्ष हो गये फिर भी आयुर्वेद चिकित्सा को इस उच्च अमृत विद्या को अभी वह स्थान नहीं मिल पाया है, जो मिलना चाहिये था, आशा है अब शीघ्र ही हमारी यह कामना पूरी होगी।

कालेड़ा औषधालय की उन्नति का श्रेय एक मात्र आयुर्वेद के मर्मज्ञ, लोकहितमें दत्तचित्त, निःस्वार्थी, त्यागी व परिश्रमी स्वामी श्री कृष्णानन्दजी और उनके सहायक श्री ठाकुर नाथूसिहजी व श्री कुंवर जसवन्तसिंहजी ही को है, जिन्होंने निर्लोभ, निराभिमानी होकर रोगियों की सेवा करने में तन, मन, धन से हाथ बटाया है। इन्हीं के त्याग, उद्योग, परिश्रम, जनसेवा और परोपकारिता की लग्न का परिणाम है कि आज यहां 'अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन' का यह विशेष एवम् महत्व पूर्ण समारोह होने जा रहा है।

यहां के कुछ गणमान्य और सुहृदय सज्जनों ने मुझे इस विराट सम्मेलन का उद्घाटन करने का आग्रह किया है, हाला कि मैं इस विषय का ज्ञाता नहीं हूँ, फिर भी ऐसे बुद्धिमान समुदाय के मध्य में इस कार्य्य के वास्ते आमंत्रित किया जाने में मैं अपने आपको बड़ा सम्मानित हुआ समझता हूँ, और इसके वास्ते आप सज्जनों का हृदय से आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि भारत के विभिन्न प्रान्तों से यहां सम्मिलित हुये सभी विद्वान, आयुर्वेदाचार्य मिल कर शुद्ध मन व सद्बुद्धि से इस पारद अनुसन्धान सम्मेलन को सफल बनावेंगे।

२७ मार्च १९५९

हे चन्द्रचूड़ मदनांतक शूलपाणे, स्थाणो गिरीश गिरिजेश महेश शंभो ।
भूतेश भीत भयसूदन मामनाथम्, संसार दुःखगहनाद् जगदीश रक्ष ॥१॥

हे पार्वतीहृदयवल्लभ चन्द्रमौले, भूताधिप प्रमथनाथ गिरीशजाप ।
हे वामदेव भवरुद्र पिनाकपाणे, संसारदुःखगहनाद् जगदीश रक्ष ॥२॥

हे नीलकंठ वृषभद्वज पंचवक्त्र, लोकेश शेषवल्लभ प्रमथेश शर्व ।
हे धूर्जटे पशुपते गिरिजापते मां, संसार दुःखगहनाद् जगदीश रक्ष ॥३॥

हे विश्वनाथ शिवशंकर देवदेव, गंगाधर प्रमथनायक नंदिकेश ।
बाणेश्वरांधकरिपो हरलोकनाथ, संसार दुःखगहनाद् जगदीश रक्ष ॥४॥

वाराणसीपुरपते मणिकर्णिकेश, वीरेशदक्षमखकालविभो गणेश ।
सर्वज्ञ सर्वहृदयेकनिवासनाथ, संसार दुःखगहनाद् जगदीश रक्ष ॥५॥

श्रीमन्महेश्वर कृपामय हे दयालो, हे व्योमकेश शितिकंठ गणाधिनाथ ।
भस्मांगराग नृकपाल कल्याणमाल, संसार दुःखगहनाद् जगदीश रक्ष ॥६॥

कैलाशशैलविनिवास वृषाकपे हे, मृत्युंजय त्रिनयन त्रिजगन्निवास ।
नारायणप्रिय मदापह शक्तिनाथ, संसार दुःखगहनाद् जगदीश रक्ष ॥७॥

विश्वेश विश्वभवनाशित विश्वरूप, विश्वात्मक त्रिभुवनैक गुणाभिवेश ।
हे विश्वबन्धु करुणामय दीन बन्धो, संसार दुःखगहनाद् जगदीश रक्ष ॥८॥

गौरीविलास भुवनाथ महेश्वराय, पंचाननाथ शरणागत कल्पकाय ।
सर्वाय सर्वजगतामधिपाय तस्मै, दारिद्रय दुःख दहनाय नमः शिवाय ॥९॥

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन के समस्त कर्मचारी गण
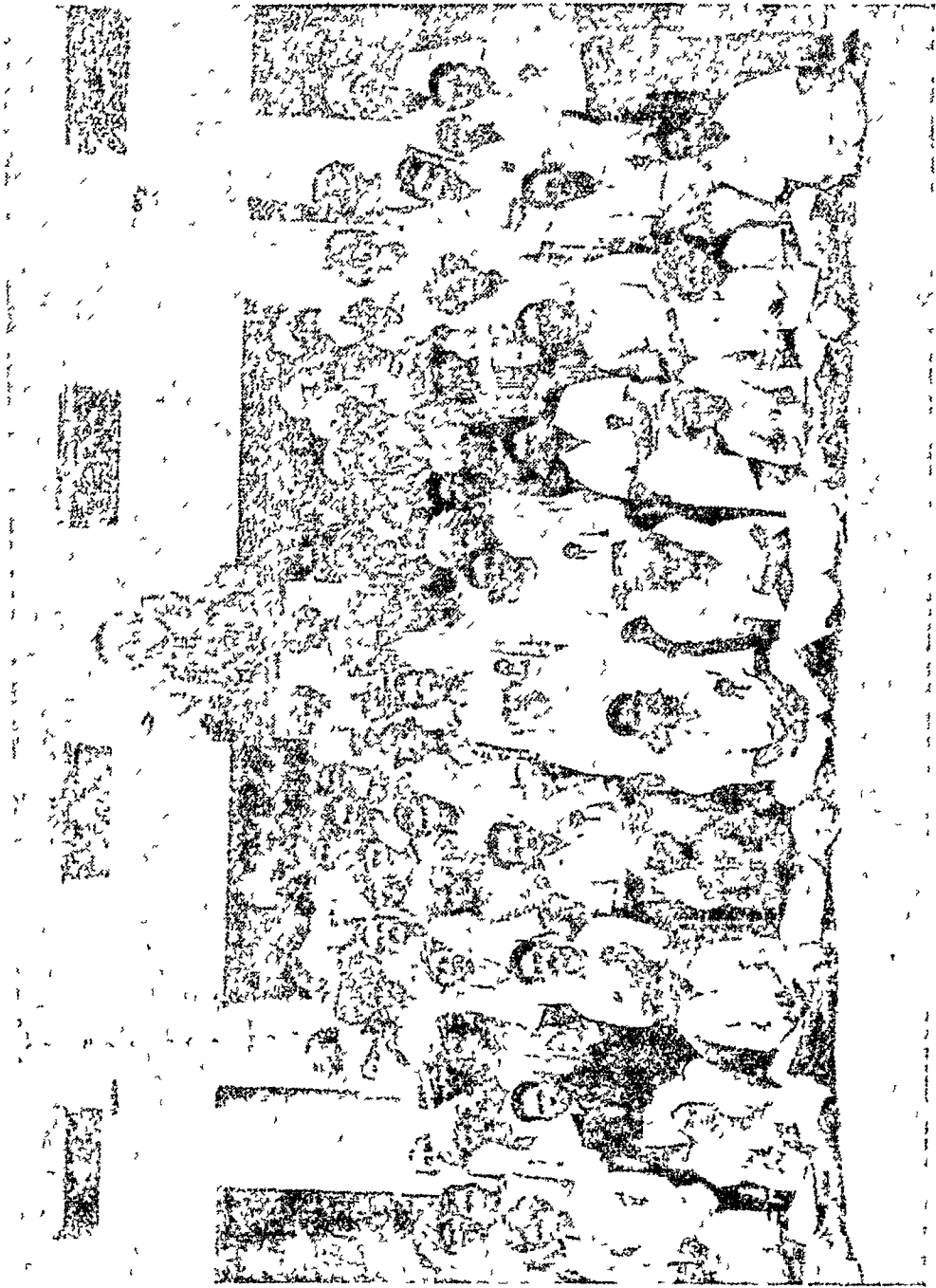
बांयें से दायें कुर्सियों पर—गोकलचन्दजी खजाञ्ची, बाबू मनोहरलालजी, कुं० जोरावरसिंहजी, श्री विष्णुभाई पटेल व्यवस्थापक, वैद्य शान्तिलालजी रसायनाचार्य, प्रधान वैद्य बद्रीनारायणजी, नरहरि बाबू, वैद्य पुरुषोत्तमजी, मोतीलालजी लाठी।

अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन की विशाल प्रदर्शिनी का

उद्घाटन

दांयें से बायें—श्री भीखाभाई उपस्वास्थ्य मन्त्री राजस्थान, श्री युवराज कुमार कोटा,
श्री ठाकुर साहब नाथूसिंहजी कालेड़ा

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन, कालेड़ा द्वारा आयोजित
भारत के रसायनाचार्यों की विद्वत् परिषद् एवं प्रदर्शनी उद्घाटन के अवसर पर
राजस्थान के उप स्वास्थ्य मंत्री श्री भीखाभाई का
उद्घाटन भाषण

सज्जनों,

मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि ऐसी प्रदर्शनी तथा विद्वत्परिषद्का महत्वपूर्ण उद्घाटन मुझजैसे नोन-टेकनिकल व्यक्तिसे कराया जा रहा है। जब कि भारत वर्षके सभी प्रान्तोंके विद्वान् इस रस शास्त्र जैसे महत्त्व पूर्ण विषय पर चर्चा करनेके लिये यहां पधारे है। परन्तु आपने सौहार्द और स्नेहसे जो इस सेवाका भार मुझे दिया है उसके लिये में आभारी हूँ।

आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञानके इतिहास पर सिहावलोकनसे यह तथ्य छिप नहीं सकता कि यह चिकित्सा विज्ञान किसी जमानेमें सारे विश्वका चिकित्सा विज्ञान माना जाता था। परन्तु करीब १५०० वर्षोंसे इस चिकित्सा विज्ञानमें अधिक प्रगति नहीं हो सकी। इसका एक मात्र कारण राजाश्रय अभाव तो था ही परन्तु परिश्रम और स्वास्थ्यकी कमी चिकित्सकोंमें भी आती गई। इससे नागार्जुनके बाद अनुसंधानका काम इस चिकित्सा विज्ञानमें नहीं हो सका। नागार्जुनके पहिले अधिकतर वनस्पति चिकित्सा शास्त्रका ही अधिक प्रचार था और वनस्पतियोंके गुण धर्मोंके सम्बन्धोंमें भी काफी चर्चाएं हुईं। इस देशके विद्वानोंने दूसरे देशोंके विद्वानोंको भी ऐसी गोष्ठियोंके मौके पर आमंत्रित किया और वे इस विषयमें किसी नतीजे पर भी पहुँचे। जब कुछ लोग भूमिकी आर्कषण शक्तिके ह्रासका अनुभव करने लगे जिसके परिणाम स्वरूप वनस्पतियोंकी विशिष्ट कार्य शक्तिमें भी कमी अनुभव मे आने लगी तो कई विद्वानोंने पारद और अन्य खनिजोंके अन्वेषण कार्य द्वारा स्वत ही एक रस चिकित्साका नया अध्याय आरम्भ किया। शंकराचार्य के गुरू भगवन् गोविन्द पादाचार्य ने इस सम्बन्धमें काफी खोजकी और पारदको बुभुक्षित बनाकर न केवल ऐसे पारदसे असाध्य एवं कृच्छ्र साध्य रोगोंपर ही विजय पानेका प्रयास किया बल्कि बुभुक्षित पारद द्वारा स्वर्ण और रजत बनानेका काम भी हाथमें लिया। ऐसा रस ग्रन्थोंके देखनेसे ज्ञात होता है।

नागार्जुन जो भारतीय रसायन शास्त्रका सर्वोत्कृष्ट विद्वान माना जाता है, उसके द्वारा रस चिकित्सा के विकासमे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया गया यह सर्व विदित है। "जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ" के सिद्धान्तके अनुसार यह परम्परा भारतवर्षमें नाथसंप्रदाय तक चलती रही और एतिहासिकोंका ख्याल है कि इस दिशाके रसायनाचार्योंने राज्य शासनमें भी राजाओंको अर्थके भयसे मुक्त रखा। अस्तु यह एक लम्बा विषय होगा। अत: सक्षेपमें मै प्रासगिक विषय पर ही आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा कि जिस दशामें त्यागी तपस्वियोंने कन्द मूल फल खाकर राजाश्रयकी परवाह नहीं कर जगलोंमे व गिरी गुफाओंमें बैठकर वर्षा, शीत और घाम की कोई परवाह नहीं करते हुए अपने निरन्तर कर्त्तव्य निष्ठा द्वारा पारद संस्कारों पर जो काम किया वह दुनियाके लिए आज भी एक आदर्श वस्तु है।

मुझे यह कहते हुए दुःख है कि हम लोगोंने आलस्य और प्रमादके वशमें होकर इस महत्वपूर्ण रस और रसायन विद्याके लाभको ठुकरा दिया। यदि इसपर अनुसंधानकी परम्परा हम जारी रखते तो आज ससारके सामने हमें लज्जित होनेका अवसर नहीं आता। विगत इन १५०० वर्षोंमें इस देशमें कई उतार चढाव आये और विदेशी सत्ताकी दुर्नीतिमें एवं राजाश्रयके अभावसे इस विज्ञानमें प्रतिदिन ह्रासका

आना स्वाभाविक था। फिर भी मुझे यह प्रकट करते हुए गौरव है कि ऐसे संक्रामक कालमें भी त्यागी तपोनिष्ठ मनीषियो द्वारा इस ज्ञानको सुरक्षित रक्खा गया और कई व्यक्ति इस ज्ञानकी विधियोंको भी जानते रहे और अपनी शिष्य परम्परा द्वारा आज भी इस ज्ञानको सुरक्षित रख सके। आजके युगमें कई विद्वान एव विज्ञ व्यक्ति भी इस अमुक विज्ञानको किसीको बता न सके, क्योंकि बतानेकी परम्परा विदेशी सत्ताके आतकसे नष्ट सी हो गई। कई लोग अपने व्यक्ति गत स्वार्थके कारण इस अमूल्य निधिको छिपाना चाहते हैं। कई लोग अपने पुत्रोको और शिष्योंको नहीं बताकर अपने साथ ही इस ज्ञानको ले गये। यह एक दुर्भाग्य पूर्ण परिस्थिति है। विदेशी विद्वान और रसायनाचार्य प्रतिक्षण आगे बढते चले जा रहे हैं जब कि हम लोग अपने बाप दादाओके गीत गाकर जिन्दा रहना चाहते हैं। जबकि आज स्फुतिनिकका जमाना है। सूरज और चांद तक आज वैज्ञानिक पहुँचनेका सफल प्रयास कर रहे हैं। ऐसे युगमें यदि हम आलस्य और प्रमादवश इस दिशा में कोई प्रगतिका कदम नहीं उठा सके तो हमारा यह दावा कि आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान राष्ट्रीय चिकित्सामें सहायक होगा, झूठा साबित होगा।

मुझे थोडी सी प्रसन्नता है कि कालेडा-कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवनके कर्मनिष्ट तपस्वी स्वामी श्री कृष्णानंद जी ने इस महत्वपूर्ण कार्यको कुछ वर्षोंसे अपने हाथ में लिया है। मुझे स्वामीजी से इस सम्बन्धमें समय समय पर काफी जानकारी मिली है और पारद सस्कार के श्री गणेश के अवसर पर राजस्थान सरकारके प्रतिनिधिके रूपमें मुझे यहाँ आनेका अवसर मिला है और आज मुझे इस विद्वत् परिषद्का उद्घाटन करते हुए भी प्रसन्नता है। स्वामीजी ने इस विषयके विशेषज्ञ श्री शान्तिलाल नामक विद्वानको बम्बईसे आमन्त्रित कर जो काम पारद सस्कारो पर कराया है उसमें कितनी सफलता मिली है यह तो जो विद्वान यहां आये हैं वो ही इसका निर्णय कर सकेंगे परन्तु ऐसे १५०० वर्षोंसे रुके हुए दुरूह कामको हाथमें लेनेका स्वामीजीका साहस अवश्य प्रसशनीय है। इसमें दो राय नहीं हो सकती। मुझे विश्वास है कि आरम्भमें ऐसे महत्वपूर्ण कार्य पर असफलता भी हो सकती है इसका कोई रज नहीं है। क्योंकि वैज्ञानिकोंके गत दिनके अनुभव आज भी यह सिद्ध करते हैं कि कितने वैज्ञानिक आविष्कारोंके अतिम परिणाम पर पहुँचने के लिये बलिवेदी पर चढ़े हैं और कितने चढ़ रहे हैं। हिमालयकी माउन्ट एवरेस्टकी चोटी पर चढनेका कितने व्यक्तियोने प्रयत्न किया, लेकिन आखिरकार सफलता श्रीतेनसिंह को मिली। हो सकता है स्वामी जीको अपने जीवन कालमें सफलता न मिले या न मिली हो परन्तु जो मार्ग उन्होंने बताया है उस पर चलने वाले राहगीर कभी न कभी उस मंजिल पर अवश्य पहुँचेगे जिस मजिल पर नागार्जुन पहुँचे थे। मै इस प्रसग पर मुद्रा राक्षसके पद्के भाव आपके सामने रखूँगा।

साधारण श्रेणीके लोग विघ्न आनेके भयसे किसी कार्यको आरम्भ ही नहीं करते, मध्यम श्रेणीके लोग शुभ कार्य आरम्भ तो कर देते हैं पर ज्यों ही बीचमें कोई विघ्न आया कि उसे छोड़ देते हैं, परन्तु उत्तम श्रेणीके लोग बार बार विघ्नोसे टक्कर खाकर भी प्रारम्भ किये कार्यको पूर्ण सफलता बिना नहीं छोड़ते हैं।

इस सिद्धान्तके अनुसार मै यह विश्वास करता हूँ कि स्वामीजीका यह प्रयत्न सारे भारतमें ही नहीं बल्कि कभी विश्वके इतिहासमें लिखा जायगा।

आप सभी भारत वर्षके माननीय मनीषी यहां आये हुए हैं और इस विषय पर अबतक होने वाले कार्यों पर विचार करने वाले है और भविष्यके लिये भी कोई निर्णय आप लेंगे और ऐसी चर्चाए इस देश में प्राचीन चिकित्सा विज्ञानकी समृद्धिके लिये आदर्श उपस्थिति करेगी ऐसी आशा है। जहां तक आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञानके साथ आज स्वतंत्र भारतकी सरकारके सहयोगका प्रश्न है, वह निश्चित मिलेगा। मैं राजस्थान सरकारकी ओरसे तो आपको विश्वास दिलाना चाहूँगा कि ऐसे सार्वजनिकहितोंके लिये किये जाने वाले कार्योंके विकासके लिये धनकी कमी रहने

(शेष पृष्ठ ५१८ पर देखे)

रस विद्या से मुक्ति

(पूज्य स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराज द्वारा ता० २८-३-५९ को सम्मेलनमें दिये हुए अपने विचार)

उपस्थित बन्धुओं और बहनें !

आजका विषय रसायनवाद है। इस रसायनवाद का आरम्भ लोह सिद्धिके पश्चात् करनेका आचार्योंने कहा है, क्योंकि इससे तन-मनमें दिव्यता आ जाती है। इस सम्बन्धमें रसार्णवकारने स्पष्ट लिखा है कि—

"पूर्वं लोहे परीक्षेत ततो देहे प्रयोजयेत् ।"

इस वचनके अनुरूप धातुवादकी परीक्षा पहले सम्यक् प्रकारसे की जाती थी; फिर रस देहपर प्रयोजित होता था।

भूतकालमें वासनाओंसे पूर्णांशमें निर्मुक्त आत्म-ज्ञानी कई संन्यासी, श्रमण, यति, विरक्त, ब्रह्मचारी और वीतराग गृहस्थादिके पास यह विद्या थी। वे अन्य अधिकारी शिष्योंको ही प्रदान करते रहते थे, यह विद्या वंश परपरागत अधिकारी अनुरूप आगे चलती थी। वंश २ प्रकारके हैं । पुत्र-पौत्रादि परम्परा और दूसरा शिष्यप्रशिष्य परम्परा से।

इस संसारके भीतर जन्म लेने वाले प्राणिमात्र पूर्वजन्मोंके संस्कारके हेतुसे दैवी संपत्ति युक्त या आसुरी सपत्ति युक्त होते है। दैवी सम्पत्ति जिनके पास है, वे भी बहुधा अज्ञानी होते हैं। वे भी सात्त्विक वासनाओं से बद्ध होते हैं। इन वासनाओका त्याग हुए बिना सच्चा अधिकार रसविद्याके ऊपर नहीं आ सकता। न वे अधिकारी बन सकते हैं।

इस सम्बन्धमें महाराष्ट्रके कवि शंकर मोरो रानड़े ने भी "कलहपुरी" नामक नाटकके प्रारम्भ में लिखा था कि—

विश्व सर्व ह तुरंग मोठा, प्राणिमात्र हैं कैदी ।
पदार्थ धर्मांच्या श्रृंखला त्यांने कोणि न भेदी ।।

यह प्रतीयमान विश्व बड़ा जेलखाना है उसमें सब उपस्थित प्राणि कैदी हैं। वे सब पदार्थ धर्म (प्रकृति के गुण और आशा-तृष्णा) की जंजीरसे बद्ध हैं। उस जंजीरको कोई भी वासना बद्ध गृहस्थ अभी तक भेदन नहीं करसका है।

यह वासनातंतु बाहरसे प्रतीत नहीं होता। मन-बुद्धिपर दृढतासे चिपका है संस्कार अनुसार जीवोंको अज्ञानकी ओर या बाह्य जगत्के विषयोकी ओर आकर्षित करता रहता है। उस वासनातन्तुके नाशमें पारदकी उपासना, पारदका सेवन, पारदकी पूजा, पारदकी अर्चन क्रिया, सब सहायक होते हैं। इसी हेतुसे आत्मज्ञानी वासनाओंसे मुक्त और वीतराग इस रस-विद्याको अपनी-विद्या मानते हैं।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब ये ज्ञानी आत्माराम है और वासनाओंसे पूर्णांश मुक्त है, तब सांसारिक पदार्थ—पारदपर और पारद (रस) विद्यापर एकाधिकार क्यो रखा ?

रसार्णवकारने कहा है कि—

गोमांसं भक्षयेद्यस्तु पिबेदमरवारुणीम् ।
कुलीनं तमहं मन्ये रसज्ञमपरेऽधमाः ।।

× × × ×

स्वदेहे खेचरत्वं य शिवत्वं येन लभ्यते ।
तादृशे तु रसज्ञाने नित्याभ्यासं कुरु प्रिये ।।

खेचरी मुद्राके जो अभ्यासी गोमांस (अपनी जिह्वाके नीचे लगी हुई सेवनीके मांसरस) का सेवन तथा अमरवारुणी (खेचरीमुद्राके अभ्यासमें मुखमें उत्पन्न लालास्राव तथा घण्टिका—Uvula से स्रवित रसके मिश्रण) का पान करता रहता है, उसे मैं कुलीन (श्रेष्ठ) रसज्ञ मानता हूँ। शेष रस सिद्ध पारमार्थिक कल्याणका मार्ग छोड़कर लोह सिद्धिमें ही लिपटे रहते हैं, उनको मैं अधम समझता हूँ।

हे प्रिय पार्वती देवी ! जो रससिद्ध देहके भीतर खेचरत्व (मस्तिष्क गगनमें वृत्ति लेजाकर निरुद्ध करने) और शिवत्व (ब्रह्म-आत्मकी एकता) का अनुभव जिस रसज्ञान (निर्विकल्प समाधिके पश्चात् धर्म मेघ समाधिसे उत्पन्न अनुभवात्मक ज्ञान) से हो, उसका नित्य नियमित अभ्यास करता रहे, वही मुझे प्रिय है। इस सिद्धिके हेतुसे सिद्धोंने इस विद्याको अपनाया है।

इसके अतिरिक्त इन प्रश्नों या शङ्काओंका उत्तर शास्त्रकारोंने जो दिया है, उनको संक्षेपमें यहां मैं दर्शाता हूँ।

१. रस-पारदको ईश्वरके प्रतीक स्वरूप माना है। इस सम्बन्धमें कहा है कि—

रसो दाता रसो भोक्ता रसः कर्ता च कारणम्।
रसो होता च हव्यं च सर्वव्यापी रसः सदा॥

२ इस रस विद्या द्वारा साधक अधिकारियोको मोक्षकी शीघ्र प्राप्ति होती है, इस पारद के आश्रयसे पहले मन स्थिर होता है, वृत्ति एकाग्र होती है। फिर वासना नष्ट होकर वृत्ति विलीन होती है। निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होती है। जिससे आत्मज्ञान उत्पन्न होता है। इस सम्बन्धमें कहा है कि—

अचिराज्जायते देवि! शरीरमजरामरम।
मनसश्च यथा ध्यान रसयोगादवाप्यते॥
सत्य च लभते देवि! ज्ञानं विज्ञानपूर्वकम्।
तस्य मन्त्राश्च सिद्ध्यन्ति योऽश्नाति मृतसूतकम्॥

३ ये सब लाभ मात्र अधिकारी हों, उनको ही मिलता है। वासना से बद्ध, राग द्वेषयुक्त अज्ञानी को नहीं। अतः शास्त्रकारों ने यह विद्या अधिकारियो को ही प्रदान करनेका आदेश किया है। अधिकारी किनको कहना? इस सम्बन्धमें रसार्णवकारने लिखा है कि:-

आदौ परीक्षयेद्देवि! साधकान् सुसमाहितान्।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्चानुक्रमेण तु॥
जितेन्द्रियाः क्लेश सहा नित्योद्यमसमन्विताः।
शूराश्च कृतविद्याश्च प्रशस्ता साधका. प्रिये!॥

एवं आनन्दकन्दमें शिष्यके लक्षण दर्शाये हैं कि:—

गुरुभक्तस्सदाचारो लोभमायाविवर्जितः।
निस्पृहो निरहंकारो सत्यवाङ् नियमास्थित:।
निरालस्यस्स्वधर्मज्ञः षट्कर्म निरतस्सुधीः॥
दम्भहिंसादिनिर्मुक्त. शिवाचारेषु दीक्षित.।
अत्यन्त साधक' शान्तो मन्त्रानुष्ठान तत्पर.॥
दान्त शिश्यःस विज्ञेय'शक्तिमान् गत मत्सर.।

उपनिषदो (वेदान्त) में अधिकारीका निर्णय स्पष्ट भाषामें नीचे लिखे अनुसार किया है।

विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति और मुमुक्षुता, जिन साधकोमें प्रतीत हों वे ब्रह्म ज्ञानके अधिकारी माने जाते हैं।

१. विवेक—नित्य-अनित्य वस्तु (चेतन और माया) का विवेक।

२. वैराग्य—इस लोक और परलोक (स्वर्ग आदि के भोगमें विरक्ति।

३ षट् संपत्ति—शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रिय-दमन), समाधान (मनके संकल्प विकल्पोंका नाश), श्रद्धा (शास्त्र वचन और गुरुदेवके कथनमें अचल विश्वास), उपरति (मनसे ही सब विषयोंपरसे दृढ उपरामता), तितिक्षा (सुख दुख, लाभ-हानि- मान-अपमान आदि द्वन्द्वोको सहन करनेकी शक्ति।

४, मुमुक्षुता—मोक्ष, पारमार्थिक कल्याण प्राप्त करनेकी उत्कट इच्छा।

इन विवेकादिसे सपन्न जो मनुष्य हो, उसीको ब्रह्मविद्या या रसविद्या देनेमें दुरुपयोग होनेका भय नहीं रहता है।

अब हमको रस विद्या क्या ब्रह्मविद्या है? यह देखना है; इसका अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग दोनो रूपोका विचार करना है। इस सम्बन्धमें रसार्णवकारने कहा है कि:-

रसविद्या परा विद्या त्रैलोक्येऽपि दुर्लभा।
भुक्तिमुक्तिकरी यस्मात् तस्माद्देया गुणान्विते॥

अर्थात् रसविद्याको पराविद्या माना है। इस विद्या द्वारा आत्मज्ञान होकर मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसी विद्याके लक्ष्यको ध्यानमें रखकर ही हम इस रसविद्या-ध्ययनमें प्रवृत्त हुए है। हमारा पारद अनुसन्धान प्रयोग कार्य इसी अन्तिम लक्ष्यको ले करके है।

रसविद्याका बहिरङ्गरूप अपराविद्या है क्योंकि रसविद्या अपरा और परा दो रूपो वाली मानी गई है। इसी हेतुसे भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी है। अपरासे भुक्ति और परासे मुक्ति। जहाँ तक संसारका सम्बन्ध है, इसके भुक्ति अगको ही प्राधान्य दिया जाता है और देह की सुदृढ़ता से सम्बन्ध जोड़ा जाता है।

इस कार्यसे देहकी सुन्दता कैसे प्राप्त हो, यह हम संस्कारित पारदके उपयोगसे प्राप्त कर सक्ते हैं यह शास्त्रसे विदित होता है। पारद यह एक दिव्य वस्तु है। किन्तु इसका दिव्यत्व अष्टादश संस्कारोंसे प्रकाशित होता है।

ये सब संस्कार गुरुदेवकी सन्निधिमें रहकर प्रारम्भमें किये जाते हैं। अन्यथा भूल हो जानेकी संभावना है।

इस विद्याका संरचण रससिद्ध मण्डल दृढतापूर्वक करता है। वह आस्तिक, भक्ति परायण, विनम्र साधकको आगे और आगे गति करानेके लिए पथ प्रदर्शन करता है। भ्रान्ति, प्रमाद वश भूल होती हो, तो सूचना भी करता है।

इस मार्गपर गमन करने वालोको आग्रह पूर्वक रसेश्वर भगवान्‌का अर्चन, पूजन आदि करना ही पडता है। अपने बुद्धि बलपर आगे नहीं बढना चाहिए। ऐसे कई अविचारी साधक तन, मन, धन और आयुसे हाथ धो बैठे हैं। अतः प्राचीन शास्त्र मर्यादाका आग्रह पूर्वक पालन करनेका निवेदन हैं।

रसक्रियामें आचार्योंने कई दिव्य औषधियोंका योग दर्शाया है। कई सामान्य ओषधियोंका उपयोग किया है। कई बार नामोके भ्रमवश भूल हो जाती है। विधि भेद, मात्रा, अग्नि, समयकी दृष्टिसे भूल होती है। इन सबकी अपेक्षा अज्ञानके हेतुसे होने वाली भूल अधिक हानिकर हो जाती है। इस हेतुसे भी गुरुदेवकी शरण ग्रहण करना आवश्यक है।

रस विद्या, यह सामान्यतः वैद्य समाजके लिए अपरिचित है। किसी कॉलेजमें इसकी शिक्षा नहीं मिलती। कोई फार्मसीने अभी तक इसके उत्थानका प्रयत्न नहीं किया है। इस हेतुसे साधकको यह अधिक आश्चर्य कर विद्या भासती है।

इस विद्याके ग्रन्थोंमें पारिभाषिक शब्द और सांकेतिक शब्दोंका प्रयोग अत्यधिक हुआ है। इस हेतुसे अपनी बुद्धिसे मनन करने वालोंको यह समझ में भी नहीं आ सकता।

स्थान स्थानपर पारद या रसका उपयोग किया है। सब स्थानपर सामान्य पारद नहीं लिया जाता। कई स्थानोंमें पक्षच्छिन्न, बुभुक्षित रसेन्द्र लिया जाता है। क्वचित १६ वेधी, शतवेधी, सहस्त्रवेधी और लक्षवेधी पारद भी आचार्योंने लिया है। नूतन साधक इन सबका विवेक सरलतापूर्वक नहीं कर सकता। इस हेतुसे भी सद्‌गुरु शरणका आश्रय लेना अच्छा माना जायगा।

प्रारम्भिक आठ संस्कारो तक मल विमोचन तथा गुणाधान दोनों साथ साथ होता जाता है। अष्ट संस्कार युक्त पारद पूर्ण रूपसे विशुद्ध तथा प्राण प्रधान चेतना युक्त बनता है। आगे जो संस्कार हैं वे गुणाधान मात्र ही हैं। इस पारदसे अनेक प्रकारकी दिव्य औषधियोंका निर्माण हो सकता है; जो रोगी को रोग मुक्त करनेमें सद्यफलदायिनी बनती हैं। अशक्तोंको शक्ति प्रदान करती हैं। अनेक शारीरिक विकृतियोंको दूर करके युवावस्थाकी स्फूर्ति प्रदान करती हैं।

आचार्योंने विशुद्ध ताम्र, रौप्य, सुवर्ण आदि को शोधन की आज्ञा की है। यह आज्ञा मल विमोचनार्थ नहीं है। किन्तु गुणाधानार्थ है। तक्र, तैल, गोमूत्र आदिमें कई बार प्राप्त, संस्कार करनेपर उसके द्वारा चेतनतत्त्वकी, सब धातुओंमें प्रवेश करनेकी शक्ति एवं रक्तादि धातुओंका श्रेष्ठ धातुओंमें रूपान्तर सरलता से हो जाने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस बातको जो नहीं जानते, वे भ्रान्तिमें पड़कर शोधन क्रियाका त्याग कर देते हैं। परिणाममें उक्त गुणोंकी उत्पत्ति रुक जाती है। यहां पर जो धातु लक्ष्मी विलास आदिमें मिलाना हो या पारदको ग्रास देना हो, उन सब कार्योंके लिये आग्रह पूर्वक आचार्य कथित शोधन करना ही चाहिए।

हमने इसका प्रयोग तलस्थ पूर्ण चन्द्रोदय और हेमगर्भपोटली रसमें किया है और आगे लक्ष्मीविलास आदि रसोंमें करनेका विचार है। तलस्थ पूर्ण चन्द्रोदय के योगसे हीरा भस्म मिश्रण अपूर्व गुण वाला सिद्ध हुआ है। केन्सर आदि असाध्य रोगोंकी चिकित्सामें भी उपयुक्त सिद्ध हुआ है। हमारा लक्ष्य जगतमें ऐसी

पारद युक्त दिव्यौषधियोंका निर्माण करके प्रचार करनेका है।

भूत कालमें लोह सिद्धि हो जानेपर ही उस पारदका उपयोग रसायन रूपसे करनेका अत्याग्रह रक्खा जाता था किन्तु वर्तमानमें इस आग्रहको हमें कुछ अंशमें शिथिल करना पड़ता है, कारण लोह सिद्धि उलझन वाला कार्य है। इस मार्गमें विभिन्न प्रकार के भय उपस्थित होनेकी संभावना है। फिर भी प्रास मान चारणा गर्भद्रुति, और जारणा वे क्रियायें तो रसायन वादमें भी करनी ही पड़ती है। जारणामें भी गन्धक जारणा अनेक बार शास्त्र विधि अनुसार करना पड़ता है। फिर अभ्रक सत्व और सुवर्ण माक्षिक सत्वका प्राम देकर यथा विधि जारणा करना पड़ता है। इतनी क्रिया होनेके पश्चात् यथा विधि सुवर्णके कई प्राम देने पड़ते हैं और बार-बार गन्धकका जारण भी करना पड़ता है।

इस तरह कई दिव्य औषधियोंमें मल्ल, ताल, या शिलाका प्रयोग भी करना पड़ता है। इस हेतुसे मल्ल, ताल और शिलाका भी सत्व प्राचीन आचार्योंकी दर्शायी हुई विधि अनुसार ही निकालना पड़ता है। कई नव्य चिकित्सक वर्त्तमानमें प्राचीन प्रणालीको त्याग कर समयकी बचत तथा कम परिश्रम होनेके हेतुसे विविध क्षार मिलाकर अथवा एसिडोंके योगसे सत्व निकालते हैं किन्तु हमें उत्तम शास्त्र कथित गुणोंकी प्राप्ति नहीं होती, ऐसा मालूम हुआ है।

कई आचार्योंने गन्धकका जारण नहीं करते हुए गन्धक तैलके साथ तप्तखल्ल आदिमें क्रिया करके विशेष दिव्य गुण प्राप्त करनेकी विधि दी है। इस मार्गसे अभ्रक द्वारा पक्षच्छेदन करनेकी शक्ति सत्वर आ जाती हैं एवं अन्य धातुओंको खानेमें पारदकी बुभुक्षा भी बढ़ जाती है।

उपरोक्त दोनों मार्गोंके अतिरिक्त पारदको बद्ध करनेके लिये गन्धकका बाष्प देनेकी विधि भी आचार्योंने दी है। सब क्रियायें रसायन औषधियां निर्माण करने वाले को जाननी पड़ती है और इनका अनुभव भी करना है।

यह हमारे मार्ग की रूपरेखा है इनमें से कुछ हम कर चुके हैं, कुछ कर रहे हैं, कुछ आगे करेंगे।

यह विद्या गुप्त नहीं, गुप्ततम है, अनधिकारियोंसे छिपानी पड़ती है और अधिकारियोंको ही सप्रेम प्रदान की जाती है। इस शास्त्र मर्यादाको ध्यानमें रखते हुये हमें आगे बढ़ना है। भगवान श्री कृष्णने भी गीतामें कहा कि—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥

रहीम ने भी कहा है कि—

रहिमन बात अगम्यकी कहन सुननकी नाहिं।
जो जानत ते कहत नहिं, कहत ते जानत नाहिं॥

सचमुच यह परा विद्या अगम्य होनेके नाते कहने में भी नहीं बनती इसका वास्तविक स्वरूप तो वही जान सकता है जो "निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः। द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्" यह तत्पद (अगम्य पद) इस विद्याका परम लक्ष्य है।

किस प्रकार यह विद्या प्राप्त करें इस सम्बन्धमें कवीश्वर जफरके वचनको भी लक्ष्यमें रखना चाहिए:—

न कुछ हम हँस के सिखे हैं
न कुछ रोके सिखे हैं।
जो कुछ थोडा-सा सिखे है
किसी का होके सिखे हैं।

इसलिये आप सबसे सानुरोध निवेदन है कि आप सबमेंसे जो जो जिज्ञासु हों, वे सब अहंताका त्याग करके गुरु या आचार्योंकी शरण लेकर इस विद्यामें प्रवेश करें। मेरा यह दृढ विश्वास है कि इस विद्याके द्वार आपके लिये खुले ही मिलेंगे। आपको ऐहिक सुखकी प्राप्ति तो होगी ही एवं पारमार्थिक सुखकी अनुभूति भी मिलेगी, आप्तकाम और आत्माराम भी बन सकेंगे।

प्रभु आपको वह शक्ति प्रदान करे, ऐसी मेरी उस प्रभुसे नम्र प्रार्थना है।

सर्वे न सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥
ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

रसशास्त्र-परिचय

वक्ता—राजवैद्य शांतिलाल प्राणजीवन जोशी रसायनाचार्य-कालेड़ा ता. २७-३-५९

आप सभी पधारे हैं रसके रसीले यहांपर,
प्यासे सभी हो रसके रसीले।
मुरादे हैं दिलमें अनगी भरी जहां,
रसकी कटोरीसे कैसे पिलावु यहां।
रहेंगे यदि कोई प्यासे रसिक जन,
क्षमा चाहूँ उनसे, क्षमा देना भगवन्।
रसकी भरी जहां निहारे चोगरदम्,
भली भांति छलबल भरा है विश्वंभर।
जहां दृष्टि डाले वहां सृष्टि सारी,
रस लहाण देती सभी को ही हरदम।
रस भरी वसते रससिंचे हैं देखें ?
रस वन उपवनमें, रस वृक्ष कुञ्जोंमें,
रस पुष्प गुच्छोंमें, रस भ्रमर गुञ्जनमें।
रस आम्र वृन्दोंमें, रस कोकिल कण्ठमें,
रस नूतन भोजनमें, रस मिष्ट वाणीमें।
रस घनराजीमें, दामिनी दमकनमें,
रस घनवर्षामें, रस धरणी धरामें।
रस भरा नयनमें रसिक जनकी बातोंमें,
कौन रस पहिचानू कौन रस स्थ गूं मैं।
रस भरी सृष्टि सारी विरंचीने !
आये हो रसिक जन सब रस थाल ले लेकर,
पूरो मेरे हृदयमें मैं भी एक प्यासा हूँ किंकर।

सृष्टिमें ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जो विशेष चित्ताकर्षक भावनाओंका अनुभव प्राप्त होता है, उस अनुभवको कराने वाली जो वस्तु है, वह सब रस ही है। ये रस जैसे—

षट्‌रस—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त

शरीरमें व्यापक रस—रस, रक्त, मांस मेद, अस्थि मज्जा, शुक्र। शरीरमें भावनाका सचार कराने वाले काव्यके बोल, नृत्यमें अभिनय, गानमें स्थायी, संचारी योग और तीनोंके योगसे चित्त वृत्तिका जाग्रतकर इन्द्रिय गम्य ज्ञानप्रधान लगन पैदा करके शृङ्गार, हास्य, वीर, करुणा आदि रसोंको छोड़कर

यस्मिन् सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो नित्यं, तस्मै सर्वात्मने नमः ॥

जो चैतन्य देव सर्व संसारके आधाररूप है। जिस चैतन्यसे यह समस्त ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ है, जो देव सर्व संसारके कारणरूप हैं, जिस देवने सब पदार्थोंको चारो ओरसे घेर लिया है जो देव सर्वमय है, उस सर्वमय देव सदाशिव (एव सदाशिवरूप पारद) को प्रणामकर विश्वको सारभूत पृथ्वीके अंतस्थलमें भरे हुए रसपारद मुख्य विषयको आपके समक्ष रखता हूँ। निसर्गकी अमोघ शक्तिको किस विधि कहूँ।

जैसे आधुनिक समयमें सृष्टिके अन्तस्तल (भूगर्भ के भीतर), जो पदार्थ बिना पहचाने पड़े हैं, उनको वैज्ञानिक साधनों द्वारा गम्भीर तहमें रहे हुएको खोद कर बाहर निकालते हैं। उनके-गुणधर्मोंका अध्ययन कर पुस्तकों द्वारा जगतके समक्ष रखते हैं।

भूतकालमें हमारे ऋषि मुनियोंने निसर्गकी गोदमें निर्मित सौम्य, सुखद, चैतन्य और जड़के समागमको जान उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका एवं गुणधर्म आदिका अनुसरकर विभिन्न शास्त्रोंकी रचना की थी।

इस अद्‌भूत सृष्टिका स्वरूप सौम्य और सुखद है। शिवरूप और कल्याणकारी है। भूगर्भमें कदम-कदम पर जीवोंके कल्याणार्थ शिवभाव, कल्याणभाव प्रकृति ने धारण किया है। प्रकृतिके प्राणी स्पर्शसे सब जगत् सुखका अनुभवकर सकते हैं। एवं प्रकृतिकी विकृतिसे अखिल जीव दुःख भोगने लगते हैं। फिर भी प्रकृति की विकृतिमें भी विचारको और वैज्ञानिकोंको अमृतकी प्राप्ति हुई।

आप इस अमृतको देखें। जगत् विधायक परम कारुण्य मूर्ति प्रकृतिने पृथ्वीके स्तरोंमें भयंकर ताण्डव नृत्य किया। उसके मन्थनसे अनल उत्पन्न हुआ।

जिस तरह अरनीके इन्धनोका मंथन होनेपर यज्ञोपयोगी अग्नि प्रादुर्भूत होती है। बासोंके परस्पर सवर्प से वन्यप्रदेशमें अग्नि लग जाती है। उदधिकी अगाध जलमें तरङ्गोंके घर्षणसे बड़वानल अग्नि उपस्थित होती है। उदरके भीतर वैश्वानर अग्नि विराजमान है। जिस तरह ये सब अग्नि कल्याणकी भावना पूर्वक प्रकाश देना, पाक करना और जलानेका कार्य करती है। इसी तरह पृथ्वीके स्तरोंमें भयंकर घर्षण मंथन होनेपर ज्वालामुखी अग्निका आविर्भाव होता है। उस स्थानमें पृथ्वीके निम्नस्तरका वेधनकर वह अग्नि प्रलयके सदृश भयानक रूपमें बाहर निकलने लगती है। जड़ सृष्टि और प्राणी सृष्टिको जलाता हुआ लावा (गरम रस) चारो ओर फैलने लगता है।

स्वतन्त्रतामे स्वच्छन्दता प्राप्त होनेपर जो कुछ दृश्य प्रतीत होने लगता है, वह सब सुसृजनके स्थान पर विनाशकारी भास होता है; किन्तु उक्त स्वतन्त्रताको संकलनाबद्ध करके कार्य क्षेत्रमें उसका आयोजन करनेपर अनेक निधि नूतन सर्जन निर्माण होते है। यह है विचारको और वैज्ञानिकोका सिद्धान्त। इस सिद्धान्तके अनुसार काल भगवानकी ओरसे भयकर ज्वालामुखी फटनेपर जो सृष्टि संहार रूप ताण्डव खेला जाता था। उसमें भी आर्षद्रष्टाओंको शिव पार्वती का दर्शन हुआ था।

ज्वालामुखीका उल्कापात शमन होकर लावा (जलता हुआ रस) शीतल होनेपर उसके जो शेष द्रव्य बचे उनका अन्वेपण करनेसे उस समय कई गड्ढोमेंसे शिवहरके बीजरूप पारद और गौरी (पार्वती) के बीजरूप गन्धक मिले। पारदको शिववीर्य कल्याणकारी बीज माना है और गौरीको रसरूप गन्धक मानकर सुललित भाषामें शिववीर्य संज्ञा देकर पारद का और माता स्वरूप पृथ्वी गौरीके रजको गन्धक संज्ञा देकर उत्कृष्ट भावपूर्ण संस्कृत भाषामे उसका गान किया और वह गान वन उपवनमें गूजने लगा।

रसविदो! शिव कल्याण; पार्वती प्रकृति; इस तरह कल्याणकारी प्रकृतिके योगसे जो रस बाहर आया है वह रस है। सृष्टिके सर्जनके साथ साथ सर्जाया हुआ अनादि ब्रह्मरसके लिये क्या कहूँ? खुद सर्जक भी इस रससे सदैव लिप्त रहता है। उससे अलिप्त वही मात्र है परब्रह्म, अर्थात् मायासे परे रहे हुए निर्गुण ब्रह्म; वही है ज्ञान पुंज या ज्ञान धन राशि; वही है, ऋषि मुनियोंका महदानंद मोक्ष।

रस दर्शनसे रस विज्ञान द्वारा रसका मौलिक गान सृष्टिके कोने-कोनेमें गूंज रहा है। रसको विभिन्न दृष्टि से लोगोने अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव किया है। उसके आस्वादसे आल्हादित हुए हैं। यह तो है उसका आविर्भाव। किन्तु जिसे हम रस (पारद) कहते है वह यह रस नहीं है। सच्चा रस! सच्चा रस तो रसविदों की रोमावलीको खड़ा करने वाला है। यह रस भावना की विपुल तरगोंको दिलमें उछालने वाला है। उसके मधुर गानो द्वारा दिलमें सुरावलीका पूरक है, नयनोंमे मादक स्नेह वृत्तिका प्रकटकर्ता है, कंठमें करुणाका प्रसारण सदैव रखते हुए मौन प्राप्त करता है, अतःकरण सदा प्रेम भरा और आर्द्र रहता है, परःहितार्थे नयन द्वय सदा नीरसे भरे गीले रहते हैं, यह है रसविदोंकी रसकी लहाणी पाने वालोके अतरका आविर्भाव। यह है अलकनन्दा और भागीरथीके शीतल स्वच्छ जल के सगमके समय उछलते हुए जलके तरल तूफान सम रसका चित्तके साथ ससर्गीय सुखका आलहादक तूफान। नहीं सहा जाता है, उसमें दूसरोंका दुःख, खोजते है पराये दुःख दूर करनेके विविध प्रसग, सृष्टि के जीवोपर आने वाली, आई हुई आपत्तियोंके प्रत्येक आघातोंके निवारणार्थ रसविद सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।

विश्वमे ऐसे रसविदोका महामंडल बना हुआ है। जिसमेंसे एक रसविद प्रत्येक शताब्दीमें जगत्में आकर रसकी लहाणी किसीन किसी प्रदेशमें अर्पण करता ही रहता है। ऐसा अनुभव कराने वाला है। पदार्थोंमे उच्चतर पदार्थ रस वही है। रसविदोंका सच्चा पदार्थ रस।

क्या कहूँ? यहांपर पधारे हुए रसायनाचार्यों और आयुर्वेदाचार्यों! आप चाहते हैं स्थूलरस, चाहते हैं बाजारू पारद-गंधककी प्रतिमाएं, इसलिए मुझे भी आज वही पारद जो खानोंसे प्राप्त किया जाता है,

अ० भा० पारद अनुसंधान सम्मेलन में प्रत्यक्ष क्रिया प्रदर्शन

रसायनाचार्य श्री शातिलालजी जोशी समागन्तुक वैद्यमहानुभावो के सामने विशाल प्रदर्शनी की प्रत्येक वस्तु का विश्लेषण करते हुये —

अ० भा० पारद अनुसंधान सम्मेलन के समय आयोजित "दंत यज्ञ"

डॉ० श्री लालभाई भट्ट दंत चिकित्सा विशेषज्ञ बंबई, सूचीवेध करके
रोगियों की दांतोत्पाटन क्रिया कर रहे हैं

उसकी ही बात कहना है। यदि मेरे बताये उसी रसकी पहिचान वाला रसका प्यासा जो सच्चा रसविद् हो उनसे निवेदन है कि अवश्य एकाकी मुझे दर्शन दें, मैं इन्हींके दर्शनका प्यासा हूं।

सृष्टिमें दो बल हैं। (१) स्नेहाकर्षण बल और (२) विरोधी या घातक बल. हमारे शास्त्रमें सबको समझानेके लिये कहा है कि विशाल सृष्टि रखते हुए सृष्टिके सर्व पदार्थोंकी उत्पत्ति पंच महाभूत पृथ्वी जल, तेज, वायु आकाशमेंसे हुई है। उसमें सजीव और निर्जीव ऐसे दो महावर्ग हैं। निर्जीव अर्थात् जड़ पदार्थका धर्म देखनेपर यह मालूम हुआ है कि स्नेहाकर्षण बनसे आकर्षित होकर एक ही जातिके अणुओं का आकर्षण होकर एक पदार्थ बनता है, वह मूलभूत याने तत्वरूप माना जाता है।

यह तत्वरूप कैसे बनता है ?

सृष्टि क्रम ऐसा है कि एक जातिके कितनेक अणुओंके इकट्ठे हो जानेपर प्रवाही पदार्थ, और विशेष समूहका आकर्षण होनेपर तथा पृथ्वीके उत्तापसे जल तत्व कम होनेपर उसी पदार्थमें घनत्व प्राप्त होता है यदि उसमें अन्य अणु मिश्र होते हैं, तो इन अणुओंके काल निर्गमन होनेपर उसी स्वरूपका बनकर वही पदार्थरूप बन जाता है। जैसे पृथ्वीके तल भागमे धातुओंका बनानेमें यही योग है।

आधुनिक समयमें खानोंमेंसे जो खोद कर धातुओं के अणुकण प्राप्तकर बाह्य गरमी उत्ताप देकर एक ही जातिके अणुओंका रस बनाकर एक धातु बनाते हैं। वही पदार्थ उन्हीं खानोंमें विशेष काल व्यतीत होनेपर पृथ्वीके तलसे प्रवाहप्राप्त उत्तापसे आपही आप मिलकर घनत्व प्राप्त होकर ज्यादा समूहमें उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ पत्थरके कोयलोंकी खानें अपने समक्ष मौजूद है। वैसे ही सजीवमें भी स्नेहाकर्षण अधिक मालूम होता है। यह बल प्रत्येक तत्वके सजातीय अणुओंको अपने प्रति आकर्षित कर अपने समान गुण धर्म युक्त बनाना चाहता है। जैसे "भ्रमरकीट न्याय" प्रत्यक्ष है।

सृष्टि क्रम है कि निकृष्ट धातुयें काल क्रमसे उच्च धातुमें परिणत हो जाती है, पदार्थ तीन प्रकारके हैं १ तत्व रूप, २. रासायनिक ३. भौतिक मिश्रण रूप। ऐसे आकर्षण बलसे जो पदार्थ एक ही प्रकारके अणुओंसे बना हुआ है। उसमें दूसरा कोई पदार्थ विभक्त करनेपर प्राप्त नहीं होता है, उसको तत्व संज्ञा दी है, आधुनिक वैज्ञानिकोंने ऐसे अभी तक ९२ तत्वों का अन्वेषण किया है।

इन तत्वोंमें यदि रासायनिक योगसे दूसरा पदार्थ मिलता है, तो एक नूतन पदार्थका सर्जन होता है और एक ही स्थानमें अलग अलग तत्व पडे रहनेपर जो कालान्तमें पदार्थ बनता है वह भौतिक मिश्रण बनकर प्राप्त होता है इन्हीं तत्वोंके परिचयार्थ आधुनिक वैज्ञानिकोंने भी पारिभाषिक शब्द रखे है, जैसे प्राचीनों ने दर्शाये हैं अणु, परमाणु, मूल तत्व यौगिक, मिश्रण सकेत रासायनिक योग घनत्व, अणुभार परमाणुभार, तापक्रम भार आदि आदि

यह वैज्ञानिक विषय होनेपर जितना विचार विनिमय किया जाय, उतना विशेष स्पष्टीकरण और उसके ऊपर विवरण किया जा सकता है। समयका अभाव होनेपर इन ९२ मूलभूत तत्वोंमेंसे एक पारदके उपर विचार करना उचित समझता हूँ।

रसविज्ञानका प्रादुर्भाव—जिस तरह भारतीय प्राचीन शास्त्रोंमें ज्ञानात्मक और क्रियात्मक क्षेत्रोंमें वेद, उपनिषद् स्मृति पुराणों और इतिहास आदिकी छाया प्रतीत होती है, उस तरह रस विज्ञानका सूत्र रूप सक्षिप्त उल्लेख भी दृष्टि गोचर होता है, तैत्तिरीय श्रुति कहती है, कि "रसो वै सः॥ रस ५ ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति॥" इस मत्रमें भी देवको रस रूप कहा है। उस रसको प्राप्त करके मनुष्य आनन्दी (सुखी) बन जाता है। रस विज्ञान, वेदोंके समान अनादि और स्वयंभू है। रस विज्ञानके प्रवर्तक भगवान् शकर रसेश्वर हैं। उनके अनुग्रहसे श्री विष्णु भगवान और ब्रह्माजीको ज्ञान प्राप्त हुआ था। ब्रह्माजी ने प्रजापतिको ज्ञान दान दिया था। फिर अधिकार अनुरूप राजर्षि और ऋषि मुनियोंको मिलता रहा। पश्चात् इतर योग्य साधकोको गुरुपरम्परासे प्राप्त होता

रहा था। जो अभीतक कुछ-न-कुछ अंशमें अर्ध निच्छिन्न परम्परा चली है।

रस शास्त्रकी उत्पत्तिके विषयमें कई पाश्चात्य विद्वानोंका और तन्मतानुयायी कुछ एतद्देशीय विद्वानों का मत है कि, ताम्र, वंग आदि कनिष्ठ धातुसे सोना और चांदी बनानेके उद्देश्यसे प्रथम रस शास्त्रकी उत्पत्ति हुई, और पीछे इस शास्त्रका चिकित्सामें भी उपयोग होने लगा। उनका यह मत अन्य देशोंके लिए कदाचित् सत्य भी हो, परन्तु भारतवर्षके लिये ठीक नहीं है। महाभारतके समकालमें माहेश्वर सम्प्रदायके कई आचार्य और उनके अनुयायियोंको यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि पिण्ड (देह) को स्थिर (जरापरणरहित और दीर्घ कालस्थायी) बना सकें तो स्थिर देह द्वारा चिरकाल योगाभ्यास हो सकेगा, योगाभ्यासके द्वारा तत्त्व ज्ञान होगा और तत्त्व ज्ञानसे सर्व मुमुक्षुओंकी अभिमत-मुक्ति, जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सकेगी। फिर इस विचारको मूर्त्तरूप देनेके लिए अनेक वर्षों तक परिश्रम किया अन्त में रस (पारद) को इस कार्यके लिये उपयुक्त बनानेकी विधि प्राप्त की। इसे सर्व दर्शन संग्रहके भीतर रसेश्वर दर्शन तत निरूपणमें निम्न शब्दोंमें दर्शाया है —

अपरे माहेश्वराः परमेश्वरतादात्म्यवादिनोऽपि पिण्डस्थैर्ये सर्वाभिमता जीवन्मुक्तिः संस्स्यतीत्यास्थाय पिण्ड स्थैर्योपाय पारदादि पद वेदनीयं रसमेव सगिरन्ते।

ऐसा रस सिद्ध करनेके लिए उन्होंने पारदको संस्कारित किया था। भगवान् गोविंद पादाचार्यजीने कहा है कि:—

इति धन शरीर भोगान्मत्वाऽनित्यान् सदैव यतनीयम्।
मुक्तौ, सा च ज्ञानात् तच्चाभ्यासात् स च स्थिरे देहे॥

भारत वर्षमें इस शास्त्रका प्रचार करने वाले जिन महात्माओंके नाम इस शास्त्रके वर्तमान ग्रन्थोंमें मिलते हैं, वे आदिनाथ, पतञ्जलि, व्याडि, गोविन्द पादाचार्य, आदि, विरक्त और परमत्यागी थे। ऐसी इतिहासमें उनकी ख्याति है। उनके इस मतको हमारे यहां दर्शन शास्त्रोंमें स्थान मिला था। यह बात श्रीसायण माधवके सर्व दर्शन संग्रहके अन्तर्गत रसेश्वर दर्शन प्रकरणको देखनेसे मालूम होती है। सारांश यह है कि हमारे यहां रस शास्त्रकी उत्पत्ति केवल भौतिक सुख प्राप्त करनेके वास्ते या धातुवादके लिए नहीं है, परन्तु पिण्ड स्थैर्य द्वारा मुक्ति; (मोक्ष) प्राप्त करनेके उद्देश्यसे हुई थी। सर्व दर्शन संग्रहमें दर्शाया है, कि—

"न च रसशास्त्र धातु वादार्थमेवेति मन्तव्यं, देहवेध द्वारा मुक्तेरेव परमप्रयोजनत्वात।"

तदनुसार रसार्णवमें भी कहा है, कि—

लोहवेध स्त्वया देव यदर्थमुपवर्णित।
तं देहवेधमाचक्ष्व येन स्यात् खेचरी गतिः॥
तथा यथा लोहे तथा देहे कर्तव्यः सूतकः सदा।
समानं कुरुते देवि! प्रविशन् देहलोहयोः॥
पूर्वं लोहे परीक्षेत ततो देहं प्रयोजयेत्।

वास्तवमें देहके लिए ही रस शास्त्रका प्रयोजन हुआ था।

रस शास्त्रका प्रारम्भिक काल:—पुराण कालका इतिहास जाननेके लिए अपने पास शिलालेख, ताम्र, लेख ताम्र पत्रों, पुराने सिक्के, अवशेषों, हस्तलिखित ताडपत्र और पुस्तके आदि साहित्यसे जाननेमें आता हैं, उसके पीछे अनुमान लगाकर संस्कृतके साहित्यको प्राप्त करना होता है।

अपने यहां पुराण कालके साहित्य परसे इतिहास की प्रमाणित घोषणा करते हैं कि ई. स. पूर्व तीसरी या चौथी शताब्दीमें पारदका संशोधन हुआ है। कई लेखक बौद्ध कालसे प्रारम्भ मानते हैं। मेरी यह मान्यता है, कि प्राचीन भूतकालमें इसके अतिरिक्त ई. स. पूर्व १५०० के करीब बने हुए मिश्र देशके पिरामीडमें ममी (शव) के पास रखी हुई पारदकी बोतल निकली है। यह ऐतिहासिक प्रमाण है। इसके अतिरिक्त भारतीयों का आधार लेखन कलाका उपयोग न होनेके कारण सब साहित्य स्मृति पर रखा जाता था, श्रुति भगवती पर विशेषांशमें रहता था। एक पदार्थकी जनहितार्थ शोध होने पर उसके प्रयोग होते होंगे, प्रयोग करने वाले अपनी प्राप्त की हुई सिद्धिका गुप्त रखते थे, समय जानेपर थोड़ा थोड़ा प्रकाश होते होते यह प्रयोग रूढ

प्रयोग होता था और जनसमुदायमें फैलता था, उसका लाभ जनता उठाती थी, इतनेमें कोई विद्वान् इस रूढ प्रयोगको गुंफित पद्य या गद्य भाषामें गुफित करते थे, तब जिसने उसका गान या कथन किया, लिखा या संग्रह किया, उसीका नाम निर्देश प्रायः हो जाता था।

भूतकालमें मुद्रणालय न होनेके कारण ग्रंथ मुख पर लानेके लिए पद्य विशेष जरूरी होने पर पद्यमें ग्रंथ तैयार किये जाते थे, जिस विद्वानने ऐसा संग्रह तैयार किया वही इस साहित्यका सर्जक निर्माता माना जाता था। प्रचारक या सर्जनका यश उनको प्राप्त होता था। बहुधा मूल प्रयोगको आचरणमें लाने वाले का नाम नहीं रहता था। इसमें लेखकको सर्जक न मानना चाहिए। एवं पदार्थ ज्ञानका इतिहास उसी कालसे आरम्भ हुआ, ऐसा भी नहीं मानना चाहिये। लिपिबद्ध होनेके पूर्व पदार्थ पर कई बार प्रयोग हुए होंगे, संशोधन, परिवर्द्धन हुआ होगा। तत्पश्चात् निर्माण हुआ होगा, यह निश्चित है। यह निर्णय करना रसशास्त्रियोंके विद्वत्परिषद् (सेमिनार) पर रखता हूँ।

रसशास्त्रके आदि प्रवर्त्तक :—

आदिम, चन्द्रसेन, लंकेश, विशारद, कपाली, मत्त, मांडव्य, भास्कर, शूरसेनक, रत्नकोष, शम्भु, सात्विक नरवाहन, इन्द्रद, गोमुख, कम्बली, व्याडि, नागार्जुन, सुरानन्द, नाग बोधि, यशोधन, खण्ड कापालिक, ब्रह्मा, गोविन्द, लम्पक, हरि ये सत्ताईस आचार्य रस शास्त्रके आद्य प्रणेता माने जाते हैं। यह सूची आनन्द कंदमें बिलकुल भिन्न है। सामान्यत, कल्पना होती है कि अनेक आचार्य विशेष परिश्रमी हुए हैं। इसके अतिरिक्त रसांकुश, भैरव, नन्दी, स्वच्छन्द भैरव, मन्थान भैरव, काकचण्डीश्वर, वासुदेव, ऋष्यश्रृंग, आलुकि, रसेन्द्रतिलक, महादेव, नरेन्द्र, रत्नाकर और हरिश्चन्द्र आदि भी रसशास्त्रके प्रधान आचार्य माने गये है। इन के अतिरिक्त इतिहासमें नाम निर्देश न हुआ हो, वैसे भी बड़ी संख्यामें रस सिद्ध और आचार्य हुए हैं।

रसोत्पत्ति—पृथ्वीके भूतलमें भूकम्प (विद्युत् का दबाव या उष्ण लावा रसके साथ जल प्रवाह मिलने पर) होता था, वह प्रकोप विशेष होने पर पृथ्वीके तल भागको तोड कर लावा रस बाहर निकल आता है। कभी जलका स्थल और स्थलका जल विशाल प्रदेशमें बन जाता था। ऐसी अवस्थामें लावा रसका वहन पृथ्वी पर या अंतः भागमें प्रवाहित होकर नदीके तरह चलता था, उस पर्वतके मुंह पर गुहा या कंदरा बन कर उसमेंसे लावा रस निकलने लगता था, वह रस जब शीतल होता था, तब वह पारदके रूपमें मिलता था, और पीलासा पदार्थ निकलता था, उसको गंधक संज्ञा दी जाती थी। शिव वीर्य पारद, पार्वती (रजवीर्य) गंधक, ये रूपक हैं।

पारद प्रदेश —यूरोपमें पारद निकास करने वाले मुख्य देश दो हैं। (१) स्पेन और दूसरा इटली स्पेनमें तीन खाने और इटलीमें दो खाने मिल कर ये देश विश्वके आधे हिस्सेको पारा प्रदान करते हैं। सामान्यतः समग्र जगत्के पारदका उत्पादन वर्तमानमें दो लाख टन बोटल हैं। एक बोटल ७६ रतलकी होती है। स्पेन और इटलीके अतिरिक्त अमेरीकामें मेक्सीको आदि देशोंमें भी पारदकी प्राप्ति होती है। कम प्रमाणमें ब्रिटिश बोर्निओ, हिंदुस्थानमें चिमल नदीके नजदीकमेंसे हिंगुल मिलता है। एवं अफ्रीका के न्यासालेण्ड और यूनियन ऑफ साउथ आफ्रिका, आस्ट्रेलिया, जर्मनी, फ्रांस, हंगरी, चीन आदि प्रदेशों में भी न्यूनाधिक मात्रामें पारद या हिंगुल मिलता है।

पारदकी उपयोगिता—पूर्व जन्ममें किये हुए सत्कर्मोंका संस्कार होता है, तब इस जन्ममें अच्छे कुल (खानदान) में जन्म होता है। उसमें भी बुद्धि उत्तम हो, और वह बुद्धि भी सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डलकी समस्त वस्तुओंका तुलनात्मक अन्वेषण कर लेनेमें समर्थ हो, तथा वह पृथ्वी मण्डल (क्षेत्र) भी इच्छानुकूल हो, ये सब भाग्यशालीको प्राप्त होते हैं। सब क्षेत्र जब इच्छाके अनुरूप होता है, तब बहुत धन प्राप्त हो सकता है और उस धनसे नाना प्रकारके भोग प्राप्त हो सकते हैं। किन्तु ये सब भोग शरीर अच्छा होने पर ही आनन्द दायक होते हैं, क्योंकि शरीर ही भोगों का अधिष्ठान होता है। और यह शरीर होता है अनित्य

अर्थात् जरा, रोग और मृत्युका भोग बननेके योग्य। शरीरके अनित्य होनेके कारण उपर्युक्त सब सम्पत्ति व्यर्थ हो जाती है। इस प्रकार धन और शरीरके योगके अनित्य स्वरूपको जानकर मनुष्यको सदा ही मुक्ति प्राप्तिके प्रयत्नमें रहना चाहिए। यह मुक्ति ज्ञानसे होती है। ज्ञान अभ्याससे प्राप्त होता है। अभ्यासके लिए शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी आवश्यकता है। यदि जरा और रोग न हो तो योगाभ्यास आदि करना सरल होता है। शरीरको स्थिर रखनेके लिए वनौषधि या धातुका बनाया हुआ रसायन समर्थ नहीं हो सकता है, क्योंकि ये (मूल और धातु) सब स्वाभाविक नाशवान्, हैं। जैसे जल, क्षार, तैलादि पदार्थ भीगने वाले और अग्नि तापसे सूखने वाले होते हैं। वैसे काष्ठादि औषधियां और धातु उपधातु सब विनाशी हैं। इस बातको लक्ष्यमें रखकर शास्त्रमें कहा है कि—

"काष्ठौषध्यो नागे नागो वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्वे।
शुल्वं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते॥

काष्ठादि औषधियां नागमें, नाग वंगमें, वंग ताम्रमें, ताम्र रौप्यमें, रौप्य स्वर्णमें और स्वर्ण पारदमें लीन हो जाते हैं।

जिस तरह योगीजन तपश्चर्या करके भावना अनुसार सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य, सार्ष्टी, इनमेंसे एक या कैवल्य मुक्ति अर्थात् निरुपाधिक महाचैतन्यमें आत्म चैतन्यको विलीन रूप मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। उसी तरह अभ्रकके प्राप्त दिये हुए पारदमें सुवर्णादि धातु भी लीन हो जाती है। फिर वह निरुत्थ होकर, अमृत के समान गुणकारी बन जाता है। मोक्ष प्राप्तिमें भी सहायक बन जाता है। इसी लिए पारदकी उपयोगिता विशेषता है। (रसायनका विषय कल रखा गया है इस लिए पारद योगके सम्बन्धमें विषय यथा समय कल ही कहा जायगा।)

वर्तमानमें पारदकी उपयोगिता :—आधुनिक समयमें पारद सामान्य व्यवहारमें सेन्टीग्रेड या फोरनहीट, थर्मोमीटर, बेरोमीटर, टेलीफोन एक्सचेन्जकी इलेक्ट्रीकस्थियोंमें और स्वयं सचालित आयुधोंको उस के मार्गका दर्शक, दर्पण रूप ''' कांचपर लगानेके विद्युत्प्रधान स्प्रे आदि आदिमें उपयोग किया जाना है। आधुनिक समयमें पारदका अत्यधिक उपयोग वैज्ञानिकोंने भौतिक साधनोंके निर्माणमें ही किया है और कर रहे हैं।

पारदगुण—पारदके गुणोंका वर्णन क्या करूं? जिसके गुण धर्म, ऋषि, मुनि, महेन्द्रोंने अथक गाये हैं। जिस शंभुवीर्यकी कृपासे जीवोंके जीवनका रक्षण होता है, जो पारद सांसारिक जीवोंके लिए भौतिक सुख दाता है, जो ऋषि मुनियोंको मुक्ति दाता है, जीवोंके रोग और जरादि व्याधियोंको दूर करने वाला है, जिसके दर्शन से पाप समूह समूल नष्ट होते हैं, कहा है कि—

हरति सकलरोगान्मूर्च्छितो यो नराणां,
वितरति खलु बद्धः खेचरत्वं जवेन।
सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्दितः शंभुबीजः,
स जयति भवसिन्धोः पारदः पारदोऽयम्॥

यह पारदका गुण वर्णन आपके सभागृहमें लिखा हुआ है। उसपरसे आप स्वयं ही जान सकेंगे।

रसपारदका भेद—

रसो रसेन्द्र सूतश्च पारदश्चाथ मिश्रकः।
रसं सिद्धरस विद्यान् सिद्धक्षेत्रसमाश्रयम्॥

प्राप्ति स्थान भेदसे पारद पांच प्रकारका होता है।

रस—लाल वर्णका पारद सर्वदोष रहित और रसायन और वलीपलितघ्न है। इसके सेवनसे देव रोग रहित, अजर अमर बने हैं।

रसेन्द्र—पारद धूसर वर्णका रूखा, चचल तथा दोषरहित, रसायन तथा देह लोहकारक होता है। इसके सेवनसे नाग मृत्यु और वृद्धावस्था रहित हो गये (यह रस और रसेन्द्र मिलना दुर्लभ है)।

सूत—सूत नाम वाला पारद कुछ पीला रूखा और दोषवाला होता है। यह अठारह सस्कारोसे सिद्ध करके सेवन किया जाता है।

पारद—जो पारद बाहर और भीतरमें सफेद

किन्तु अनेक कञ्चुकोंसे आवृत और चंचल है। उस पारदके प्रयोगकी आचार्योंने रौप्य निर्माणमें करनेकी आज्ञा की है।

मिश्रक—मिश्रक पारद मोरके परकी चंद्रिकाके समान विचित्र वर्ण वाला और सरस पारा है। यह भी अठारह संस्कार करनेसे अत्यन्त सिद्धि प्रदान करता है। विना सस्कारितका प्रयोग बाह्य भौतिक कार्योंमें करना चाहिए।

पारद खनिज द्रव्य प्रवाही और सर्व धातुओंको स्वभावसेही भक्ष्य करने वाला होनेसे इसका उपयोग करनेके पहले शुद्धि करना आवश्यक है। क्योंकि पारद में स्वाभाविक निसर्गतः प्राप्त सहज और कृत्रिम कई दोष अवस्थित हैं। इसलिए कहा है कि—

नागो वङ्गो मलो वह्निश्चांचल्यं च विषं गिरिः।
असह्याग्निर्महा दोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः॥

शीशा, रांगा, मल, वह्नि, चांचल्य, विष, गिरि दोष और अग्निको न सहना, ये महान दोष पारदमें अवस्थित हैं। उनको दूर न करें, तो यथा क्रम सीसाव्रणों को, रांगा कुष्ठोंको, मल जड़ताको, अग्नि दाहको, चंचलता वीर्यनाशको, विष मृत्युको, गिरिदोष जड़ता को और अग्नि जन्य असह्यता दोष, फोड़े फुन्सी आदि को उत्पन्न कराते हैं। इसलिए पारदकी शुद्धि आवश्यक है।

यहांपर समयाभावसे पारदकी शोधन विधि सक्षेप में ही दर्शाता हूँ। विशेष रूपसे प्रत्यक्ष आपके समक्ष क्रिया होती रहेगी। जिससे विशेष परिचय प्राप्तकर सकेंगे।

पारदके सस्कार—स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, बोधन (रोधन), नियमन और दीपन, ये सब क्रमशः किये जाते हैं।

पारदकी शुद्धि—चिकित्साके लिए और रसायन रूपसे सेवनके लिए पारदकी शुद्धि अर्थात् अष्ट संस्कार करना तो अति आवश्यक है। अत. आपकी समक्ष मैंने आठों सस्कारों द्वारा जो पारा शुद्ध किया है वह रखता हूँ।

इस शुद्धिमें किन-किन औषधियोंका उपयोग करना चाहिए? अग्नि कितना देना चाहिए? कौन-कौनसे यंत्रो को उपयोगमें लेना चाहिए? ये सब स्पष्ट सिद्ध पारद और प्रत्यक्ष क्रिया दिखलाने के लिए प्रयोग स्थानपर दोनों व्यवस्था की है। चालु क्रिया प्रत्येक संस्कारको जानसके इसलिए आपके समक्ष क्रिया विधि रखी है। कृपया सभा विसर्जन होनेपर आप वहां पधारकर देखें।

प्रत्येक संस्कारके पारद् अलग-अलग संस्कार प्राप्त करनेपर कैसा बनता है, यह आपको प्रत्यक्ष प्रदर्शित कर रहा हूँ।

इन अष्ट सस्कारका आगे गंधक जारण किया जाता है। यह गंधक जारण क्रिया, अभ्रक जारण क्रिया स्वर्ण जारण क्रिया, ये तीनों कल दिन भर आपकी उपस्थितिमें होगी। गंधक, अभ्रक जारण, स्वर्ण जारण किये हुये पारदका नमूना भी आपके समक्ष रखा है।

मान्यवर वैद्य बन्धु पारद अष्ट संस्कार किया हुआ प्रदर्शनीमें रखा गया है, उनको आप पहले देख लेनेकी कृपा करें। फिर क्रिया विधिका अनुभव करें।

प्रदर्शनीमें रखी गई सभी द्रव्य यहांकी रसायनशालामें ही बने हुए हैं। विशुद्ध पक्षछिन्न पारदको रंजन द्रव्योंमे रंगकर उसका भी थोड़ा नमूना रखा गया है। शास्त्रमें पारद बन्ध २५ प्रकारके वर्णित हैं, उन बन्धनों वाले पारदमेंसे भी कुछ बन्ध आपके समक्ष रखे है। ये सब शास्त्रोक्त विधिकी गई हैं।

१. स्वेदन संस्कार—पारदको दौला यन्त्रमें क्षारों और अम्लपदार्थसे बनाये हुए द्रव पदार्थमें पकानेकी क्रियाको स्वेदन संस्कार कहते है। यह संस्कार यथोचित होनेपर पारदके स्वरूपमें समिलित मैल शिथिल हो जाता है।

२. मर्दन सस्कार—अम्ल और क्षारयुक्त औषधिओंके साथ काञ्जीको मिलाकर पारदको जो पत्थर की खरलमें घोटा जाता है, उसे मर्दन संस्कार कहते हैं। इस संस्कारके सिद्ध होनेपर पारदका बाह्य मल पृथक् हो जाता है।

३. मूर्च्छन संस्कार—मर्दन संस्कारके लिए कही हुई औषधियोंके साथ घोटकर पारदको नष्ट पिष्ट करके जो सूक्ष्म चूर्ण बनाया जाता है, मूर्च्छन संस्कार संज्ञा दी है। यह सस्कार पूरा होनेपर पाराके वंग,

नाग और अन्य पार्थिव दोष भी नष्ट हो जाते हैं।

४. उत्थापन संस्कार—काञ्जी आदि विशिष्ट पदार्थों तथा विरेचन द्रव्योंके साथ स्वेदन करके अथवा कड़ी धूपमें रखकर अथवा किसी अन्य प्रयोगसे मूर्च्छन संस्कारसे बने हुए नष्ट पिष्ट पारदको पूर्णरूपमें लानेकी क्रियाको उत्थापन संस्कार नाम दिया है। उत्थापन संस्कारसे मूर्छन संस्कारके कारण पारदमें उत्पन्न हुए विकार नष्ट हो जाते हैं।

५. पातन संस्कार—प्रत्यक्ष बनाई हुई ताम्रपिष्टी आदि औषधियोंके साथ पारदको घोटकर और उसको तद् तद् यन्त्रोंमें रखकर और आंच देकर पारदको जो ऊपर नीचे तिर्यक उड़ाया जाता है या खींच लिया जाता है, उस कर्मको पातन संस्कार कहते हैं। नाग और वङ्गके संपर्कके कारण पारदमें आये हुए दोष पातन संस्कार योग्य होनेपर नष्ट हो जाते हैं। इस पातनके ऊर्ध्वपातन, अधःपातन और तिर्यक् पातन तीनों भेद प्रत्यक्ष आप देखेंगे।

६. बोधन संस्कार—मिट्टीके घड़ेमें जल और नमक घोलकर उसमें कपड़ेकी पोटलीमें बांधकर तीन दिन तक पड़ा रहने देनेकी क्रियाको रोधन संस्कार कहते हैं। उसी जलमें २१ दिन तक रहने देनेसे अच्छी प्रकारसे शुद्ध और क्षुधातुर होता है। एवं पारद वीर्यवान और बलवान भी होता है। कई शास्त्रकारोंका मत बोधन संस्कार कर लेनेके पीछे पारदको रोगनाशक औषधिके योगमें मिलानेका है। अर्थात् रोगोंके विनाशार्थ आगेके संस्कारोंकी आवश्यकता नहीं मानी।

७. नियमन संस्कार—बोधन संस्कारसे वीर्यप्रकर्ष हो जानेके कारण पारदमें चंचलत्व आ जाता है। उस चपलत्वको मर्यादित करनेके लिए पारदको जो स्वेदन क्रियाकी जाती है, उसे नियमन संस्कार संज्ञादी है।

८. दीपन संस्कार—ताम्र आदि धातु कुछ खनिज पाषाण और चित्रक आदि औषधियां, 'इनके साथ पारदको एक घड़ेमें दौलायंत्रकी विधिसे रखकर और उस घड़ेमें काञ्जी भरकर वह पारद ग्रासको ग्रहण करसके इसलिए जो तीन अहोरात्र तक स्वेदन किया जाता है, उसे दीपन संस्कार कहते हैं।

कई आचार्योंने चिकित्साके योग्य पारद बनानेके लिए पारदको अष्ट संस्कारकी आवश्यकता मानी है। इन अष्ट संस्कारोंसे विशुद्ध किए हुए पारदको लेकर सुज्ञ वैद्य जो पाठ बनाना चाहते हों, वह बना सकते हैं।

पारद वीर्यवान बननेपर जो योग बनाया जायगा, वह भी सद्य फलदायक बनेगा। वर्तमानमें आयुर्वेदिक औषधियोंपर जो सद्यफल नहीं दर्शानेका दोषारोपण हो रहा है, वह इन संस्कारोंके करनेसे दूर होता है। अपने लिए प्राचीनकालसे चली आ रही हुई रस चिकित्सासे अनेक योगोंके लेख ऋषि, मुनि और विद्वान् वैद्योंने तैयार रखे हैं। इन सब प्रयोगोंकी संख्या तो अत्यधिक है। उनमेंसे विशेष उपयोगी जो नित्य प्रति कार्यमें आते हैं, उनके लिए कल कहा जायगा।

— उद्घाटन भाषण —

(पृष्ठ ४३८ का शेष)

वाली नहीं है। हो सकता है आरम्भमें इस सम्बन्ध में अधिक सरकारी सहायता न भी मिली हो परन्तु जीवन मरणकी बाजी लगा कर केवल जन कल्याण के लिये काम करने वाले तपस्वी रसायनाचार्योंको उनके दरवाजे पर सहायता मिलेगी और कोई भी सरकार शुभ कार्योंकी उपेक्षा कर नहीं सकती। यह ठीक है कि यह प्रश्न इस संस्थाके द्वारा हाथमें लिया गया है परन्तु यह इस संस्थाकी ही धरोहर नहीं है। राजस्थानका भी इसे गौरव है। यदि इसमें सफलता मिली तो सारे भारत वर्षका गौरव है और विश्वके इतिहासमें इस चिकित्सा विज्ञानका आदर्श उपस्थित करेगा। इस मान्यता और विश्वासके साथमें इस विद्वत् परिषद् एवं प्रदर्शनीको उद्घाटित घोषित करता हूँ। सत्यं, शिवम् सुन्दरम्।

धातुवाद क्या है ?

लेखक—वैद्य पं. बद्रीनारायण शर्म्मा आयुर्वेदाचार्य, काव्यतीर्थ
प्रधान वैद्य-धर्मार्थ औषधालय, कृष्णगोपाल कालेड़ा

अयि सम्माननीय विद्वद्वृन्द !

रससरः महागाधमालोडितं हि शाङ्करैः ।
देवासुरैः पुनः सिद्धैर्नाथै भूतैश्चयोगिभिः ॥
रसोह्यात्मा परः प्रोक्त रसो वै स स्मृतः सदा ।
रसः सनातनः शेषः रसः श्रियः प्रदायकः ॥

रस शास्त्र अति प्राचीन ही नहीं है किन्तु सनातन व शाश्वत् है। कोई इस रस शास्त्रको शङ्कर महेश्वरसे तो कोई लक्ष्मीपति विष्णुसे तो कोई विद्वान्, हिरण्य गर्भ ब्रह्मासे प्रादुर्भूत या आविष्कृत मानते हैं। आगे मैं आपको यह बतानेका प्रयत्न करुंगा कि ऋग्वेदमें भी इस विषयका विशद वर्णन किया गया है। किन्तु हमें निःसन्देह जान लेना चाहिये कि यह शास्त्र न तो शंकरसे न ब्रह्मासे और न विष्णु व लक्ष्मी आदिसे प्रकट हुआ है और न देवा सुर-समुद्र मंथनसे ही निकला है। किन्तु यह आदि है, सतानन है, और शाश्वत है। आश्चर्य चकित होनेकी आवश्यक्ता नहीं, श्रुतियां निःशंक होकर हमारा मार्ग प्रदर्शन कर रही हैं "रसोवैसः" तथा "रसोह्यात्मा" इन श्रुति वाक्योंसे रस परमात्म रूप है। जैसे परमात्मा आदि अन्तसे रहित है, सनातन शाश्वत् है उसी प्रकार रस भी है। परमात्मा रससे ओत प्रोत है वैसे ही रसमय परमात्मा रस रूप ही है। रस शास्त्र किसी निश्चित समयमें उत्पन्न हुआ शास्त्र नहीं जैसे आदि पुरुषकी उत्पत्ति विनाशका कोई निश्चित समय नहीं, वैसे ही रस शास्त्रके उद्भवका कोई निश्चित काल नहीं। इस विषयका अकाट्य प्रमाण रसोपनिषद् है। रसोपनिषद्में लिखा है कि —

प्राभृते वातुले ब्राह्मे वैष्णवैन्द्रेच शाङ्करे ।
बृहस्पतिमतं शौक्रे यत्सारं तदिहोच्यते ॥

प्राभृत, वातुल, ब्राह्म, वैष्णव, ऐन्द्र, शाङ्कर बार्हस्पत्य तथा शौक्रमतमें जो भी वर्णन है, उसका सार रूप यहां-रसोपनिषद्में प्रदर्शित किया जाता है। अब विद्वद्रसशास्त्रिवृन्द सोचे कि ब्राह्म, शांकर आदि मतो (शास्त्रो) को तो हम जान सकते हैं और जानते भी हैं और रस शास्त्रकी उत्पत्ति शंकरसे मानते भी हैं। किन्तु "प्राभृत और वातुल" को हम नहीं जानते। प्राभृत और वातुल किसे कहते है ? इन शब्दोके अर्थ जान लेनेपर हमारी यह शंका दूर हो जाती है कि यह रस शास्त्र शंकर पार्वतीके एवं ब्रह्मा सरस्वतीके और विष्णु लक्ष्मी के संवादसे भी पूर्वज है। "रसोपनिषद्" रस शास्त्रका एक अद्वितीय अतिप्राचीन एवं सब रस ग्रंथोमें भिन्नमत व महत्व रखने वाला ग्रन्थ है जो कि अभी तक अप्राप्य था और मेरे द्वारा जिसकी विस्तृत टीका की गई है, अदृष्ट पूर्व अनूठा ग्रन्थ है। उसके इन दो शब्दो प्राभृत एवं वातुलकी व्याख्या करनेमें कुछ अधिक समय एवं श्रम लगनेके बाद पूज्य
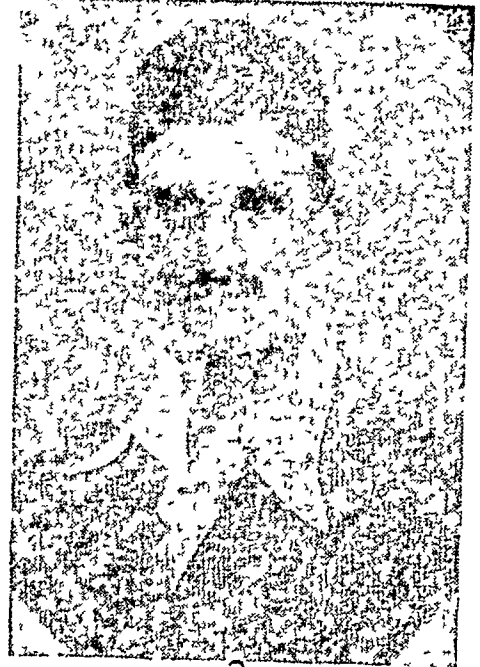
स्वामी कृष्णानन्द जी महाराजके सम्मुख सप्रमाण यह मैं निवेदन कर सका कि प्राभृत अर्थात् आदि पौरुपेय शास्त्र और वातुल अर्थात् अनन्त शेष नागीयमत होता है। मान्य सज्जन इन दोनो शब्दोकी विस्तृत व्याख्या ३-४ मासके भीतर 'रसोपनिषद्' में देख सकेगे।

अब आप मूल विषय पर आइये। मेरे निवेदन को यह तात्पर्य है कि इस श्लोकमे यह सिद्ध हुआ कि यह रस शास्त्र न केवल शकर, विष्णु, ब्रह्मा, गुरु, इन्द्र, शुक्र तथा अन्य ऋषि मुनि, सिद्ध या नाथो द्वारा प्रचलित या प्रादूर्भूत है। अपितु इनसे भी पूर्व शेष नाग और अनन्त शेषनागसे भी पूर्व आदि पुरुष जगदीश्वरसे अविछिन्न सम्बन्ध रखता है। आदि पुरुपसे अनन्त शेष नागको संक्रान्त हुआ और शेषसे ब्रह्माको और ब्रह्माके पश्चात् विष्णु तथा शकर, इन्द्र, बृहस्पति तथा शुक्र आदि को परंपरा गत संक्रान्त होता रहा। कालक्रमसे इन के मत या शास्त्र हमें अब उपलब्ध नहीं होते। ऐसा भूतकालसें भी कई बार हो गया है। पुनः जगन्नियता किसी न किसी अधिकारी द्वारा प्रचार कराते हैं।

इस रस शास्त्रके सम्बन्धमें जो भी हमे वर्त्तमानमें विधि विवरण अति प्राचीनसे प्राचीन मिलता है वह वेदोंमें है। इस समय तो हमारा आधार वेद ही है। वेदो की भाषा द्वयर्थक, स्पष्ट व अति विषम गूढ है। वेद सब विद्या कला कौशलोंके अगाध सागर हैं, अपौरुषेय है।

यहां मैं आपको यह बतलानेके यत्न करुंगा कि वेदोमें किस जगह धातुवाद या लोह सिद्धिका वर्णन आता है। वैसे तो अभ्रान्त, निश्चय युक्त ज्ञान दृष्टिसे देखा जायगा तो चारों वेदोमें स्थान-स्थानपर धातुवादका प्रतिपादन किया हुआ है। आप देखिये, खोजिये, परिश्रम कीजिये वेद सागरका आलोडन, अवगाहन कीजिये, आपको अक्षय भंडार, अटूट निधि, अविनाशिनी लक्ष्मी तथा जीवन्मुक्ति मिलेगी। मैं यहा वेदोमें रसशास्त्र व धातुवादकी सिद्धिके प्रतिपादक २-३ मंत्रोका उल्लेख करता हूँ जो कि साधारण बुद्धिवालोंके लिये भी सुबोध हैं। ऋग्वेदके खिल सूक्तमें से इन तीन मन्त्रो को देखिये—

ॐहिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥१॥
ॐतां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥२॥

भावार्थ स्पष्ट है यथा-स्वर्ण आदि धातुओंके उत्पादनमें समर्थ हे अग्निदेव! स्वर्ण सदृश वर्णवाली, मनोहारि, सुवर्ण रौप्य शशिमाला वाली लक्ष्मी (लोह सिद्धि) मुझे प्रदान करे। दूसरे मत्रमें कहा गया है कि हे अग्निदेव! उक्त प्रकारकी सिद्धकी हुई लक्ष्मी जो कि दुष्ट कुपात्रोंको दुर्लभ व निर्दोष है वह मुझे प्रदान करो। जिस धन लक्ष्मीके प्राप्त हो जाने पर मैं स्वर्णमय अलकारों, गाय, घोड़ो व परिजन को प्राप्त करलूं। अब ऋग्वेदके इस तीसरे मत्रसे धातुवादकी स्पष्ट सिद्ध क्रिया बतलाई जा रही है :—

ॐआदित्य वर्णे तपसोऽधिजातो
वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरा
याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥ ३ ॥

हे अग्निदेव! तरुराजिमें सर्व श्रेष्ठ बिल्व वृक्ष उत्पन्न हुआ, सर्वत्र प्रसिद्ध है, उस वृक्षके नीचे आसन से नियम पूर्वक स्थिर बैठकर तपस्या (रसविद्या पर परिश्रम) द्वारा उसके फलोको लोह सिद्धि हेतु पुट पाक में पकानेसे जो निर्दोष (मिश्रण रहित) लक्ष्मी (स्वर्ण रौप्यादि) प्राप्त होगी, वे मेरे अज्ञान, दुख-दारिद्रयको दूर करे।

इस श्लोकमें धातुवादके लिये अग्नि-तथा बिल्वफल के द्वारा किसी ताम्र आदि धातुपर बिल्व वृक्षके नीचे तपस्या-(स्थिर आसनसे क्रिया) करनेसे लक्ष्मी, स्वर्ण आदिकी प्राप्ति होना तथा उससे दारिद्रय नष्ट होना प्रति पादित होता है—इस तीन पानकी रुखडी बिल्व पत्र या फलके विषयमें प्रत्येक आयुर्वेदीय रसायन वादी मानता है कि इससे लोह सिद्धि क्रिया निश्चित होती है।

ये श्लोक केवल महालक्ष्मीकी प्रार्थना नहीं है। धातुवादकी कुंजी रूप लिखे गये है। इस प्रकार वेदो

में यत्रतत्र रस क्रिया, धातुवाद बिखरा पड़ा है। हिरण्य रजत मणियों आदिका उल्लेख मिलता है।

वैदिक काल या उससे पूर्वके कालमें रस शास्त्र व धातुवादकी कोई जरूरत नहीं रही थी। कारण कि रस शास्त्र व धातुवादके २ हेतु होते हैं—(१) मुख्य हेतु जीवन्मुक्त दीर्घायु होना और दूसरा गौण हेतु धन प्राप्त करना। सतयुगमें प्रायः सभी दीर्घायु चिरयौवन सम्पन्न तथा धनके प्रति निःस्पृही होते थे, अतः उन्होंने इन क्रियाओंका उपयोग धन प्राप्तिके निमित्त बहुधा नहीं किया। कालातिक्रमणसे शनैः शनैः धर्म व सद्वृत्त की मात्रा स्वल्प होती गई युग युगमें मनुष्योंकी आयु तथा वृत्तियोंका ह्रास होता गया। जिसका आर्ष ग्रन्थ चरकमें विशद वर्णन मिलता है। जब आयु क्षीण होने लगी तब रस शास्त्रके सृजनकी आवश्यक्ताका अनुभव हुआ।

भारतीय रस शास्त्रका सृजन या उत्पत्तिका मुख्य लक्ष्य एक मात्र जीवन्मुक्ति ही रहा है। हमारे पूर्वज रस सिद्ध शरीरको जरा मृत्यु रहित चिरस्थाई बनाकर, अर्थात् पिण्ड (स्थूल शरीर या सूक्ष्म शरीर) की स्थिरता कायम करते थे। फिर योगाभ्यास और और परमात्मज्ञान सम्पादनसे इहलोकमें ही जीवन्मुक्त होनेकी धारणा करते थे। उन्होंने इस देह सिद्धिमें केवल मात्र पारद, रसकी ही शरण ग्रहण करते हुये, देह सिद्धि व नीरोगता पानेके लिये प्रयत्न करने वालों के अनेक नाम ग्रन्थोंमें अङ्कित किये हैं।

देह सिद्धि हेतु वेध, बन्धनादि संस्कारोंकी सरलता पूर्वक सिद्धिके लिये ही उन रस सिद्धोंकी आनुषंगिक प्रवृत्ति धातुवाद में थी; किन्तु धन व भोग भोगनेकी इच्छासे नहीं थी। उनकी लालसा लोह सिद्धि और उससे सम्पन्न सम्पत्ति प्राप्ति रूप सांसारिक सुखोंमें नहीं रहती थी।

यह सर्व विदित एवं प्रसिद्ध ही है कि रस शास्त्रके आविष्कर्ता श्रीमन् गोविन्द भगवत्पादाचार्य, नित्यनाथ व्याडि, सिद्ध पाद, मन्थान भैरव आदि विरक्त एवं योगी थे। उन्होंने इस रस शास्त्रको जीवन्मुक्तिका साधनोपाय रूपसे निर्माण किया तथा प्रमाणित व प्रचलित किया था।

जीवन्मुक्तिकी सिद्धतासे देहकी स्थिरता संपादन करनेकी इच्छा करनेपर रस रक्तमांसादि निर्मित शरीर पिण्डकी क्षरता (नश्वरता) को पारद गंधक अभ्रक रूप हरगौरी सृष्टि संयोगसे नष्ट करनेपर दिव्य तनुकी प्राप्ति होती है। इसी जीवन्मुक्ति अर्थात् देह सिद्धिकी प्राप्ति हेतु ही भारतीय रस शास्त्रकी उत्पत्ति हुई। इसके विपरीत अन्य देशोंमें तो विशेषतः धनके लोभसे, भोग भोगनेकी दृष्टिसे इस रस कला धातुवाद का प्रचलन हुआ।

तांबे रांगे आदि अधम धातुओंको कई क्रिया, मिश्रणोंसे सोने चांदी आदि उत्तम धातुओंमें परिवर्त्तन करानेसे सम्पत्ति प्राप्ति रूप लक्ष्य रखा। और यही क्रियाकलाप धीरे धीरे चिकित्सा क्षेत्र और अन्य कला उद्योगोंमें प्रचार प्राप्त करके अब भौतिक एवं रासायनिक विज्ञानोंके आविष्कारमें सफल माना जा रहा है। और जिसका एक मात्र उद्देश्य सांसारिक भोगानन्द ही है। किन्तु हमारे भारतीय रस शास्त्रका १ मात्र लक्ष्य :—

सौरूप्यं नित्यतारुण्य मारोग्यमतुलंबलम्।
दिव्ययोगसमायोगैः सर्वाश्चानुत्तरोत्तरान्॥
दीर्घं जीवितमन्विच्छन् स भवेदजरामरः॥

रसेश्वरके दिव्य योग-प्रयोगोंसे दिव्यतनु, चिरयौवन, नीरोगता, अतुलबल, दीर्घजीवन तथा जीवन्मुक्ति प्राप्त करना है। न कि सम्पत्ति या उससे भोग प्राप्ति करना। हमारे रस सिद्ध सम्पत्ति प्राप्ति रूप धातु वाद को तो अति तुच्छ मानते थे। यथाहि रसोपनिषदि:—

वज्रबीजं प्रशसन्ति प्राकाराट्टालगोपुरम्।
जातरूपमयं कर्तुं नगर ग्राममेव वा॥
शक्यं हि मेदिनीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम्।
जातरुपमयं कर्तुं वज्रबीजस्य शक्तितः॥

केवल वज्र बीजकी शक्तिसे ही मकान व उनकी छतें, शहर, ग्राम ही नहीं किन्तु पर्वतों, जंगलों व उद्यानों सहित सारी पृथ्वी स्वर्ण मयी बनाई जा सकती है।

जिसके उदाहरण सोनेकी लङ्का व द्वारका हो सकते हैं।

हमारा रस शास्त्र प्रथम रस अर्थात् आत्मा जीवन्मुक्ति प्राप्त करानेका शास्त्र है और पश्चात् धातु वादी है। और इन दोनोको प्राप्त कराने वाला केवल रस है। रस शास्त्र और धातुवाद अलग अलग नही हैं। दोनो अभिन्न हैं, एक रूप है और धातुवाद रस शास्त्रका ही अंग है।

भारतीय परंपरामें जहां धातुवाद गौण या अकिचन विषय था, वहां आजके विज्ञान और मानवका अभीष्ट व सर्वस्व धातुवाद हो रहा है, रंकसे लेकर सम्राट् तक और निर्धनसे लेकर कोट्यधीश तक इसके उपासक व अभिलाषी हैं। सैकड़ो मनुष्य इसके पीछे पड़े हुये हैं। गुरूपदिष्ट क्रिया युक्ति रहित शास्त्रीय अशास्त्रीय क्रियाओसे धातुवादकी सिद्धिके लिये पैसा एवं अमूल्य समय बरबाद करते दिखाई देते हैं और सुने जाते हैं। अन्त तो गत्वा सफलता न मिलने पर रस शास्त्रको कपोल कल्पित एवं असत्य प्रमाणित करने लगते है किन्तु वे आत्म निरीक्षण नहीं करते। मै मेरे अनुभव तथा गुरूपदिष्ट मार्ग द्वारा क्रिया करने से यह कह सकता हूँ कि शास्त्र झूंठे नहीं हैं, कपोल कल्पित नहीं किन्तु बिलकुल सत्य व खरे हैं। धातुवाद या रसकी सिद्धिमें असफलता क्यो मिलती है ? इन कारणोको पहले समझे, यदि हम उन कारणो को दूर करनेमें समर्थ हुये हैं, तो असफलताका कोई कारण नहो। शास्त्रमें रस-मंत्र एवं रसायनकी असफलताके प्रमुख कारण निम्न प्रकारसे बतलाये हैं—

अज्ञानाद्वा निरारम्भा त्तथा चित्तविपर्य्ययात् ।
अश्रद्धधानात् शास्त्रार्थे दारिद्र्याद्प्रतिश्रयात्॥

औषधानामलाभाच्च देवतानां च विघ्नतः ।
पापोदयात्पूर्वकृतात् पार्थिवेन्द्रभयादपि ॥

दैन्यात् शरीर सम्पर्कात् असहायादसङ्गतात् ।
सन्तोषादप्यविश्वासाद् इन्द्रियाणा प्रसङ्गतः ॥

रसं रसायनं मंत्रं सिद्ध द्रव्यमथांत्तमम् ।
न सिद्ध्येत् कारणैरेभियेदन्यच्च क्रियान्तरम्॥

अनुभव शून्य क्रिया करनेसे, पूर्ण क्रिया न करने से, चित्तकी अस्थिरतासे, शास्त्रके वाक्योंमें विश्वासन करके ऊटपटांग क्रिया करनेसे, क्रिया सिद्धिके लिये द्रव्याभाव होनेसे, विना सद् गुरुके सहारे क्रिया करने से, समय पर आवश्यक उन उन औषधियोके न मिलने व प्रतिनिधि औषधियां या गलती औषधियां डाल देने से तथा दैवी प्रकोपसे (गुरुओंकी दुराशीषसे), पूर्वजन्म के पापोकी प्रबलता से, राजभयसे, दीनतासे, शरीरमें व्याधि संपर्क होनेसे, निरुपाय वश, तद्विध संगति (साधु गुरु संगति) के अभावसे, अथवा संसारसे, विरक्ति हो जानेसे अथवा क्रियामें विश्वास न होनेसे तथा इंद्रिय जन्य भोगोंमें लीन हो जानेसे इन कारणोंसे रस, रसायन, मंत्र तथा सिद्ध द्रव्य अथवा अन्य मनोवांछित क्रियाएें सफल नहीं होती।

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ामें १। वर्षसे रस रसायनकी क्रियाओमें प्रगति हुई है, यहां अनुभवी स्वामी जी तथा रस क्रिया कुशल रसायन वैद्यजी, द्वारा अनुसंधान कार्य किया जा रहा है, मै भी द्रष्टा एवं सहायक रूपसे यहा कार्य कर रहा हूँ। मै कह सकता हूँ, कि हम इस अनुसंधान कार्यमें काफी सफल हुए हैं। अथवा भारतके अन्य अनुसंधान केन्द्रो की अपेक्षा बहुत कुछ आगे है, ऐसा कहनेमें कोई अत्युक्ति नही होगी। हमारा मात्र लक्ष्य मानव सेवा है, मानवको नीरोग बनाये रखने के लिये विश्व व्यापी भयंकर रोगो व दु.खोसे त्राण करना मात्र उद्देश्य है। मानवकी इस सेवाको ही हम धातुवादकी सिद्धि समझ लेंगे। हमारा लक्ष्य लोह सिद्धि नही है। प्रथम हम देह सिद्धि चाहते हैं। हम देह सिद्धिके ही उपासक है। किसी भी लक्ष्य या सिद्धिको प्राप्त करनेके २ मार्ग होते हैं। एक विघ्नोसे भरा आशुफलप्रद, दूसरा निर्विघ्न, चिरकाल क्रिया साध्य, दीर्घ समयोपरान्तफल प्रद। जैसे कि मोक्ष या ईश्वर प्राप्तिके २ मार्ग है —१ ध्रुव, प्रहलाद द्वारा प्राप्त कठिन श्रम साध्य किन्तु आशुसिद्ध मुक्ति और दूसरी वेद शास्त्र वर्णित गुरूपदिष्ट मार्गसे दीर्घकालमें सिद्ध होने वाली मुक्ति। इसी प्रकार रस या

(शेष पृष्ठ ५२४ पर देखे)

अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसंधान सम्मेलन

श्री रा०ब०सेठ भागचन्दजी सोनी अजमेर द्वारा प्रकट किये

अपने विचार

सम्माननीय पूज्य स्वामीजी महाराज, युवराजकुमार एव भारत के विभिन्न प्रान्तो से पधारे हुये सन्मान्य वैद्यवरो ।

आज का यह विशाल आयोजन इस सस्था के जीवन में ही नही किन्तु आयुर्वेद के क्षेत्र में भी बडा महत्वका माना जायगा। मुनि नागार्जुन के बाद १५०० वर्ष के इस लम्बे समय के पश्चात् पारद अनुसंधान पर कोई कदम नही उठाया गया, यह श्रेय इस सस्था को है जिसने इस दिशा में सराहनीय प्रयत्न किया है ।

आप लोगों के पधारने से सस्था को बहुत प्रोत्साहन मिला, पारद अनुसधान पर जो भी क्रियाये यहां ३ दिन में होगी आप लोग उनका प्रत्यक्ष अवलोकन करेगे । कुछ यहा से ज्ञान लेगे व कुछ देगे ।

इस ग्रीष्म ऋतु मे दूर दूर से अनेक मार्ग के कष्टो को सहन करते हुये आप लोग पधारे इसके लिये यह सस्था आप सबका आभार मानती है। यह लोकोपकारी कार्य है, इससे भविष्य में जो सफलता मिलेगी वह मानव जीवन मे तथा भारत के इस आयुर्वेद के इतिहास में अभूतपूर्व कार्य होगा जिससे मानवमात्र आनन्द से जीवन बिता सकेगा ।

आज के विज्ञान की प्रगति को देखनेसे पता पडता है कि सरकारे काफी रकम व्यय कर रही है ।

वैसे ही इस विज्ञान कार्य के लिये भी भारत सरकार व राजस्थान सरकार का ध्यान आकृष्ट होगा जिससे आयुर्वेद उन्नत शिखर पर पहुँचेगा जैसा कि पहले था ।

मै आप सबको धन्यवाद देता हूँ कि आयुर्वेद विज्ञान प्रेम के लिये आप इतनी दूर पधारे । एतदर्थ सस्था व मैं आभारी हूँ। आप लोगो के पधारने से सहयोग मिलेगा, बहुत लाभ होगा और जिस सद् उद्देश्य से यह कार्य प्रारभ किया गया है, ईश्वर की अनुकम्पा से अवश्य पूर्ण होगा ।

— धातुवाद क्या है ? —

(पृष्ठ ५२२ का शेष)

धातु वादकी सिद्धिके भी २ मार्ग हैं। १ अनेक कष्ट युक्त सेवा भक्तिसे संतुष्ट संत गुरूपदिष्ट मार्गसे शीघ्र साध्य और दूसरा रस शास्त्र वर्णित एवं रसायनाचार्य द्वारा प्रदर्शित मार्गसे दीर्घकाल साध्य। इन दोनो प्रकारकी प्रक्रियाओंमेंसे किसी भी मार्गका अवलंबन, असफलताके उपरोक्त कारणोंको दूर करते हुये कीजिये। निश्चित सिद्धि मिलेगी। शास्त्रमें कहा है, कि—

इत्येवमनुमुक्ता तु कथिता सत्क्रिया मया।
कृत्वा भुङ्क्ष्व न धन्योऽस्मि दरिद्रोऽस्मीति मा शुच"॥

यहां हमने अनुभून और सच्ची क्रिया बतलाई है। इसे सिद्ध करके सेवन करें, भोगें। "मैं निर्धन एवं दरिद्रहूँ" इस चिन्ताको समाप्त करदें।

कोई भी क्रिया बिना परिश्रम, बिना तपस्या, बिना शास्त्र विधिकी शरण और बिना गुरु सेवाके नहीं मिलती। सामान्यतः अधिकांश यही चाहते हैं, कि हमें चलते रस्ते बड़ी सरलतासे यह क्रिया मिल जावे और हमें कोई बतादे। किन्तु सोचिये कि इतनी अमूल्य चीज जो कि आपकी निर्धनता या भयंकर व्याधि दुःखोंको दूर करने वाली है वह आपको सहज ही कैसे मिल जाये ?

इसके लिए आप प्रथम सत्पात्र बनिये और अपने आपको इसको प्राप्त करनेके योग्य बनाइये। रस शास्त्र व धातुवादके प्रतिपादक ग्रंथ शास्त्र बहुतसे प्रकाशित हुये हैं और हो रहे हैं प्राचीन पांडु लिपियां भी बहुत मिल रही हैं। अनेक रस सिद्ध गुरु, साधु महात्मा रसायनाचार्योंका भी अभाव नहीं है, किन्तु आवश्यकता है अपनेको सत्पात्र बनानेकी और सद्गुरुकी सेवा करनेकी। उस योग्य बनानेके लिए रसशास्त्रका बीजारोपण अपने आपमें करानेके लिये प्रथम स्वयंका क्षेत्री करण करें। फिर योग्य सच्चा व खरा बीज बोने वाले रसविद् गुरुका वरण करें। केवल ग्रन्थोके आधारसे अग्निकार्य, क्रियाक्रम, पाककाल आदि जाने विना क्रिया करने पर सफलता कदापि नहीं मिल, सकेगी। साथ ही वैसी ही शैली, सत्य क्रिया विधि वाले ग्रंथोंका अनुशीलन, पठन तथा मनन करके क्रिया करें। प्रसंग वश मैं आपको सुयोग्य अदृष्ट अद्वितीय ग्रंथ जो कि जीवन्मुक्ति तथा धातुवादके अकाट्य, सफल प्रयोगोंसे भरा पड़ा है, उस रसोपनिषद् की और संकेत करता हूँ। आप देख पढकर आश्चर्य चकित होंगे कि वास्तवमें यह ग्रंथ अद्वितीय अपूर्वावलोकित एवं निर्विशेष है। यह सब ग्रंथोंसे भिन्न, क्रिया भिन्न शोधनादि संस्कारोसे भरा पड़ा है। दाशन, पाशन, अकुंश आदि ऐसी क्रियाओ युक्त है जिसको आपने कभी सुना नहीं होगा। इसमें ६ प्रकारके कूर्प, अग्निजारु तैयार करनेकी विधि, द्रैवलोह, ५० प्रकारके विष तथा १०० प्रकारके उपविष, दिव्याति दिव्य महौषधियां, धातुओंके शीघ्रगालन, भस्में बनानेके अनूठे निर्माण प्रकार, धातुवादके विचित्र सफल प्रयोग मिलेंगे। फिर भी उसमें तिलकी ओट पहाड़ है। उस तिल मात्र अंधकारको दूर करनेके लिये प्रकाश दिखलाने वाले गुरुकी ही शरण लेनी पड़ेगी। वैसे तो संसारमें गुरु लोगोकी कमी नहीं है। सब कोई थोड़ा बहुत जानने वाला चाहे वह इस क्रियामें असफल ही रहा हो। गुरु कहलाने या प्रमाणित करनेमें दम भरता है। ऐसे महाशय तो आपको बहुत मिलेंगे, किन्तु सत्य पथ प्रदर्शक, सफल क्रिया रस सिद्ध गुरु थोड़े ही मिलेंगे ! बड़ी कठिनाईसे आपके सौभाग्यसे अथवा पूर्व जन्मार्जित पुण्योंके प्रतापसे या आपकी लोकसेवक भावनासे आकृष्ट होकर स्वयमेव दर्शन देंगे। सकल पदारथ है जगमांही। कर्म हीन नरपावत नाही। लोककी, भारत देशकी, स्वजातिकी, निर्धन अपंग दरिद्रोंकी तन मन धनसे सच्ची सेवा कीजिये। फिर आपको मिलेंगे गुरुदेव और सच्चे गुरुदेव और उन्हींकी कृपा से आप बन सकेंगे कर्ण, जामवन्त सरीखे स्वर्ण दानी फिर धातुवाद तथा रस शास्त्र आपको हस्तमालक वत् प्रतीत होगा यही है धातुवाद। इतिशम्।

रसविद्या का उत्कर्ष

वक्ता—श्री राजवैद्य हरिलाल प्राणजीवन जोशी बम्बई

रसयज्ञके याज्ञिकगण ! ज्ञान पिपासु सज्जनो ! तथा वैद्यों !

प्रातःकालीन सूर्यकी प्रमुग्व रश्मियोसे और अब मध्याह्न तप्त नागार्जुन और भगवद्गोविन्दपादाचार्य की परिपाटीको पुनः जीवित करने वाले महर्षि पूज्य कृष्णानन्दजी और सूर्यवंशके प्रतीक सुपुत्र ठाकुर श्री नाथूसिंहजी साहेबने कई वर्षोसे यह पारदीय अनुसंधानका रसयज्ञ प्रारम्भ किया था। उसे १। वर्षसे रसायनाचार्य शान्तिलालजीने प्रबलवेग दिया। उसी यज्ञके यजमानके नातेसे हम सबको यहां बुलाकर जो सम्मानित किया है उसीसे हम बहुत आभारी हैं।

इन्होंने हमको यहां क्यों आमंत्रित किया है ? उसके बारेमें हम कुछ विचार करेंगे। वे कहते हैं और मानते हैं कि आयुर्वेदके पुनरुद्धारके लिये हमारे रसयज्ञकी इस कृतिसे आप सबके अनन्त परिश्रमकी थैलीमें कुछ न कुछ पत्र पुष्प समाजाय तो हम कृतार्थ होंगे।

आप सब वैद्यवरोके आशीर्वादसे यहां जो कुछ रस समुद्रमंथन द्वारा प्राप्त हुआ है, वह सब आप रसपंडितों के चरणोंमें निवेदन किया है।

यदि भगवान् धन्वन्तरिकी कृपासे रस समुद्र मंथन द्वारा हरगौरी रसकी प्राप्ति होगी। तो इस क्रांतियुगमें भारतको धन व आरोग्यके लिये विदेशोंसे द्रव्य प्राप्त्यर्थ मुंह ताकना नहीं पड़ेगा।

प्राचीन परिपाटी यह है। छोटासा रिसर्च इन्स्टीट्यूट बेंगलोरके लिए महामनी मैडम क्यूरीको किसी राजमान्य संस्थाओंका आश्रय नहीं था, उसके पास केवल थी अपनी प्रयोगशाला। उसी प्रकार इस छोटे से रसयज्ञ मंडपसे जब धन और आरोग्यका झरना बहेगा तब कहावेगाकि—

आर्यावर्तकी प्राचीन संस्कृति और प्राचीन आयुर्वेदके ज्ञानविज्ञानकी कल्याणकारिणी गंगा यमुना यहा बहेगी तब विश्वभरके सुबोध वैज्ञानिक आर्यावर्त की संजीवनीकी श्रेष्ठ क्रिया और ज्ञानसमृद्धिका सन्मान करेंगे और अपने अपने प्रजाहृदयके हृदयंगम आशीर्वाद भेजेंगे।

किन्तु इस सम्मान और नोबल पारितोषिकका धारक कौन होगा ? उस महानुभावको पहिचानना पड़ेगा। वे हैं इस रसयज्ञके रसेशाचार्य श्री शांतिलाल भाई। रसशास्त्र और उसके रहस्यके संशोधनके लिये वर्षोंकी तपश्चर्याके साथ गुरुकृपाके ज्ञानपुंजने आपके हृदयमें ज्ञानदीप प्रज्वलित कर दिया है और जो कुछ यहां रस-समृद्धि प्रत्यक्ष देखते हैं वह श्री शांतिलाल भाईके समृद्ध प्रयत्नका साकार दर्शन है।

श्री शांतिलाल भाईने सात्विक ऋषिभावनासे जीवन ज्ञानमय बनालिया है और उसी ज्ञानके नम्र बलपर आचार्यपद शोभित कर रहे हैं।

श्री शांतिलाल भाई ही अपनी आशाओके फल और प्रेरणा और उल्लास है। ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी त्रिमूर्तिका यहां सुभग समन्वय हुआ है, समन्वयकी श्रेष्ठ भावना और लोककल्याणके महान यज्ञमें समिध बनकर अर्चिष बनेंगे और वही अर्चिष सहस्र किरणो से खोलेंगे कि—

“ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतगमयेति”॥

(बृहदारण्यक श्रुति)

उसी तरह कठश्रुति साथ ही मुमुक्षुओंने कहा है कि—

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत" ॥

उठो जाग्रत हो! खड़े हो जाओ! प्रमाद हो छोड़ो धर्मपरायण होकर व्यवहार और परमार्थ दोनोंको साधो।

इन दोनों क्षेत्रोंमें निश्चित किये हुये कार्यको पूर्ण करें और उस ज्ञानके प्राप्त करनेके लिये ज्ञानियोंकी शरण ग्रहण करें।

उपरोक्त शास्त्रीय कथन लोक हितैषी ऋषिमुनियोंने अपनेको अज्ञान निद्रा (अनकोशस) मेंसे जाग्रत होनेको कहा है। ऋषिमुनियोंने मानव जीवनके बारेमें व्यावहारिक और पारमार्थिक क्षेत्रमें जीवनको सफल बनानेके लिये सच्ची दिशाका सूचन करते हुये जीवन साफल्य बनाने वाले रहस्यपूर्ण सत्यज्ञान निवेदित किया है और कहा है कि मानव दृष्टिसे देखा जाय तो मुख्यतया दो विभाग दृष्टिगोचर होते हैं। (१) नैतिक जीवनका चेतना स्तर; २. बाह्य सामाजिक जीवनमें स्थान। इन दोनों विभागीय कड़ियोंसे मानव जीवन कभी मुक्त नहीं रह सकता। इससे ज्ञानी पुरुषोंने उपरोक्त दोनों जीवनके पहलुओंकी खूब जांचकी है। सदाचार और लोक हितैषी तथ्यको दृष्टि समक्ष रखकर मानव जीवनके लिये ऐसी कोई उच्च भूमिका शोधकर कहा गया है कि मानव जीवन जाग्रत (Conscious) और (Unconcious) अजाग्रत अज्ञान निद्रा ऐसी दो अवस्थाओंमें विभक्त हुआ है। उसमें मनुष्यको सुसंस्कृत रहस्यमय और लोक कल्याणकर होना हो, तो जाग्रत जीवन जीना चाहिये। और ऐसे जीवन की शक्यता उन बुद्धिमान पुरुषोंके हृदय गीत जैसे प्रासादिक ग्रन्थोंमें प्रवाहित ज्ञान सरिता-स्मृति द्वारा जान सकते हैं।

जाग्रत हृदय प्राप्त करना परिश्रम साध्य है या बड़ा कठिन कार्य है। एक महामना आंग्लवेदान्तक शास्त्री के जागृत हृदयके सम्बन्धमें उनके उद्गार इस प्रकार पढ़े जाते हैं—

(Easy is the descent to averness, night & day the door of gloomy dirk stands opun, but to recall thy steps and pass out to the upper air, this is the task, this is the toil)

जागृतहृदय अर्थात् निरन्तर [illegible] विवेक और नियम संयमपूर्ण [illegible] स्फूर्ति प्राप्त करना और [illegible] प्रकाश निरन्तर रखे तो पूर्ण भाग होना।

उत्साहमय, लगनमय, निरामय और निर्भयता पूर्वक ग्रहण करने वालों अवश्यही अपना जाग्रत हृदय करेंगे।

जाग्रत हृदय द्वारा प्रगट होने वाला ज्ञान सत्यं शिवं सुन्दरम् ऐसा शाश्वत ज्ञान, रहस्यमय ज्ञान है। इसके विपरीत अजाग्रत हृदय याने सब अज्ञान, संशय, चित्त विपर्यय और इन्द्रियोंके विषयासक्तिमें ओत प्रोत मलिन हृदय, जिसमें रागद्वेष मय संस्कार पुनः पुनः प्रकट होना और वेदनामय होने वाला जीवन है। इस सम्बन्धमें ईशावास्योपनिषदमें कहा है कि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

प्रिय बन्धुओं!

रसशास्त्रकी रहस्यमयी रसविद्याको जागृत हृदय द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। रसविद्याका रहस्य दर्शन प्रकृतिका विशालतम अभिनव सर्जन, नाम रूपात्मक द्रव्य, जगत् में होने वाला सर्जन, स्थिति और संहार, ऐसी त्रिविध प्रक्रियाके रहस्योंका बोध करने वाला प्रत्यक्ष दर्शन है।

रसविद्याकी प्राप्ति यह परम लाभ है। परमात्माकी दयामें पारितोषिक है और उसका सन्मान करनेके लिये हमें आंतरिक और बाह्य जीवनसे तत्पर रहना चाहिये। श्री हरि अपनेको ऐसी रहस्यमय रसविद्याके विषयको श्रावण मासके मेघोंके तुल्य ज्ञान जलसे सींचें।

निसर्ग और रसविद्या—निसर्ग कहता है कि

रहस्य ज्ञानके लिये मेरा ज्ञान भण्डार खुला है। आप आयें, अवश्य आवें किन्तु नैसर्गिक रीतिसे। मेरी रीति मेरे जैसे सरल सौम्य और निर्भय होकर मेरे ही अन्दर से ज्ञानी मुक्त पुरुष मुझे खोजते रहे।

निसर्गने स्वयकी स्थावर सृष्टिमें खनिजोंमें रस-सिद्धि देने वाले ऐसे कौनसे तत्वोंको छिपाकर रसविद्या के रहस्यको गुप्त कर रखा है। उसे उन खनिजोमेंसे कैसे प्राप्त करना जिससे हम हरगौरी दर्शन प्रत्यक्ष कर सकें यह जानना शेष रहा है।

रसविद्यामें मुख्य विषय जो समझनेका है वह हरगौरी आत्माकी भांति चैतन्यात्माके लिये अपना आध्यात्मिक दर्शनज्ञान, पंचकोष तीन गुण, पृथिव्यादि पंचभूत, पचतन्मात्रासे व्याप्त हैं, ऐसा उपदेश देते है।

इसी रीतिसे रसविद्याका ज्ञान दर्शन खनिज तत्वों के जड़ आत्माके पृथिव्यादि भूतावरण पदार्थोंके मध्यमें आवृत हुये रस गुणवीर्य प्रभावादि भेद, मलविक्षेप आदि अवस्थाएं, किस रीतिसे चारों ओरसे घेरे हुये हैं, और उस जड़के भीतर अवस्थित आत्माको जाग्रत स्थितिमें किस रीतिसे बाहरलाना, उसका ज्ञान रस-विद्या अपनेमें समाई हुई दिव्यकलाद्वारा प्रदान करती है। यह ज्ञान और कला एक नैसर्गिक अनुभूति है। उस द्वारा होती हुई फलश्रुति अद्‌भुत रहस्यकी ओर ले जाने वाली एक प्रकाश रेखा है। उपरोक्त कथना-नुसार आत्माके आवरणके विषयमें ज्ञात हुआ।

अब प्रकृतिके दृश्यमान चेतन्य जगन्में सर्जन आदिकी नियमपद्धति भी रसविद्यामें किस प्रकार मेल खाती है ? इसके लिये विचार करें।

चैतन्य नाम रूपात्मक जगतमें प्रकृति द्वारा जिस-जिस प्रकारके नाम रूपात्मक शरीरका आश्रय लेना हो उस उस जगतके आत्मा और बीजदान सयोग (Consecration) द्वारा आवृत होकर गर्भमें स्थिति होती है। वह एक क्रिया (२) जन्म द्वारा आकृतिका आवि-ष्कार रूप, यह दूसरी क्रिया (३) नाम रूपकी स्थिति यह तीसरी क्रिया (४) मृत्यु या आकृतिनाश यह चौथी क्रिया (५) फिरसे जन्म लेना पुनर्जन्म यह पांचवी क्रिया ऐसी प्रक्रियाओंके द्वारा प्रकृतिके मायाके विलास को अपनने देखा और जानभी रहे है कि रसविद्या की कलामें नीचे लिखे अनुसार योजना होती है।

आत्मा और बीजदानका संयोग पारद रूपी गर्भ स्थानमें आयोजित होता है यह पहली क्रिया (२) रस बन्धन गर्भद्रुति होनेपर क्रामणक्रिया होती है। और इसीसे सुवर्ण अथवा रत्नादिककी उत्पत्ति या आकृति रूपसे बाहर प्रगट होता है। यह दूसरी क्रिया रसवेध (३) सुवर्ण रत्नादिककी स्थिति व्यवहार योग्य (४) भस्मीकरण मृत्यु विश्वचक्रकी गतिके रहस्य के लिये पदार्थोंकी आत्माको बीज शक्तिके साथमें सग्रह करना, पुनपुनः जन्मके लिये आवृति होना यह पांचवी क्रिया।

यह चैतन्य और जड़ात्मा भेद नाम रूपात्मक दृश्योंकी स्थिति समझनेके लिये है। आत्मा तो अखड सर्व व्यापक और निर्विकार है।

उपरोक्त बाते प्रत्येक देशके रसविद्वान पूर्ण रीतिसे स्वीकार करते है क्योंकि वह कथन सत्यके आधार पर निर्भर है।

रसविद्याके मूल भूत द्रव्य
(Prima Matter)

रसविद्याके मूलभूत द्रव्योके विषयमे जब सोचते हैं तो निसर्गके सुन्दर सर्जनकी संयोजन कड़ी देखने को मिलती है। इस रहस्यमें सयोजनको प्राकृतिक खनिज सृष्टि, उद्भिज सृष्टि, स्वेदज सृष्टि, अण्डजसृष्टि और जरायु सृष्टिमें विस्तार किया गया है।

इस संयोजन श्रृंखलाको "बोर्डर सेन्स" इस प्रकार का नामकरण आंग्ल शास्त्रियोने किया है। अर्थात् उद्भिजादि एक सृष्टिका अन्त और उससे उच्चकक्षा की सृष्टिकी शुरूआत इसी तरह मध्यकी सीमाका भी "बोर्डर सेन्स" यह अर्थ हो सकता है। बोर्ड-रसेन्सके नाम रूपात्मक पदार्थ पांचो सृष्टियोंमें देखने

को मिलते हैं जैसेकि—

खनिज सृष्टिमें—सुवर्णमाक्षिक अभ्रक, रसक, तुत्थक, पारद इत्यादि।

उद्भिज सृष्टिमें—लजवन्ती, रुद्रवन्ती, तेलिया-कन्द, सोमवती इत्यादि।

स्वेदज सृष्टिमें—भूनाग, मेंढक, वल्मीकमत्स्य, लीख इत्यादि।

अण्डज सृष्टिमें—शतुरमुर्ग, मयूर, नाग इत्यादि।

जरायुज सृष्टिमें—हाथी, बन्दर, मनुष्य इत्यादि।

उपरोक्त बोर्डरसेन्सके द्रव्यकी भीतरी मुख्यता—खनिजसृष्टिके अभ्रक आदिको और जरायुजमें मनुष्य को रसविद्यामें स्वीकार किया गया है।

रसविद कहते हैं कि बोर्डरसेन्सकी सृष्टिमेंसे रसके रहस्यकी चाबी हाथ लग सकती है।

मूलभूत द्रव्य—रसविद्याका मूलभूत द्रव्य अजाग्रत (Unconcious) स्थितिमें पृथ्वी, जल, वायु और अग्निके समन्वयका स्वरूप है और उसमेंसे प्रकट हुये नामरूपकी निर्मल एक्यता (Unity) बीज शक्तिसे स्वयंका स्वरूप प्रविष्ट हुआ है। इससे मूलभूत द्रव्य प्रकृतिके कार्यका महत्व रखता है। निसर्गकी सर्व व्यापक शक्तिका माध्यम है, वे द्रव्य सदा हर जगह पर फैल रहे हैं। निसर्ग स्वयंकी माध्यमशक्ति द्वारा हरघड़ी सर्जनात्मक स्थिति विलस रही है। विद्वान रसाचार्य कहते हैं कि यह शक्ति मनुष्य, पशु, पक्षी तथैव जड़ वस्तुओंमें भी व्याप्त हो रही है। इससे साम्प्रत हमारी रसविद्याके रहस्यमें मुख्य द्रव्य स्वरूपमें इस दिव्य शक्तिका माध्यम (Intermediate) या उसके सविशेष तत्वके रूपमें हम स्वीकार करते हैं, और यह दिव्य शक्ति हमारे कार्यके लिये परिपूर्ण मालूम होती है। चन्द्राकार स्वच्छ प्रकृतिमेंसे हम इस दिव्य जल, अग्नि और वायुको आकर्षित करते हैं।

हमारी इस शक्तिका पहला स्वरूप अस्वच्छ था, रसविद्याकी कला द्वारा और परमात्माकी कृपासे हमने स्वच्छ स्थितिमें रूप धारण किया है। यह है हमारा मूलभूत द्रव्य।

महान रसशास्त्री कहते हैं कि काली पृथ्वीमें तैरते हंस सरीखे, बारीक गेहूँके टुकड़े जितने आकारमें हमने तैरते हुए सुवर्णको देखा है। किन्तु यह हंस व चक्रवर्ती राजा है। यह चक्रवर्ती सर्वदा हमारे साथ घूमता फिरता है। हमारी आत्माका मोती (पर्ल आफ दी सोल) प्राणी पदार्थकी महान् जाग्रति समुद्र सतह, पृथ्वीका निर्मल अम्बर, वायुका गति-माध्यम, अग्निकी तेजस्विता, पदार्थ मात्रकी मृत्यु पर-छाई है। ऐसा महाकाल, पुनर्जन्मका उद्भव स्थान सर्वनाम रूपात्मक जगतके बीजोंकी रहनेकी मूलभूत जगह ऐसा यह हरगौरी सदाशिव है।

प्यारे भाइयों!

बहुत कारणोंकी वजहसे, बहुतसे रसविद्वान् कभी भी इन द्रव्योंके नाम प्रकट नहीं करते हैं। कोई रस-शास्त्री कुछ संज्ञा देता है और अन्य शास्त्री उसीको और कुछ संज्ञा देता है। जैसे कि प्रायमामेटर पारद-गंधक, कान्तलोह, रसक, अभ्रक, वैक्रान्त, तुत्थ, लीविङ्गवोटर (Leaving Water) वल्कन, उत्तम्, एगटीमनी, ड्रेगोन, सरपण्ट, एजोत, आद्य, वर्जिन मिल्क वैसे रसविद्याको पचासों नामोंसे संबोधित किया गया है।

रसविद्याके रहस्यके विषयमें रसविद्वान् कहते हैं कि रससिद्धिकी प्राप्तिके लिये आधाभाग जाग्रत हृदय आध्यात्मिक शक्ति द्वारा और आधाभाग रासायनिक प्रक्रियाओ द्वारा प्राप्त हो सकता है।

इसीलिये कहा है कि—आत्मविद् रसविच्चैव द्वाविमौ सूक्ष्मदर्शिनौ॥

पृथ्वी लोक का अमर खजानची:—

पृथ्वी पर मनुष्यके व्यवहारमें मुख्य रूपसे सुवर्ण का उपयोग होता है। बिना स्वर्ण मनुष्यके पारस्परिक लेन देनका व्यवहार पङ्गु होता है और उससे इसे स्वर्णके व्यावहारिक माध्यमके लिये, मनुष्य अकेला

समूह रूपमें या गजससाके रूपमें सुवर्ण सग्रह और उसके आयोजनके लिये सदा तल्लीन रहता है। इससे रसविद्याकी महान् सिद्धि, सुवर्ण सिद्धि यह मनुष्योंका अमर खजाना है। और उसका कर्णधार खजानची है। शास्त्रमें कहा है कि :—

स महेन्द्रकुबेराभ्यां यस्तु बध्नाति सूतकम् ॥
(रसोपनिषद्)

महान् सम्पत्तिके खजानची या उसके अधिकारी को जीतनेका कार्य अति कठिन है।

मार्ग बड़ा विषम और मनको नापसंदसा है। बहुत सी आपत्तियां आती हैं, चित्तको संशय रूपी अंधकार के परदेसे क्षुब्ध करके सच्चे मार्गको पाने नहीं देते।

The Treasure Hard to attain

रस शास्त्रि गण कहते हैं, कि यह क्रिया सैंकड़ों कोस दूर स्थित सूर्य चन्द्रको पृथ्वी पर लाना है। किन्तु वे पृथ्वीममें ही लानेका आदेश करते हैं और कहते हैं कि पृथ्वी कोई मिट्टीका ढेर नहीं है, मृत नहीं है। वह तो निहित शक्ति (In habited Power) नाम रूपात्मक प्राणीपदार्थका जीवन और आत्मा है। महान् तेजस्विनाका गर्भ स्थान है, उत्पन्न हुये और होने वालोंकी जननी है।

खिलकाण्डमें नारायण श्रुतिमें प्रार्थनाकी है कि:—

पृथ्वि ! त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि।

जिससे अपने इस खजानचीको अपनी पृथ्वीके अन्दरसे ही प्राप्त करना कर्त्तव्य है।

रहस्य प्रकाशिक प्रामादिकमनन्य।

रस विद्याके रहस्यको प्रत्यक्ष करनेसे सफल रस विदोंका मंतव्य अपन देखें। आर्यावर्त्त:—

१. यथा रसस्तथाऽऽत्मा यथाऽऽत्मा तथा रसः॥
आत्मविद्रसविच्चैव द्वाविमौ सूक्ष्मदर्शिनौ॥
(रसोपनिषद्)

२. आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो
वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः॥
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु-
मायान्तरा याश्च बाह्याअलक्ष्मीः॥
(ऋग्वेद लक्ष्मी सूक्त)

३. सकल सुरमुनीन्द्रैर्वन्दितं शंभुबीजम्।
स जयतिभवसिन्धो पारदो पारदोऽयम्॥

४. परमात्मनीव नियतं भवति लयो यत्र सर्वसत्वानाम्
एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते॥
(रसहृदयतन्त्रम्)

५ गिरीशवाम सदा महदद्भुतं
सकलरोगविघातकरं परम्।
सुवर्णसिद्धिविधानविशारदं
प्रणत पापहरं सवपारदम्॥

सुवर्ण सिद्धि और रोगहर प्रकारका एक रस राज के द्वारा वर्णन किया गया है। ये अपने आर्यावर्त्त के रस सिद्धोंके मननीय मतव्य हैं। अव अपन चीन देश के रस विदोंको देखें।

चाइनीज—मास्टर ल्यू जू ने कहा है कि युचिग नामके समर्थ रससिद्ध पवित्र स्मरण छोड गये हैं, जो कि रस विद्याके रहस्यको प्रकट करने वाले हैं। सुदूर प्रवास वाली मत्र मोहिनी नामका काव्य दिया है, उसमें कहते हैं कि—चार शब्द चैतन्य शक्तिके स्थानमें घनीकरण करें। छठे मासमें श्वेत हिम सदृसा उड़ता दीखे। तीसरेको देखो सूर्य विल प्रकाश युक्त किरणे फेंके और वारिपे शान्त वायु फेंके। व्योममें विचरे ग्रहणात्मकी चेतन्य शक्ति कोई खावे और गुह्यमें ज्यादा गंभीर गुह्य न कोई स्थलप्रवेश नहीं है, वही उसका सच्चा ग्रह है।

ये उपरोक्त कविता पंक्तियां मर्मसे भरी हुई हैं। कविताकी प्रारंभकी २ पंक्तियोंमें सुवर्ण पुष्प सिद्धि क्रियाका सर्व रीतिसे उल्लेख किया है। दूसरी २ पंक्तियों में सूर्य चन्द्रका परस्पर आन्तर प्रवेश (यूनीटी) का

संबन्ध दर्शाया है। छठे महिने वाला शब्द सूर्य चन्द्र का सयोजक अग्नि है। सफेद हिम अग्निके बीचमें आया है। द्वन्द्वका सच्चा अंधेरा है। जो ग्रहणात्मक तत्वमें फिर जानेकी तैयारीमें है। तीसरा निरीक्षण गंभीर जलका सूर्यका प्रतिबिंब सप्तरंगी किरणो सहित समाहित होने वाला ध्रुव बिन्दु हैं, अब जो ग्रहणात्मकथा है वह अब सर्जनात्मक तत्त्वमें फिर जानेकी तैयारीमें है। अग्निको पोषण मिले, इस हेतुसे यह क्रिया होती है। प्रकृतिकी सर्जनात्मक क्रियाका प्रारभ द्वन्द्वके उस पार रिक्त होता है। किन्तु द्वन्द्वके उस पार वह बहुत गहरा रहस्य है, और वह उसका सच्चा देश है।

इसलामिक आल्केमी :—एमेरेल्डटेबल नामके काव्यमें अरेबियनो ने स्वयंके रहस्यको गुप्त रखा है। कहते हैं कि :—

वह सच्चा है, असत्य रहित है, निश्चित व पूर्ण सत्य एक ही वस्तुके आश्चर्य को पूर्ण करनेके लिये जो ऊपर है, वह जो नीचे है, उसीके समान है और जो पृथ्वीमें है, वही स्वर्गमें हैं। उसी के सरीखा ही है। एक ही वस्तुके ध्यानसे सभी पदार्थ उत्पन्न हुये हैं। उसका पिता सूर्य है, उसकी माता चन्द्र है, वायु उसे गर्भमें ले गया और पृथ्वी पोषण कर्त्ता परिचारिका (नर्स) है।

समस्त जगतके हरेक आश्चर्योत्पादक कार्य और रहस्योका वह पिता है। उसकी शक्ति पूर्ण है।

यदि उसको पृथ्वी पर फेकनेमें आवे तो पृथ्वी तत्वको अग्निसे अलग कर देगा अर्थात् सूक्ष्मको स्थूल से अलग कर देगा। बहुत कुशलतासे पृथ्वी परसे आकाशमें जाता है और फिर वापिस पृथ्वी पर उतरता है, उत्कृष्ट और निकृष्ट शक्तियोसे भी संयोजित होता है। इसी तरह समस्त विश्वकी तेजस्विताकी सहिमाको तू प्राप्तकर सकेगा। अन्धकार तुझसे दूर भाग जायगा। इस दिव्य सर्व शक्तिका शक्ति शाली धैर्य है, क्योंकि प्रत्येक स्थूल, सूक्ष्मको जीत सकता है। इसी रीतिसे सर्जन हुआ। रसात्माके विषयमें मुझे जो कहना था वह पूर्ण हुआ। यरचूसेन नामका रस सिद्ध कहता है कि

And azot is truly my Sister
And Kibrik for Sooth is my brother
The SerPant of arabia is my name
The which is Leader of all this game

एजोट याने पारद और कीब्रिक याने गंधक समझना। अब हम ग्रीककी ओर चलें—

ग्रीक:—ड्रेगोन पर काव्य लिखा है-ड्रेगोन सर्पकी जातिका प्राणी है, नाइल नदीमें तैरता देखा जा सकता है। उसके द्वारा रहस्य प्राप्त करनेकी सूचना हो रही है।

महान् वस्तुको अन्धकारमें ड्रेगोनने स्वयंकी आंखो में आच्छादित किया था, यदि आप उसे प्राप्त करोगे, तो आप एक सुन्दर तेजस्विताको प्राप्त करोगे, ड्रेगोन विष पान करके भी अमृत वर्षा करेगा। इस दिव्य मृत्यलोकपर सम्पत्तिकी वर्षा करता है। जन्मे हुये मनुष्योको बहुत अधिक परिमाणमें धारण पोषण करता है।

यूरोप :—यूरोपका रस सिद्ध श्री पिटर्स बोन्स है सन् १३३३ में हुये थे, उन्होने फिलोसोफर स्टोन—पारस मणि पर रहस्य जनक विचार दिखलाये है।

यह कला कुछ मात्रामें नैसर्गिक और दैवी है, और मानवातीत, अतिमानस वाला-मानव जीवन है। ऊर्ध्वीकरणकी प्रक्रियायें अन्तमें शक्तिके वर्चस्व के कारण श्वेत प्रकाशमय आत्माका उदय होता है।

स्वर्गमें शक्तिके साथ जाता है, यह स्पष्ट फिलोसोफर स्टोन है, यहां तक की प्रक्रिया आश्चर्य जनक है, किन्तु वे निसर्गकी सीमामें ही होती है। ऊर्ध्वीकरणकी प्रक्रियाके अन्तमें आत्मा व उसकी शक्तिकी स्थिरता और अमरताके विषयमें जब यह वस्तु गोप्य भाव दिखाती है। जो गुप्तता इन्द्रियोंसे अग्राह्य है, लेकिन जो केवल प्रेरणाके दिव्य तत्वके दर्शनसे

अर्थात् सद्गुरुके उपदेशसे बुद्धि द्वारा हो सकती है। जैसा कि —

ईस्वी सन् १५५० में रोजेरियम साहित्यमें दी राइजेन क्रीष्ट विथ दी इन्सक्रिपशनमें लिखते हैं कि—

After my many Sufferings
and geat martyry
I rise again transfigured of
all blemish free

भावार्थः—मैंने बहुत सख्तीसे सहन किया है, और शहीदोंकी बडी मृत्युको भी, फिरसे मेरा उदय हुआ रूपान्तरके रूपमें, किन्तु इस तरहके सर्वकलङ्कों की मुक्तरीतिसे।

रसशास्त्रमें ऐतिहासिक दृष्टि

रसविद्या द्वारा सुवर्ण सिद्धिका अनुभव लाभ— बुद्धिशाली पुरुषोंको उत्तरोत्तर जभीसे मिलता गया है तभीसे बुद्धिशाली वर्गमें रसविद्याके रहस्यके लिये बहुत उत्कण्ठा जागृत होती गई और उसीके द्वारा वात्तिक रीतिसे, प्रत्यक्षरीतिसे ज्ञान व कलाकी दृष्टिसे, संशोधन वृत्तिसे, थककर रसविद्याके ज्ञानको शास्त्रके रूपमें संग्रह करनेमें शक्य प्रयत्न किये हैं।

रसविद्या कोई एक ही देशका ज्ञान या सम्पत्ति नहीं है, वह तो सर्वदेशीय ज्ञान किन्तु ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रमाणोंपरसे मालूम होता है। प्रथम उद्गम भारतवर्षमें हुआ और इसके बाद अन्य देशोंमें प्रचलित हुआ। भारतवर्षसे इस विद्याका ज्ञान चीन व अरबने ग्रहण किया। अरेबियाने यूरोपको ज्ञान प्रदान किया। चीनके पाससे ग्रीक एवं उसके आंतरिक देशोंने ग्रहण किया। सर्व राष्ट्रोंके रसविदोंने रहस्य ज्ञानको धर्म सम्प्रदायके साथ मिलाकर धार्मिक व पवित्र कोटिके मनुष्योंके लिये ही यह विद्या दी है और तै किया तथा वैसा होनेके लिये भारतमें रसेश्वर सम्प्रदायकी स्थापना हुई। चीन देशमें टाओलिज्म और अन्य देशोंमें भी एक अलग साम्प्रदायिक संस्थाके रूपमें नियमित किया गया। यह सब देखते हुये मालूम होता है कि रहस्यको जितना गुप्त रख सकें उतना प्रयास किया गया है। इसलिये सविशेष रूपमें रसज्ञान मानवीय व्यवहारमें सरलतासे प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता।

आर्यावर्तमें रसविद्याका उद्गमकाल कोई निश्चित नहीं हुआ है, किन्तु वेदानुसार श्री सूक्त, रसोपनिषदमें से मिलने वाले प्रमाणोंमें यह विद्या प्राचीनकालकी है, वैसा निश्चय किया जा सकता है, इसी तरह रसहृदयतन्त्र, रुद्रयामलतन्त्र, रसार्णवतंत्र और रसरत्न समुच्चय, रसराज लक्ष्मी, रसेन्द्रचूड़ामणि, रसरत्नाकर, आनन्दकन्द आदि प्रासादिक और अन्य संग्रह ग्रन्थोंसे समयकी कुछ मर्यादा ली जा सकती है।

ऐतिहासिक व साम्प्रदायिक सूचीमें समय व व्यवहारकी दृष्टिसे आर्यावर्त्त और अन्य देशोंमें, रसविद्या वह गुरु परंपरागत उत्तरोत्तर बहती हुई आई हैं। सन् १९४२ के समय ऋषिकेशमें प्रयोग हुआ उसकी सूची लेना है। भारतमें साम्प्रदायिक दृष्टिसे श्रीविद्या और रसेश्वर सम्प्रदायमें हरगौरीसृष्टि विद्याके रहस्य की उपासना और रासायनिक प्रक्रिया द्वारा हरगौरी रसका निर्माण किया गया।

उस समयकी ऐतिहासिक सूची मिलना कठिन है।

चीन—हिन्दमेंसे इस विद्याको चीनमें बी० सी० १४४ में प्रेषित किया गया। वहांके प्रसिद्ध आचार्य चूचिंग एने रस विद्याके विषयमें प्रासादिक ग्रन्थ लिखा है। (The caret of the Golden Flower) और मेजिक स्पेल फोर फार जर्नी नामका रहस्य गोपनीय, प्रत्यक्षकर्ता महाकाव्य लिखा है। टाओलिज्म नामके सम्प्रदायका प्रवर्तन किया। रसविद्याके हरगौरी सरीखे चीन और यङ्गनामके दिव्य तत्त्वोंका ज्ञान निर्माण किया।

हिन्दमेंसे दूसरी दिशा अरेबियामें रसविद्याके ज्ञान का प्रचार हुआ और वह इस्लामिक आल्केमियाके

नामसे प्रसिद्ध हुआ।

महापुरुष मोहम्मद और खदीजाने धर्मके साथ रहस्यका नियमन किया। उनके प्रधान शिष्य खलीजा ईस्वी सन् ६६० से ७०४ तक उत्तरोत्तर गुरु परम्परा के रूपमें परिवर्तन करते रहे।

इसके अलावा जाबियारने १८वीं सदी में भगीरथ श्रम द्वारा सच्चा प्रकाश प्राप्त किया और बुक आफ दी बैलेन्स नामकी पुस्तक प्रसिद्धकी।

बरचूसेन नामके विद्वान रससिद्धका चिन्नोंकी भाषामें संगृहीत ग्रंथभी उपलब्ध है।

इस्लामिक अल्केमीमें एमेड टेबलनामका रहस्य काव्य बहुत ही प्रशंसनीय है और उन्होंने एजोथ और केम्रिक नामके २ तत्वोंका नाद प्रवाहित किया।

चीनमेंसे ग्रीककी और बी० सी० ३३२ में एलिग जेंड्रियाने रसशास्त्रको स्वयंकी भाषामें व्यवस्थित किया। और दी बुक आफ एलाफिसिका नामका ग्रन्थ लिखा उनमें नामके तत्वको प्रसारित किया और ड्रेगोन नाम से रहस्यमय काव्य लिखा।

इस्लामिक रस विदों द्वारा यह ज्ञान यूरोपमें गया। ईस्वी सन् ११४७ में आल्बर्टथोमस ने रहस्य पहचाना। सन् १२१४ में रोजरबेकने और उससमयके बाद १४४३ तक यूरोपीय रस शास्त्र जिसके कथन वास्तविकताको बड़ा प्रमाणिक मानते है। वह पेरसेलसस हुआ। उसने रस विद्याके विषयमें बहुत ही लिखा। १२३० ई. में न्यूपर्ल आफ ग्रेट प्राइज लिखा गया।

राइमंड ल्यूली एप्रीपा आदि विद्वान् रसायनाचार्यों ने रहस्यका अनुभव किया है।

मरक्यूरर्स, वल्कन, फिलोसोफर स्टोन इत्यादि नाम दिये गये।

इस प्रकार हमने सर्वदेशीय रस विद्याका ऐतिहासिक वृत्तान्त जाना है।

कल अपने वृद्धश्रीओं ने पारदके अष्ट संस्कारोंपर सविस्तृत वर्णन किया था। आज उसके बादके जो संस्कार बाकी रहते हैं उनके बारेमें मैं कुछ अधिक प्रस्तुत करूंगा। पारदके नियमन संस्कारके बाद बुभुक्षित संस्कार करना पड़ता है।

देह सिद्धि और स्वर्ण के लिये बुभुक्षित, रंजन, क्रामण, गर्भद्रुति और वेधन संस्कारको जानना आवश्यक है।

बुभुक्षित संस्कारसे पारदकी जठराग्नि प्रदीप्त होती है और वह ग्रासलोलुप हो जाता है। जो इतर धातुका ग्रास जीर्ण कर सकता है। उसे बुभुक्षित कहा जाता है। बुभुक्षित क्रियाके बाद सारण क्रिया होती है। सारणक्रियामें बीजदानका प्रसंग आवश्यक है, उससे रंजन क्रिया प्रकट होती है —

सुवर्णकृष्ट्या कृतं बीजं रसस्य परिरञ्जनम्।

रञ्जन क्रियाके बाद क्रामण क्रिया होती है, क्रामण क्रियामें पारदके अणुओंका श्रेष्ठ प्रकारसे रुपान्तर होता है और साथ साथ (प्रसार गर्भद्रुति) हो जाती है। फिर जो आकृति और रूप प्रत्यक्ष होता है उसको वेध क्रिया कहा जाता है।

इसी वेध क्रियाके रहस्यसे प्रकृतिकी श्रेष्ठ सर्जन क्रिया का दर्शन होता है।

वेधको शास्त्रमें शतवेध, स्पर्शवेध, क्षेप वेध, लेप वेध, धूम वेध तथा कुंत वेध आदि प्रदर्शित किया है।

॥ इति ओंशम् ॥

लेखक—पं० ज्ञानस्वरूपजी वैद्यवाचस्पति (जगराओं)
प्राध्यापक—रस विषय, आयुर्वेद विद्यापीठ महाविद्यालय रोहतकरोड देहली

वैद्य समाजमें आजकल एक यह धारणा बहुत प्रचलित है कि 'केवल दीपनान्त अष्ट संस्कारित पारदसे औषध निर्माण करनी चाहिये। यह एक भ्रान्ति है, अथवा तथ्य ?

इसके निर्णयार्थ प्रथम सर्व मान्य ग्रन्थ 'रसार्णव संहिता, का ही पाठ आपकी सेवामें उपस्थित करता हूँ।

पारदके नैसर्गिक दोष —"मलशिखिविषाभिधान रसस्य नैसर्गिका स्त्रयो दोषा:"।

यौगिक दोष—"नाग बंगौ द्वौ"।

औपाधिक दोष :—पर्पटी पाटनी भेदी द्रावी मलकरी तथा। अंधकारी तथा ध्वांची विज्ञेया: सप्तकञ्चुका:।

ये १२ दोष हैं। भूमिज वारिजादि इन्हींमें अन्तर्भावित हो जाते हैं।

इन दोषोंको दूर करनेके लिये प्रथम रसार्णव संहिता देखिये।

> धूमसारगुडऽयोपरजनीसितसर्षपैः।
> इष्टिकाकाञ्जिकोर्णाभिः त्रिदिनं मर्दयेत्ततः॥
> दशम पटल ४६ वे श्लो० से लेकर।
> ताम्रेण पिष्टिकां कृत्वा पातयेदूर्ध्वपातने।
> वंगनागौ परित्यज्य शुद्धो भवति सूतकः॥५५॥

रसार्णव ने इन दस (१०) श्लोको में एक एक दोष का नाम लेकर पारदको पूर्ण शुद्धकर दिया है।

अब यदि आगे जारणा कर्म करना है तो प्रथम पारदको दीपित करना आवश्यक है।

और दीपन कर्मसे प्रथम बोधन और नियामन दो कर्म विशेष शुद्धिके नाम से किये जाते हैं।

> मृत्युत्यम्बुज निरोधेन लब्धापायो भवेद्रसः।
> कर्कोटीकञ्चुकी बिंबीसर्पाक्षी-अंबुज संयुतम्॥५७॥
> रसं नियामके दद्यात् तेजस्वी निर्मलो भवेत्।
> एवं विशोधितः सूतो भद्रे अष्टांशविशोषित॥५८॥

प्रथमके पांच कर्मोंके लिये शुद्धः पाठ कहकर और आगे के दो कर्म बोधन तथा नियामनके लिये विशोधितः पाठ लिखा है। अर्थात् सामान्य शुद्धि और विशेष शुद्धि यह दो शुद्धियां कही हैं। इससे आगे

> स्वेदनाद्दीपितो देवि ! ग्रासार्थी जायते रस.॥५९॥

इस विधानसे रसग्रासका पाचक बन जाता है। खाने की इच्छा हो जाती है।

वस्तुः याचक होना गुणका प्रादुर्भाव है। शोधन नहीं है। यहां यह माना लें कि पारदमें गुण तो पहिले ही विद्यमान हैं। हमारे कर्म अर्थात संस्कार केवल मात्र निमित्त कारण हैं। आवरण दूर कर देनेसे अमुक गुणका रूप दिखाई दे देता है। आवरण दूर करना एक प्रकारका शोधन होता है। अतः दीपन कर्म भी विशेष शुद्धिमें गिन लिया जाये तो कोई आपत्ति नहीं है।

सम्भव है इसी भावसे पटलका नाम शोधनो नाम दशमः पटलः कह दिया हो।

व्योमसत्त्वादि वीजानि रसजारणशोधने।
तन्ममाचक्ष्व देवेशि! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ६०॥

इस अन्तिम श्लोकके दूसरे चरणका पाठ है। 'रसजारण शोधने' शोधने इस द्वितीयान्त पदका अर्थ सामान्य और विशेष दोनो प्रकारके शोधन। दूसरा है जारण, शब्द पारदके शोधन कालमें जारण शब्द लिखनेका अभिप्राय है "अवस्था विशेष" अर्थात् किस समय दोनो संशोधन करने हैं, इस आकांक्षा की पूर्ति के लिये जारणा शब्द लिखना पड़ा।

इस (जारणा) शब्दसे यह स्पष्ट है कि पारद निमित्त जब जारणा कर्म करना हो तो दोनों प्रकारके शोधन (सामान्य शोधन और विशेष शोधन) कर्म करने चाहिये अर्थात् रसनिमित्त जारणा कर्मसे प्रथम पारदका दोनों प्रकारका शोधन आवश्यक है।

यदि संहिताकारकी यह इच्छा या मत होता कि सभी अवस्थाओमें दोनों शुद्धियाँ करनी चाहिये। तब 'रसशोधने' इतना ही लिखना पर्याप्त था। यहां जारण शब्द लिखनेकी आवश्यकता नहीं थी। अध्याय पटलादिका नाम करण कुछ दृष्टिकोणोंसे किया जाता है। सो एक दृष्टिकोण तो कह दिया है। दूसरा दृष्टिकोण पढ़ियेगा:—

रस विषयक संहिताकारोंका लक्ष्य केवल मात्र एक लक्ष्य "शरीर वेध" है। अत. जिन कर्मोंका (संस्कारोका) संबन्ध पारदके केवल शरीरके साथ है। दोष दूर करना, आवरण दूर करना, एव गुणोका प्रादुर्भाव करना, यह सव कार्य पहिले ही आठ दीपनान्त कर्मोंके है। अत. इन्हें एक ही पटलमें वर्णित कर दिया है। उनके आगे पांच जारणान्त और वेधाधिक्य करनेके लिये जारणाका पुनरावर्तन सारणा, यह छः संस्कार पारदके भोजनके साथ विशेष सम्बन्ध रखते हैं। रंजन, क्रामण, वेध, और भक्षण इन चारोंका सम्बन्ध उस पारदसे है, जो अपने भोजनको आत्मसात कर चुका है। इसी भावसे गोरक्ष संहितामें भी "शुद्धिर्नाम पटलस्तृतीयः" कहा है।

अत: पहिले शरीरसे सम्बन्धित आठ कर्म दशम- एक पटलमें ही कह दिये है।

इस संहिता कालके पश्चात् कुछेकने तो संहिताओ का ही लक्ष्य अपनाया। किन्तु आगे चल कर कुछ संग्रहकारोने देखा कि ये सब कर्म बहुत कठिनाईमें होते हैं। तब लाघवताके विचारसे "शोधनो नाम दशमः पटल." पढकर देखा कि इस शोधनो नाम पटलमें दीपनान्त कर्मोंका ही वर्णन है। इस कारण दीपनांत संस्कार करके पारदको सामान्य औषध निर्माणार्थ प्रयुक्त कर लेना चाहिये, यह भ्रान्त धारणा निश्चत कर ली गई।

मुझे संग्रहकारोंके पाण्डित्यमें किञ्चिन्मात्र भी सदेह नहीं है। प्रतीत होता है—समयानुसार परिस्थितियोंको देखते हुये उन्होने ऐसे विचार प्रकटतः कह दिये हों। जिन विचारोंको गुरुजन सुलझाकर समझा दिया करते थे।

समयका प्रभाव गुरुजनोंकी अप्राप्ति और हमारी लाघवता ने जारणाको भी जलाना समझ कर, समगुणबलि ज्वालित से बढते बढते षोडश गुण बलिज्वालित रस सिन्दूर बना बना कर ढेर लगा दिये। और नाम रख दिया इतने गुण बलिजारित रससिन्दूर अथवा चन्द्रोदय इत्यादि।

तथ्य यह है कि औषध निर्माणके लिये जो पारद का शोधन करना है। उसके लिये रसहृदयतन्त्रकारने पातनान्त जो प्रथम पांचकर्म (संस्कार) कहे है। वे ही पर्याप्त हैं। जो रसार्णव एव दूसरी संहिताओंके भी अनुकूल है।

वस्तुत यह पारदका पञ्चकर्म है। कदर्थित भावमे यदि शोधन भी कर लिया जाये तो कोई हानि नहीं है। लाभ भले ही किञ्चिन्मात्र हो। नियामन दीपन कर्मसे प्रथम ही आवश्यक है, सामान्य शोधनसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

अब यहां यह कहा जा सकता है कि पांच कर्मके आगे बोधन नियामन और दीपन कर्म भी विशेष शुद्धि के विचारसे कर लिये जायें तो क्या हानि है। अधिक स्य अधिकं फलं, जहां पहिले पञ्चकर्म पर बहुत समय लगा लिया है उसकी अपेक्षा इन ३ कर्मों पर तो इतना समय नहीं लगेगा। और पण्ढभाव भी दूर होनेके साथ साथ पटलका नाम शोधन यह भी सार्थक हो जायेगा। अतः दीपन तक छलांग अवश्य लगा ही लेनी चाहिये।

बन्धुओं! किसी कार्यकी सिद्धिके लिये जो क्रियायें की जाती हैं वे तीन प्रकारकी होती हैं। अनुकूल, प्रतिकूल, एवं उदासीन।

अनुकूल क्रियासे कार्य ठीक बनता है और उदासीन क्रियासे कार्यका न लाभ होता है और न हानि होती है। किन्तु इस क्रियासे समय और धनका व्यय व्यर्थका हो जाता है और प्रतिकूल क्रिया से कार्य बिगड़ जाता है।

जब ग्रास करवाना नहीं जानते, अथवा करवाने की इच्छा नहीं है। उस अवस्थामें यह दीपन कर्म प्रतिकूल क्रिया है।

ध्यान रहे जहां अनुकूल क्रियासे एक लाभ होता है और उदासीन क्रियामें केवल समय धनकी हानि होती है। वहां प्रतिकूल क्रियासे दो बड़ी हानियां उठानी पड़ती है।

प्रथम हानि कार्यका न बनना,
दूसरी हानि कार्य का बिगड़ना।

और समय धनका चढावा किसी गणनामें नहीं।

आजकलकी प्रथा किसीसे भूली हुयी नहीं है कि दीपनान्त शोधन करनेके पश्चात् रस जब ग्रासका पाचक बन जाता है। उस समय इस भूखेको सुवर्ण मिला, पिष्टी बनाकर, गन्धकके साथ मसृण कज्जली करके, प्रेमसे कपरोटीकी हुई शीशीमें इस कज्जलीको डालकर २-३-४ दिनके लिये बालु यन्त्रमें रखकर आग पर चढा देते है। परिणाम भी सब जानते हैं कि गन्धक जल जल कर उड जाता है और अन्तर्धूम विधिमें लंबी गरदन वाली शीशीके गलेमें इकट्ठा हो जाता है। और यह बेचारा जितना स्थान मिला गलेमें शेष शीशीकी छतके नीचे सिन्दूरके रूपमें उड कर जम जाता है।

और क्या होता है—जठर में गया हुआ नहीं, पेट के साथ बन्धा हुआ इसका भोजन (सुवर्ण) इससे पृथक् होकर शीशीके तल पर ही पड़ा रहता है। और यह बेचारा मुंह ताकता ही रह जाता है।

कल्पना कीजियेगा :—जिस प्रकार इसमें हमने जठरका प्रादुर्भाव किया है। इस प्रकार किसी संस्कार से यदि वाणी उत्पन्न कर लेते और उस समय इसके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता तब यह अवश्य न्यायके लिये चिल्लाता।

और यदि किसी संस्कारसे इसके हाथ भी बन गये होते। तब हमें पूर्णतया समझानेके लिये इसका हलका-सा हाथ ठीक गुरुका काम कर जाता।

अब हस्त पाद वाणी विहीन बेचारेके साथ चाहे कितना भी कठोर व्यवहार कर लें, इसने तो चू तक नहीं करनी।

ध्यान रहे यह सदा प्रभु चैतन्य है। और सृष्टिका नियन्ता है। इसे हम भली प्रकार नहीं समझ सके। इसी कारण "जरा व्याधि विनाशनं रसायनम्" की सिद्धि तो दूर है। सामान्य मृत्युञ्जय रसादिकोंसे भी कथित लाभ नहीं उठा रहे है।

ऐसी अवस्था में आवश्यक है शास्त्रको पूर्णतया समझनेके लिये हम पर्याप्त समय निकाले। स्थिर बुद्धि से काम लें।

हमारा समाज जो आपसके झगड़ोंमें व्यस्त है। वह अपना वैमनस्य भूलकर प्रेमसे एवं परस्पर सहयोग

की भावनासे इस महाप्रभुके चरणोंमें अपने आपको अर्पित करदे।

तब यह सिद्धान्ततः निश्चित है कि संसारकी कोई भी पैथी उसके आगे सिर ऊचा नहीं कर सकती।

किन्तु यह तब होगा जब हम अपने आपको भूल कर रात दिन इसीके विचारोंमें तल्लीन हो जायेंगे। तल्लीनतासे सिद्धि निश्चित है। अस्तु प्रकरण है पहिली हानिका —

सुवर्ण शीशीके तलपर ही पड़ा रहता है। वह इस कारण रह जाता है कि जो उपति सानादि जारणा कर्म कज्जली बनानेसे प्रथम करने चाहिये थे। वे नहीं किये। और भोजन (सुवर्ण) शरीरके साथ बान्ध कर (बिना नामका यह अनोखा संस्कार) कार्य आरम्भ कर दिया।

तब क्या हुआ जो करना था वह कर नहीं सके उसके अभावमें भी दीपनान्त कर्म अवश्य करना चाहिये इस चक्करमें आ गये। और दो चार आठ सोलह गुणा गन्धक जला जलाकर "अब योग बहुत उत्तम बन गया है" इस मिथ्या हरियालीमें फस गये।

बन्धुओं! इस प्रकार यदि हजार गुणा गन्धक भी जलादे तो क्या "जराव्याधि विनाशन रसायनम्" बन जायेगी।

कदापि नहीं। किन्तु इतना अवश्य हो जायेगा कि "निरस्त पादपे देशे एरण्डोऽपिद्रुमायते" जहां कहीं वडा पेड न हो, वहां ऐरण्ड ही प्रधान होता है। यह है आगे कार्यका न बनना।

अब दूसरी हानि देखिये:—"पिछले वनेमे हानि" शास्त्रने आठ विक्रियाये कही हैं।

शीतत्वान्मर्दनाभावाल्लोहाशुद्धस्य जारणात्
विड् प्रभूतदानात् वा भुक्ते जीर्णादजीर्णगः।
अत्यग्नितो निराहारात् क्रामणा रहितस्य च।
इत्येता विक्रिया ज्ञेया अष्टभि. पण्ढतां व्रजेत्॥

इनसे भी पारदमें पण्ढता दोष आ जाना है। ध्यान रहे—पारदके जितने भी संस्कार हैं सबमें इन विक्रियाओंका ध्यान विशेष रूपसे रखना परमावश्यक है। यह पारद कर्मोंका एक मूल गुर है।

इनमें सातवीं विक्रिया है "निराहारात्" दीपन करके यदि पारदको किसी की जारणा नहीं करवा सकते तो "निराहारात्के कारण क्रिया विकृत हो जावेगी, विक्रिया से पण्ढता आ जाती है। यह शास्त्रका आदेश है।

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि—यदि हमने दीपन कर्मके पश्चात ग्रास जीर्ण न करवा कर पण्ढता उत्पन्न कर लेनी है। तो पातनाके पश्चात बोधन से पण्ढता दूर करनेसे क्या लाभ?

इन सब विचारोंसे स्पष्ट हो जाता है कि जब जारणा नहीं करनी और पारद औषधियोंमें प्रयुक्त करना है। तब शोधनार्थ पातनान्त कर्म ही करने चाहिये। दीपनान्त अष्ट सस्कारित पारदसे औषध योग बनाना एक भ्रान्ति है। समय और धनको खोकर एक दोष मोल ले लेना है।

जो इस मार्गको समझते हैं उन रसायनाचार्योंकी सेवामें प्रार्थना है कि मैंने जो विचार आपकी सेवामें रक्खे हैं। कृपा पूर्वक इन्हें सोचियेगा। यदि ठीक जंचते हों तो आपका भी कर्तव्य हो जाता है इस मिथ्या धारणाके निराकरण का उपाय करें। शम्॥

(यह लेख बड़ा मौलिक है, वास्तविकताका दिग्दर्शन कराता है, पाठक अवश्य लाभ उठायेंगे। प्र० सम्पादक)

अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसंधान सम्मेलन

कालेड़ा–कृष्णगोपाल के दृश्य का

विहंगावलोकन

(लेखक—मास्टर नन्दकिशोर शर्मा बोगला)

दिनांक २७-३-५९ को प्रातः पावन रमणीय शुभ वेलामें समादरणीय श्रद्धेय स्वामी श्री कृष्णानन्दजीके तत्त्वावधानमें आयोजित अभूतपूर्व सम्मेलनकी झांकी देखने हेतुमें भी कालेड़ा ग्राम प्रातः ७ बजे पहुँचा और तीन दिन तक वहीं रहा।

मनोरम दृश्य व सुन्दर सजावट देखते ही बनती थी। बड़ा ही आश्चर्य होता था कि इस छोटेसे गांव में इतना भव्य आयोजन करनेमें कितना परिश्रम, तथा धन व्यय हुआ होगा? जब कि यह ग्राम रेल्वे लाइन से ५०-६० मील दूर एक तरफ कौनेमें स्थित है। वैसे तो यहांका औषधालय, आतुरालय, पारद अनुसंधान रसायन शाला, रसशाला मुद्रणालय, पैकिंग विभाग प्रधान कार्यालय आदिके भवन दर्शनीय सदा सुसज्जित ही रहते हैं। किन्तु इस अवसरपर बनाये गये पंडाल, प्रदर्शिनीके दो विशाल भवन अलग-अलग प्रान्तानुसार प्रतिनिधि आवासगृहकी व्यवस्था तो लाजवाब थी।

लगभग २ माइलके घेरेमें रंग बिरंगी झंडियां, उत्तम ढङ्गसे बनाये हुए ७ प्रवेश द्वार, रंग बिरंगी चमकीली सड़कें, २ प्रकारके भोजनालय, स्नानादि-क्रियार्थ जलके नलोंका प्रबन्ध, शीतल हिमजलकुटीर नाटकगृह, चित्रपटयान, (सिनेमावान) प्रच्छायग्रह आदि का बड़ा अच्छा इन्तजाम किया गया था। डाक तार की पूर्ण सुविधा थी। मैं स्वयं कोई वैद्य नहीं हूँ, न पारेके बारेमें कुछ जानकारी ही रखता हूँ। अतः मैं तो इस सम्मेलनमें एक दर्शक ही था। हजारों लाखों ही नहीं; किन्तु करोड़ों भारतीय जनताके स्वास्थ्य एवं जीवनकी रक्षाके उत्तरदायित्वको संभालनेमें समर्थ, भारतके कौने कौनेसे पधारने वाले भारतीय आयुर्वेदीय चिकित्सकोंके दर्शनार्थ अथवा यों कहिये कि समूहरूपमें विद्यमान भगवान धन्वन्तरिके दर्शनकी अभिलाषा रखे, उनके वचनामृतोंका प्यासा मैं भी सैंकड़ों दर्शकोंकी भांति एक दर्शकके रूपमें यहां उपस्थित हुआ था। यहां था भूतपूर्व राजाओं, वर्तमान शासकों तथा भारतके प्रमुख वैद्यराजों रूप त्रिवेणीका सुमनोहर संगम। और उस त्रिवेणीके संगममें समागत भक्तिभावावेशित भक्त जनताका जमघट।

सम्मान्य अतिथियोंके निवास एवं शयन आदि के लिये प्रान्तोंके क्रमसे, विशाल काय तंबू, शामियाने व छोलदारियां पंक्ति बद्ध खड़ीकी गई थीं। रात्रिको प्रकाशकी सुविधाके लिये प्रत्येक शामियानेमें बिजली लगी थी। प्रति आवास स्थानमें शीतल जलकी सुविधा, शौचस्नानादिके लिये बहुतसे जलयुक्त स्नानागार व्यवस्थित थे। समयानुकूल भोजन, दूध, चाय का इसी संस्थाकी ओरसे निःशुल्क प्रबन्ध था जबकि अन्य सार्वजनिक सभाओं एवं सम्मेलनोंमें प्रत्येक प्रतिनिधिको भोजनादिके लिये निश्चित भारी शुल्क देना होता है अथवा प्रतिनिधि शुल्क या सदस्यता शुल्ककी आड़ लेकर धनराशि एकत्रकी जाती है।

यहां तो थे सुदामाके तंदुल, शबरीके बेर और विदुरकी शाक जिनको श्रद्धारूप प्रियभक्तने अपने आराध्य वैद्य भगवान्के लिये सादर सप्रेम समर्पित किये थे। जैसाकि आगन्तुकों एवं जनताका खयाल था और बहुतसोंको शक भी था कि यह संस्था यहां बड़े बड़े राजाओं देशके शासक नेताओं और गणमान्य धनिकोंको बुलाकर इस सम्मेलनके बहाने पैसा एक-

त्रित करेगी। किन्तु बात निकली बिल्कुल इससे विपरीत जिसकोकि संस्थाने पहले ही अपनी घोषणामें सूचित किया था, कि हम इस सम्मेलनसे न तो शासन से और न धनिको वैद्यो तथा जनतासे किसी प्रकार की आर्थिक सहायता मांगेगे और न किसी प्रकारका शुल्क ही लिया जायगा। प्रत्युत समागन्तुक मान्य अतिथि, वैद्यवर तथा दर्शनार्थी जनता यहां कुछ न कुछ लेकर ही गई और वह भी निशुल्क लेकर। सभी लोग क्या क्या लेकर गये—(१) रसेश्वरके भक्त वैद्यगण रसराज पारदके अनेक अनुभूत रस प्रयोगोका रसास्वादन करके गये। (२) मान्य अतिथि व शासकवर्ग भारतीय रसेश्वर विज्ञानके लिये कुछ ठोस कार्य करनेका संकल्प व प्रेरणारस लेकर तथा (३) सामान्य जनता व दर्शक सद्भावना रस लेकर गये।

सृष्टिके प्रारम्भसे ही कश्यपात्मजोंके रूपमे द्विधा मतवाले २ गुट रहते आये है। आत्मगौरवाभिलाषी स्वेच्छाचारी, प्रभुतालोलुप, असुर प्रवृत्तिवर्ग कर्तव्यपरायण, श्रद्धालु सदाचारी एव सीधे देवगणोंको मानसिक व शारीरिक क्लेश पहुँचाते रहे है। प्रत्येक मांगलिक कार्यमें विघ्न बाधा पैदा करने वालोंकी उपस्थिति हो ही जाती है। यहां भी किसी रूपमें यह प्रसग सम्मेलनके कुछ समय पूर्वसे उपस्थित होने लग गया था। सम्मेलनमें किस प्रकार विघ्न बाधायें उत्पन्नकी जा सकती हो, कैसे थोड़ीसे थोड़ी उपस्थिति होकर असफलता प्राप्त हो तथा आगतुकोंके सामने हम किस प्रकार सामने आसके इन विचारो वाले महानुभावोकी यहां भी उपस्थिति हो ही गई किन्तु किस कार्य दक्षता, विनम्रता तथा कुशल व्यवहारसे इस संस्थाके उच्चाधिकारियोंने सबकी बात रखदी, कड़वा घूट उतार गये यह माननीय एवं अनुकरणीय है, उन समागतोंने कील-कांटे चुभोये, लेकिन शांत तपस्वीने सहन कर लिये और वे ही लोग पछताये तथा फिर मधुर व निकटतम प्रेमी बन गये। उनको भी संस्थाने स्थान दिया सन्मान किया। "दुर्जन नियरे राखिये आंगन कुटि छनाय" इस कहावतको चरितार्थ किया। धन्य है स्वामीजीको, उच्चाधिकारियोंको तथा छोटेबड़े कार्यकर्ताओंको, जिन्होंने क्षमाभावसे सबको राहा कर्तव्य व स्वाभाविक धर्ममर्यादाको नहीं त्यागा शोक, चिन्ता, क्रोधकी तरंगको न आने दिया। तथा समरस, एकरस बने रहे।

मैंने अखिल भारतीय-प्रान्तीय भिन्न भिन्न प्रकार के सम्मेलनोकी झांकियां भी देखी हैं; किन्तु वहां सदा क्या देखता था- पद प्राप्तिके लिये संघर्ष, बाह्याडम्बर, प्रदर्शन अधिक कार्यक्रम, झूठे सच्चे अनेक प्रस्तावोका पारित होना, अपनी व.क्तृपटुता व भाषणकलाका परिचय देना आदि किन्तु यहा ? यहाँ तो क्षमावचनके धनी पूज्य स्वामीजी के इङ्गितोंसे सब कार्य सम्पादन होते थे. उपर्युक्त आडम्बरोंको कोई स्थान नहीं मिला उन विचारे आडम्बरोंको तड़पते ही रहना पड़ा।

लम्बी-चौड़ी वक्तृताके स्थानपर प्रत्यक्ष क्रियात्मक ज्ञान व प्रयोग रसायनशालामें सब वैद्योंके सम्मुख रसायनाचार्य वैद्यराज शांतिलालजी जोशीने बताया, जिसमें पारदका अभ्रकजारण, आठों संस्कारका प्रत्यक्ष दर्शन और स्वर्णग्रासादि प्रमुख थे। जोकि मेरे लिये तो बिल्कुल नये ही थे।

त्रिगर्भाकुटीर तथा सप्तगर्भाकुटीरके प्रत्यक्ष नमूने देखकर बहुतसे वैद्योको तथा दर्शकोंको अपूर्व आश्चर्यचकित होना पड़ा। सप्तगर्भाकुटीरके नमूनेको देखकर तो राजस्थानके बड़े नामांकित राजवैद्यजीको यह कहना ही पड़ा कि क्या सप्तगर्भाकुटीर भी होती है ? हमने तो शास्त्रमें कहीं पढ़ा ही नहीं। रसक्रिया धातुवाद सम्बन्धी चित्रोंकी कथानक रूपमें क्रमबद्ध श्रेणी तो बड़ी ही आकर्षक व मनमोहक थी जिससे भारतीय प्राचीन रसविज्ञान व स्वर्णरौप्य क्रियाका प्रत्यक्ष परिचय मिलता था। त्रिविध पातन यन्त्र, भूधरयन्त्र गौरीयन्त्र, हसपाक आदि यन्त्रों तथा सर्वार्थकरी भाण्ड्रीके प्रत्यक्ष नमूने रखे थे। पारद व धातुवादके सहायक लगभग ४०० सिद्धप्रयोग, सिद्ध औषधियोंके १००० नमूने, यहांसे प्रकाशित पुस्तकोंके २५ ग्रन्थ

(शेष पृष्ठ ५४० पर देखें)

पारद सम्बन्धी मेरे अनुभव

लेखक—हकीम अब्दुल हफीज "हकीमे हाजिक"

वर्तमान युगमें पारद संबन्धी खोज बीनमें भारतका हर वैद्य और हकीम लगा हुआ है। इसमें किसी हद तक कोई खुशनसीबको कुछ सफलता प्राप्त हुई हो। लेकिन इतना होते हुए भी इसकी तह तक सिवाए फकीर, साधु, सन्यासीके दूसरा कोई व्यक्ति आज तक नहीं पहुँच पाया है। पारद योगसे निर्मित रस, रसायन निर्माण कार्य कठिनाइयोंके कारण या समयाभावसे पूर्ण नहीं हो पाते। मैंने अपने अनुभवमें स्पेन या जर्मनीके पारेको ही उत्तम पाया है।

पारेको एत दाल पर लानेके लिए उसकी रतूवत को कम करना जरूरी है। रतूवत कम होने पर इसके स्वभावमें भूखापन आ जाता है। पारा बुभुक्षित होने पर ही अगले कार्यके लिए कदम बढ़ाना सफलता की कुञ्जी है।

बुभुक्षित पारदको उन बूटियोंके स्वरसकी भावना दी जाएं जिनका स्वभाव खुश्क या जहरीला हो वह पारदको अग्नि स्थाई अर्थात् कायमुल्नार करनेमें मददगार होती हैं।

अग्नि स्थाई पारद एक प्रयोग—पारद १० तोला नमक सैंधा १० तोला दोनोंको एक पहर चीनी या पत्थरकी खरलमें मर्दन करें। पावडर हो जानेपर डमरू यंत्रकी क्रिया द्वारा पुष्प प्राप्त करलें। पुष्पके समभाग कसीस जर्द मिला पुनः मर्दन करें। फिर डमरु यंत्रमें रख जोहर उड़ावे इस दूसरी क्रियामें कच्चा पारा जोहर अर्थात् पुष्प रूपमें उड़ता रहता है और कुछ पारा तहनशीन (तलस्थ) होता जाता है। बारंबार कच्चे पारदको समभाग कसीस मिला उपरोक्त विधि द्वारा उड़ाते रहें, अंतमें सम्पूर्ण पारद तहनशीन (तलस्थ) हो जाएगा। इसीको अग्नि स्थाई या कायमुल्नार कहते हैं।

यदि इस रक्त वर्ण पारदको शाहतरा, कसौंदी, जलनीम या अमर बैलके रसकी भावना देकर आतशी शीशीमें डाल बालूयंत्रके ढग पर इन्हीं बूंटियोंका चोया दे अग्नि दी जाए तो इस क्रियाके द्वारा जो पारद प्राप्त होगा वह वैद्य समाज तथा रसायन क्रिया शास्त्रियों सीज रसायनाचार्यों की मनभाती वस्तु होगी। सच है जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पेठ।

पारद गुटिका एक प्रयोग—शुद्ध हिंगुलोत्थ पारद हस्ब जरुरत ले मिर्चाकन्द, सूरनकन्द, तथा किंकोड़ेके स्वरस की आठ दिवस भावना दें पश्चात् डमरूयंत्रमें उड़ा लिया जावे। यह पारद अर्ध अग्नि स्थाई या नीमकायमुन्नार होता है। इसको केलेके मूलमें वदकर पांच सेर कण्डोंकी अग्नि दें। ध्यान रहे अग्निकी विशेषता पर पारद भस्म प्राप्त होगी और कमी पर गुटिका। किसी प्रकार हताश होनेकी आवश्यकता नहीं। भस्म को फेंके नहीं निम्नांकित रोगोंमें सफलताके साथ प्रयोग करें और पुनः गुटिका निर्माणका प्रयत्न करें।

भस्मको खराबी खून, ताकत तथा जवानी कायम रखनेके लिए एक खस १ तोला मक्खन, मलाईसे सेवन करें।

पारद गुटिका द्वितीय प्रयोग:—रौप्य (चांदी) भस्म जो बिछनागके द्वारा बनाई गई हो १ तोला लें। इस भस्मको रतूवत दूर किए हुए १२ तोला पारदके साथ मर्दन करे गाढा हो जाने पर इच्छानुसार गुटिकाओका निर्माण करलें। यदि इस प्रयोग द्वारा कोई सज्जन गुटिकाका निर्माण करे और बुद्धिमानीसे कामलें तो यह अक्सीर अजीब है।

उपरोक्त जितने प्रयोग पारद विशेषांकके लिए भेजे जा रहे हैं इनकी सत्यताका मैं पूर्ण रूपेण जिम्मेदार हूँ। रसायन क्रिया विशेषज्ञ यदि इन प्रयोगोंका अनुभव करेंगे तो उनको विदित हो जाएगा कि ग्रामीण क्षेत्रमें भी गुदड़ीके लाल हैं।

मेरी भांति यदि कालेड़ेसे निकलने वाले 'स्वास्थ्य' नामक मासिक पत्रमें कोई सज्जन अनुभव प्रकाशित करनेका साहस करेंगे तो मैं भी अजीब अजीब सीने के राज वैद्यसमाजके सामने रखनेकी कोशिश करूंगा।

— विहंगावलोकन —

(पृष्ठ ५३८ का शेष)

ताजा जड़ी-बूंटियोंके ५०० सकोरे, सूखी औषधियो के ६०० प्रकार, भारतके गणमान्य प्राचीन रससिद्धो वैद्यो, आचार्योंके पचासो चित्र देखदेखकर भूरि-भूरि प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता।

तथैव यहांपर २ विशेषताये और भी थीं १–दन्तयज्ञ २–कष्टसाध्य रोगियोंकी परिचर्या।

१. दंतयज्ञमें—एक विशेष स्थानपर दांतदर्दोंके दुखी, हिलते व मजबूत किन्तु कीट भक्षित या दंतपूय रोगियोंके दांतोको बिना वेदनाके सरलतासे निकाला जा रहा था लगभग १२०० रोगियोंने इससे लाभ लिया। जिसका संचालन बम्बईके सुप्रसिद्ध डाक्टर लालभाई भट्ट बडे उत्साह व निर्भयता, निरभिमानिता से जनता जनार्दनकी सेवा द्वारा कर रहे थे। इस आयोजनकी सूचना सम्मेलनके समय ही जनसाधारण में प्रसारित करदी गई थी।

२. कष्टसाध्य रुग्णपरिचर्या—इस शुभ कार्यके लिये भी जनसाधारणमें यह प्रचारित करदिया गया था कि कष्टसाध्य व जीर्णरोगसे दुखी व्यक्ति भी इस अवसरपर अवश्य पधारें, जबकि यहां भारतके अनेक प्रान्तोंसे बहुतसे अनुभवी प्रसिद्ध वैद्यराज पधारेंगे। इस सूचनासे कई जीर्णरोग ग्रस्त कष्टसाध्य रोगी यहांके आतुरालयमें निदान व चिकित्सा हेतु आये। जिनको अनेक अनुभवी वैद्योंने देखा निदान किया व चिकित्सा परामर्श दिया। इस कार्यका संचालन यहांके प्रधान वैद्य बद्रीनारायणजी शास्त्री द्वारा किया जारहा था।

१. पूछताछ कार्यालयसे मुझे मालूम हुआ कि सम्मेलनमें लगभग ४०० से अधिक वैद्य उपस्थित हुये थे जिनमें २४३ वैद्योंने पूछताछ कार्यालयमें नाम दर्ज कराये थे।

२. राजस्थानके राजकीय औषधालयोंके १५ वैद्य तथा अन्य स्वतन्त्र व्यवसायी राजस्थानी वैद्य लगभग १२८ थे। शेष सौराष्ट्र, बम्बई, गुजरात, यू० पी० पंजाब, शिमला पहाड़, बरार आदि स्थानोंसे आये थे।

३. सम्मेलनकी सभी प्रकारकी व्यवस्था व अतिथि सत्कारके लिये संस्थाके १४० कर्मचारी सतर्कता व विनम्रतासे सेवाकार्य कर रहे थे।

४. समय समयपर भोजन (प्रत्येक समय अलग अलग प्रकारका) दूध चाय फलादिकोंका उत्तम प्रबन्ध था।

५. मैंने सुना है कि इस यज्ञमें घृत १२ मन, शक्कर १३ मन, गेहूँ ३० मन, वैसे ही चांवल दाल आदिकी अहुति लगी है।

इस सम्मेलनको न देखनेसे पूर्व मेरे दिल दिमाग में जो यह प्रश्न था कि इस छोटेसे गांवमें, थोड़े स्टाफ वाले, चन्द शिक्षित कर्मचारियोंकी संस्था द्वारा किया जाने वाला यह सम्मेलन सफल होभी जायगा या नहीं इतने बड़े आयोजनका व्ययभार अकिंचन महात्माजी की संस्था वहन करसो लेगी? कहीं यहांपर भी अन्य सम्मेलनोंकी भांति वाक्कुशल पहलवानोंका अखाड़ा तो नही जम जायेगा? आदि कई प्रश्न मेरे अनभिज्ञ मस्तिष्कमें चक्कर काट रहे थे। जब यह आयोजन देखा तो मैं बोला कि इससे अधिक सम्मेलनकी सफलता क्या हो सकती है। क्या मैं दिग्गज विद्वानों से आगे होने वाले सम्मेलनोंकी इसी प्रकारकी सफलताकी आशा करूं। जहां आडम्बर, भाषणचातुर्य, थोथे प्रस्ताव पास आदि न होकर ठोस क्रियात्मक रचनात्मक कार्य किये जाकर भारत देश, रोगीजनता के हितमें कुछ कर सकेंगे।

अन्तमें मै श्री ठाकुर साहब, श्री पूज्य स्वामीजी तथा उत्साही कुवर साहब तथा श्री चोसला ठाकुर साहब व-सावर दरबारको उनके परिश्रमकी सफलता हेतु धन्यवाद देकर मेरा लेख समाप्त करता हूँ।

सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्य मिदं जगत्

लेखक—नारायण स्वामी पारद अनुसंधान कार्यालय कनखल हरिद्वार

आयुर्वेद शास्त्रमें पारदकी अपार महिमाका वर्णन करते हुये भारतीय रसशास्त्रकारोंने उसकी ब्रह्माके साथ तुलना करते हुये भूमण्डलके अनेक द्रव्योंके साथ उसके निश्चयात्मक निर्णय किये हैं।

रसशास्त्रमें पारदके अठारह संस्कारोंका विधान है, प्रथम अष्ट संस्कारोंसे पारदका विशेष शोधन होता है तथा यह पारद औषध निर्माण के लिये उपयोगी होता है। खलवी या कूपीपक्व, रस, पर्पटी आदिमें अष्ट संस्कारित पारदका उपयोग किया जाना चाहिये। अन्तके दश संस्कारोंसे पारदमें देहसिद्धि तथा लोह-सिद्धिके गुण आते है। अनुपानसे दिया गया यह पारद परम रसायन तथा नाना महाव्याधियोंको हरने वाला होता है। राजयक्ष्मा, कुष्ठ, नपुंसकता, पक्षाघात, नेत्ररोग आदिमें विशेषरूपसे हितकर होता है और पशुओंके भी रोगोंको दूर करता है।

पारदकी अनेक प्रकारकी गोलियाँ बनानेका विधान भी रसशास्त्रमें किया गया है। जैसे खेचरी गुटिका। खेचरी गुटिका मुखमें धारण करनेसे मनुष्य अदृश्य होकर आकाशगामी हो सकता है। इस प्रकार के अनेक प्रयोग रसकामधेनु ग्रन्थमें दिये गये हैं।

देहसिद्धि तथा लोहसिद्धि करने वाले पारदके विषयको समझनेके लिये रुद्रयामलतन्त्र, आनन्दकन्द रसरत्नाकर, रसोपनिषद्, रसहृदयतन्त्र आदि ग्रन्थ देखने चाहिये। रसशास्त्रके इस समय प्रायः दो सौ ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

विधिवत् अष्टादश संस्कारसे सिद्ध पारद देहसिद्धि और लोहसिद्धि प्रदान करता है। इस श्रेष्ठ वस्तुका आविष्कार अभी तक नहीं हुआ है। इससे मनुष्यका दिव्य जीवन बनता है और इस प्रकारके पारदका सेवन करने वाले मनुष्यके मल मूत्रसे भी स्वर्णसिद्धि का विधान शास्त्रोंमें पाया जाता है।

निरंतर पारदका सेवन करने वाले मनुष्यका शरीर पारदमय होता है और मृत्युके बाद उसके शरीरके अवयवोंसे धातुयें सुवर्णमें रूपान्तरित होती है। पारद के अतिरिक्त गन्धक, हरताल, मनःशिला, शृंग भस्म आदि रसद्रव्योंसे भी अनेक महाव्याधियां नष्ट होती हैं और अग्निसिद्ध ये पदार्थ धातुओंको स्वर्ण या रजतमें रूपान्तरित करनेमें सहायक होते हैं।

रसशास्त्रमें विधान है कि प्रथम सिद्ध पारदका लोहपर परीक्षण करे। यदि पारद लोह सिद्धिमें समर्थ है तो देह सिद्धिमें अवश्य समर्थ होगा। दिव्य जीवन और दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये इसका सेवन करना चाहिये। रसेश्वर दर्शनमें लिखा है—

लोहबन्धस्त्वया देवि यद्दत्तं परमीशतः।
तं देहबन्धमाचक्ष्व येन स्यात्खेचरी गतिः॥
यथा लोहे तथा देहे कर्तव्यः सूतकः सता।
समानं कुरुते देवि प्रत्ययं देहलोहयोः॥
पूर्वं लोहे परीक्षेत पश्चाद्देहे प्रयोजयेत्॥

भारत लगभग १००० वर्ष तक पराधीन रहा। प्रथम यवनों द्वारा तथा बादमें अंग्रेजो द्वारा इस देश को सदियों तक गुलाम रखा गया। यवनोंने हमारे देशके अमूल्य साहित्यको जलाकर राख कर दिया तथा अंग्रेजोने अनेक पुस्तके यहांसे बाहर भेज दी और निरन्तर इसे पराधीन रखनेका प्रयत्न किया। परन्तु फिर भी उन्होने विद्याकी रक्षा की।

पारदको दिव्यौषधि योगसे, धातुभस्म, अभ्रक, सुवर्णमाक्षिकसत्व आदि द्रव्योंसे सिद्ध करके देहसिद्धि योग्य बनाया जाता है। इसे भूचरी जारणा कहते हैं। द्रुति और रत्नोंके जारणसे सिद्ध पारदसे खेचरी जारणा होती है। दोनों प्रकारका पारद रोगोंको नष्ट करके दिव्य जीवन बनाता है। खेचरी जारित पारद के योगसे शब्दवेध, पृथ्वीवेध, पर्वतवेध, सुवर्णवेध आदि होते हैं और इसकी गुटिका मुखमें रखनेसे मनुष्य अजर अमर होता है और आकाशगामी होता है।

इसके अतिरिक्त केवल धातुवाद अर्थात् पारदके योगसे स्वर्ण सिद्धि व रजत सिद्धिकी क्रियायें शास्त्रोंमें मिलती हैं। इस प्रकारसे निर्मित पारद को हठ रस कहते है। पारदको रज, वीर्य, मल, मूत्र, नाग, वंग और विषों से जवरदस्ती अग्नि स्थायी किया जाता है। ऐसा पारद हठरस कहाता है। यह खाने या रोग निवारण के काम नहीं आता है।

वर्तमान समयमें रोगोंके निवारणार्थ करोड़ो रुपयों की औषधियां विदेशोंसे आती है। इस गरीब देशका अगणित धन बाहर चला जाता है। ये औषधियां यहा की जलवायुके अनुरूप भी नहीं होती। स्वतन्त्र भारतकी सरकारको अपनी विकास योजनाओके लिये अगणित धनराशि बाहरसे कर्ज और मददके रूपमें लेनी पड़ रही है। वर्तमान वैज्ञानिक युगमें आयुर्वेद विज्ञानकी सहायतासे हम लोहसिद्ध स्वर्ण उत्पादनकर देशकी अर्थिक समस्याका समाधान कर सकते हैं। इस भावनासे अनेक स्थानोंपर अनेकप्रकार से पारदपर अनुसंधान हो रहे हैं।

वर्तमान समयमें आयुर्वेदके जीवनके लिये पारदपर अनुसंधान परमावश्यक है। कालेडा (अजमेर-राजस्थान) में श्री स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज और रसायनाचार्य श्री शांतिलालजी जोशी पारदपर अनुसधान कार्य कर रहे हैं और भूचरी जारणा उन्होने की है। रहस्यमय पारद अनुसंधान कार्य करने वालोके मार्गदर्शनके लिये पूज्य स्वामीजीने ता० २७-३-५९ को कालेड़ामें पारद अनुसंधान परिषद बुलाई थी। भारतके रस विषय के ज्ञाता और जिज्ञासुओंने एकत्र होकर विचार विमर्श किया। स्वामीजीकी इच्छा प्रतिवर्ष इस प्रकारका आयोजन करनेकी है। इस कार्यके लिये एक कमेटी बनाई गई है। कालेडा एक छोटा सा गांव है। वहां श्री ठाकुर नाथूसिहजीकी सहायतासे स्वामीजीने अपना सेवाकार्य प्रारम्भ किया है। ठाकुर साहबका सारा परिवार उत्साहपूर्वक सेवा कार्य कर रहा है और यह आयुर्वेदका तीर्थस्थान बन रहा है।

प्राचीनकालमें रससिद्धोंकी सहायतासे राज्योके आर्थिक सकट दूर कर दिये जाते थे। रसोपनिषद्‌में लिखा है—

श्रीमतां महता पुंसां त्रिवर्गस्वर्गभाविनाम।
राज्ञां च विजिगीषूणां प्रजानिर्बाधकारिणाम्॥
धर्मार्थ काम भोगाना नष्ट राज्य विवृद्धये।
आयुर्योवन लाभार्थयुत्कर्ष मुमुक्षुणाम॥

इस प्रकार राज्योंके आर्थिक संकट दूर करनेके संकेत अनेक रसशास्त्रोंके ग्रन्थोंमें उपलब्ध होते हैं।

वर्तमान समयमें संसारके राजनैतिक विषय वातावरणमें आर्थिक दृष्टिसे कमजोर भारतको उठानेकी परम आवश्यकता है। रसवैद्योंका कर्तव्य है कि भारत की आर्थिक कठिनाइयोंको दूर करनेका प्रयत्नकर सरकारके हाथ मजबूत करे। पं० जवाहरलाल नेहरू का स्पष्ट कर्तव्य है कि वे एक हाथमें गांधीगीता और दूसरे हाथमें पारदीय स्वर्णमुद्रा लेकर संसारमें धर्म और अर्थके उत्कर्षको बढावे और संसारके सभी मानवोको भाई भाई कहकर कष्ट दूर करे।

पारद विज्ञान एक सम्पूर्ण शास्त्र है। भारतमें अनेक पारद विषयक ग्रन्थ उपलब्ध होते है। इसके अतिरिक्त चीन, तिब्बत, भूटान, नैपाल देशोंमें बहुत से रसग्रन्थ मिलनेकी संभावना है। भारत सरकारको चाहिये कि इन ग्रन्थोंको मंगवानेका प्रयत्न करे और अमुद्रित ग्रन्थोंके मुद्रणका प्रबन्ध करे। विदेशी विज्ञानोके अनुसधानके लिये भारत सरकार करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष कर्ज करती है। दुर्भाग्यसे हमारी सरकार पश्चिमकी ओर आकर्षित है। हमारे घरमें क्या क्या निधि भरी पड़ी है इसकी ओर देखनेकी सरकारको फुरसत नहीं। यदि गवर्नमेण्ट पारद अनुसंधानके लिये कुछ व्यय करें तो अनेक प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं।

सुनते है कालेड़ामें स्थित स्वामीजीके औषधालय को सरकारसे कुछ सहायता मिलती थी पर सरकारी कर्मचारियोंके बुरे तथा अयुक्तियुक्त व्यवहारके कारण स्वामीजीने उस सहायता को धन्यवाद पूर्वक त्याग दिया। स्वतन्त्र भारतमें सरकारी कर्मचारियोंका व्यवहार सयत तथा संगत होना चाहिये।

(शेष पृष्ठ ५४४ पर देखें)

रस शास्त्र व दिव्य औषधियां

लेखक—वैद्य पं० कृष्णवल्लभ जी मुखिया उज्जैन

जर्जरी भूत भारतीय चिकित्सा पद्धतिके जीर्णोद्धार करनेके हेतु समुद्र मंथनवत् परिवर्तन शील भारतीय नीति कालमें साक्षात् धन्वन्तरि इव आयुर्वेद शास्त्र तथा उसके सार सर्वस्व रस शास्त्रका पुनरुत्थान करने को नागार्जुन सिद्ध योगी इव जनहित कल्याण में अनवरत प्रयत्नशील महामना श्रद्धेय स्वामीजी कृष्णानन्दजी महाराजका प्रागट्य है "अभ्युत्थान मधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्" इति गीता वचनके अनुसार साक्षात् श्री धन्वन्तरि अथवा नागार्जुनादि सिद्ध गण स्वामीजी के स्वरुपमें प्रगट होकर रस विद्या का प्रचार कर रहे हैं। भगवान धन्वन्तरि इन्हें चिरायु प्रदान करें।

भारतीय रस शास्त्र अद्यावधि गोपनीय प्राय रहा था। उसका मुख्य उद्देश्य केवल शठलंपटोंके द्वारा उत्पात से जन अहित न हो। "दत्तात्रेयतंत्र" में लिखा है कि

शिरंदद्यात् सुतं दद्यात् ना दद्यात् तंत्र कल्पकम्।
यस्मै कस्मै न दातव्यं साक्षात् शंकरोदितम्॥ १॥

किन्तु वर्तमान वैज्ञानिक युगमें जन कल्याण हित ही होगा 'अयं तु युगधर्मो हि" स्वतंत्रताका सत्य साक्षात्कार यह ही है।

प्राचीन रस विद्याके आचार्य—वशिष्ठ, मांडव्य, व्याडि, मन्थान भैरव, वातुल, रेणुक, नन्दिनाथादि अनेक हुए हैं, जिन्होंने अनेक रस ग्रन्थोंकी रचनाएं की

पंच विंश सहस्राणि रस तन्त्रं विनिर्गतम्।

किन्तु दुर्भाग्य वश उन ग्रन्थोंके दर्शन भी दुर्लभ हो गये। रस विद्याके लुप्त प्राय युगमें डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल तथा डा० प्रफुल्लचन्द्र राय आदिने अनेक प्राच्य विद्या मंदिरोंमें खोजकी। तथा यादवजी त्रिकम जी आचार्य, जीवराम कालीदास शास्त्री, लालालक्ष्मण चंद मेहरवाल आदिने रसग्रन्थोंको प्रकाशित भी किया।

तथापि—ब्रह्मयामलक-विष्णुयामलक-देवीयामलक-रुद्रयामलक, भैरवयामलक, नन्दिकेश्वर संहिता, अश्विनीकुमार संहिता, रस संहिता, भास्कर संहिता, महाकाल संहिता, योगिनी तन्त्र, गोरक्ष संहिता, आदि २ ग्रन्थोके उद्धरण मात्र शेष रह गये है।

तथा प्रकाशित जो ग्रन्थ हैं उनमें भी कार्य क्रिया अनुभव स्वयंकी कृति न होनेमे सजीवताका बोध नहीं होता है। जो क्रिया गुरु परंपरासे प्राप्त होती थी वे आज बड़े बड़े आयुर्वेदके विद्यालयोंमें भी दर्शन मात्रको भी नहीं हैं।

"उपाध्यायजी माधव" के समयमे रस विद्याका बहुत कुछ अश लुप्त हो गया ऐसा प्रतीत होता है—

"द्रुतयो नैव जायन्ते शास्त्रे प्रोक्ता अपि ध्रुवम्"

उनके "आयुर्वेद प्रकाश" ग्रन्थसे स्पष्ट होता है कि अभ्रककी द्रुति उनसे नहीं बन सकी।

सन् १९१२ ई० विराट् आयुर्वेदिक प्रदर्शनी मथुरा में वैद्यराज धर्मदेवजी लाहौर वालोंने अभ्रककी द्रुति रक्खी थी।

गोविन्दाचार्य "रससार" ग्रन्थमें लिखते हैं कि—

आदौ धान्याभ्रकं कृत्वा स्वेदयेद्दिनविंशति।
स्नेह दुग्धवसा मूत्रैरम्लैः क्षारैर्विधीयते॥३१॥
पश्चाद्द्रुति प्रकर्तव्या अन्यथा नैव जायते॥

गोविन्दपादभिक्षु "रसहृदयतन्त्र" ग्रन्थमें लिखते हैं कि—

गगनं चिकुरतैलघृष्टं गोमयलिप्तं च कुलिशमूषायाम्
सुध्मात मत्र सत्वं द्रवति जलाकार मचिरेण॥५॥
पञ्चदशोऽवबोध.।

अभ्रकं द्रावित येन भस्म वै पारद कृतम्।
द्वार मुद्घाटित तेन यमस्य धनदस्य च॥

पारद भस्म प्रकरण ग्रंथ इत्यादि अनेक ग्रन्थोंमें स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं।

किन्तु भाग्य योगसे ही इन क्रियाओंमें कुशलता मिलती है। "सूतस्य वहि सहता भवतीह दैवात्"

आलस्याद् द्रव्य दोषाद्विषम समयतो दैवहानेर्विधेर्वा।
नो सिद्धेत्तस्य कि सा भवति विधुरता देहलोह क्षमस्य॥
'रसराज शिरोमणि' ग्रन्थ

विक्रम संवत् १९७५ के लगभग अलीगढके बाबू निरंजन प्रसाद पारद सहिता ग्रन्थकी भूमिकामें लिखते हैं कि मैंने अभ्रक ग्रास करानेके लिये अनेक वैद्य महानुभावोंसे प्रार्थना भी की तथा पंच सहस्र मुद्रा भेंट देनेका विज्ञापन भी निकाला किन्तु किसीने भी इस कार्यको करना स्वीकार नहीं किया अन्तमें उन्होंने स्वयं ने ही अनुभव करके १९८० वि० संवत्में पारद संहिता नामका ग्रंथ बनाया और उनका स्वर्ग वास हो गया। अतः अभ्रक ग्रास युक्त पारद वैद्य समाजको देखनेको नहीं मिला।

परन्तु स्वामीजी महाराजने उदारता पूर्वक अभ्रक ग्रास युक्त पारदका दर्शन देनेका समस्त वैद्य बन्धुओंको अवसर प्रदान किया है, यह भूरि भूरि प्रशसनीय है।

जिस युगमें अणु परमाणु राकेट इत्यादि वैज्ञानिक प्रयोगोंका प्रचुर प्रचार उन्नति शील हो रहा हैं। उस युगमें रसविद्याकी उन्नति होना भी परम आवश्यकीय है।

जिसके सिद्ध प्रयोग–अक्षय कामधेनु गुटिका खेचरी गुटिका, इष्टार्थसिद्धि गुटिका इत्यादिक अनकानेक है। किन्तु दिव्य औषधियोंके द्वारा ही यह शक्ति शाली प्रयोग सिद्ध हो सकते है —

दिव्यौषधिसमायोगात्स्थित. प्रकटकोष्टिपु।
भुंजीताखिललोहाद्यं यो ऽसौ राक्षस वक्त्रवान्॥
(र० र० स०)

नाध' पतति न चोर्द्धं तिष्ठति यत्रे भवेन्न चोद्गारी।
अभ्रकजीर्णस्तु रस शिखन्न पक्षस्तु विज्ञेयः॥
रसपद्धति ग्रंथ।

सूतादष्ट गुण जार्य धान्याभ्र रसवेदिना।
नान्यासौ गगन ग्रास पारदे वै परिकीर्तित॥
कंकालीनिर्मित "रसकंकाली" ग्रन्थ

जिन औषधियोंके द्वारा अमोघ अद्भुत चमत्कृत रस रसायनोंका निर्माण होता है वे दिव्य औषधियां कहलाती है।

चतुः षष्ठी शतैकाग्रा विद्या प्रोक्ता रसायनी।
भ्रमति पशवो मूढाः कुलौषधि विवर्जिता।
तृणौषधिरसानां च नैव सिद्धिः प्रजायते॥
"रुद्रयामलक" ग्रन्थ

अतः आजके युगमें "दिव्य औषधि निघण्टु" सचित्र सब प्रान्तोंकी भाषामें तथा किन किन स्थानोंमें यह पाई जाती है, वर्णनके सहित ग्रन्थ निर्माण होना बहुत आवश्यक है। इस इलिये स्वामीजी महाराजसे प्रार्थना करता हूँ कि उपरोक्त ग्रन्थ निर्माण कर वैद्योंमें कार्यक्षमता देकर जनताका कल्याण करेंगे।

— सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्य मिदं जगत् —

(पृष्ठ ५४२ का शेष)

पारद अनुसंधान परिषद्में मैंने राजस्थानके सरकारी चिकित्सालयोंके वैद्यों और आयुर्वेद विद्यालयो के शिक्षकोंको नहीं देखा। सुना है कि राजस्थानके आयुर्वेदके सचालकोंमेंसे किसीने उन लोगोंको सम्मेलनमें जानेसे रोकनेके लिये अवकाश नहीं दिया। मै चाहता हूँ कि इसकी जांचकी जावे।

रस (पारद) से अनेक उपयोग सिद्ध होते है। प्राचीनकालमें पारदसे विमानोंको चलानेका वर्णन आता है। कुछ वर्ष पहिले श्री ब्रह्ममुनिजी गुरुकुल कांगडीने भारद्वाज मुनि प्रणीत वैमानिक प्रकरण नाम का छोटासा ग्रन्थ प्रकाशित किया था और अब भारद्वाज प्रणीत सम्पूर्ण विमानशास्त्रका ग्रन्थ उनको मिला है। इसको भी उन्होंने प्रकाशित कराया है। प्राचीन भारतमें आधुनिक स्पूतनिक जैसे वेगवान विमान चलते थे और वे नभोमण्डलमें सब स्थानोंपर जा सकते थे। ये विमान पारदकी सहायतासे चलते थे। रूस और अमेरिका वालोंने भी आधुनिक विमानो में पारदकी बेटरियां लगवाई है ऐसा अखबारोंमें प्रकाशित हुआ है।

हमारी सरकारको भी चाहिये कि पारदकी अपार महिमाको समझते हुये इस विषयमें अनुसंधानके लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये।

महर्षियोंका अन्वेषण और रसविद्याका प्रचार

यह ब्रह्माण्ड चैतन्यसे पूर्ण भरा है। चैतन्यके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है फिर भी ब्रह्माण्डके चैतन्य और जड़, दो महावर्गका अनुभव होता है। जो जड़-वर्ग है, वह भी यथार्थमें चैतन्यका विवर्त है। चैतन्य ही अन्य विभिन्न स्वरूपोंमें भासमान होता है। जिस तरह सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदिकी स्थिरता भासना, सूर्यप्रकाश श्वेत प्रतीत होना, पृथ्वीका सूर्यकी चारों ओर परिभ्रमण और अक्षभ्रमण होनेपर भी अचला भासना, सूर्यके तापमें मृगजल भासना, निरन्तर नदियोंके गतिशील जलमें स्थिरताका भास, कुएके जलमें जितना हो, उससे अधिक जल भासना, कामलाके कारणसे बाह्यजगत पीला भासना, ज्वरावस्थामें मिश्री कड़वी लगना, सर्प विषका अभाव बढ़नेपर निम्बपत्रका स्वाद मधुर भासना, सिनेमाकी स्लाइडोंमें रहे हुए चित्र और किनारीपर स्थापित स्वरोंसे उत्पन्न ध्वनि आदिसे विभिन्न प्रकारके स्वरूप और मानव आदिके शब्द आदिका अनुभव होना आदि आदि जीवोंको भ्रम उत्पन्न कराते है, उसी तरह इन्द्रियां, मन, बुद्धि और शरीर रूप आवरण या अन्तरायके कारण एक वस्तु दूसरे रूपमें भासमान हो रही है। यह सूक्ष्मबुद्धि वाले सब सज्जन तथा दर्शनशास्त्र और विज्ञानके अभ्यासी सरलतासे समझ सकते हैं।

सजीव सृष्टिमें चार विभाग होते हैं। उद्भिज (वनस्पति), स्वेदज (जूंआदि), अण्डज (अण्डेमेंसे बाहर निकलने वाले जीव), जरायुज (मनुष्य, पशु आदि) एवं कई पदार्थोंकी अपक्रान्ति (Degeneration) होनेपर मक्खी, मच्छर, सूक्ष्म कृमि-कीटाणु आदिकी सृष्टिकी उत्पत्ति होना, यह स्वेदज जीवोंके अन्तर्गत है। इन सब सजीव जीवोंके देह जड़ प्रकृतिके परिणाम-रूपसे उत्पन्न पञ्चभूतोंसे निर्मित हैं। सबमें चेतना शक्ति (प्राण शक्तिके साथ सम्मिलित होकर) निवास करती है। अतः चैतन्य (चेतना शक्ति) संसारमें ३ रूपोंमें अवस्थित होनेका अनुभव होता है। १. व्यापक रूपसे; २. अभिमानी रूपसे जीवदेहमें; ३. अनुशयी रूपसे प्राणीमात्रके देहके अण्ड अणु-अणुमें फैलकर या जड़रूपसे ही भासमान।

जो अभिमानी जीव हैं, उन्हें सुख दुःखका असर होता है दुःखसे मुक्त होनेकी चाहना करते हैं। अनुशयी रूपसे जो चैतन्यांश रहे हैं, उनको सुख दुःख नहीं होता। कारण प्रत्येक अणुके साथ उद्भूत हुए मन, बुद्धि आदिका अभाव है। किन्तु मनुष्य पशु पक्षीका शव कुछ समय तक खुली वायुमें पड़ा रहेगा, तो अणु-अणुओंके भीतर उपस्थित अनुस्थित चैतन्यके हेतुसे अगणित कृमि कीटकी नूतन सृष्टि उत्पन्न हो जाती है। साथ साथ उन सबको देहमें मन बुद्धिकी भी उत्पत्ति हो जाती है और वे सब अभिमानी जीव बन जाते हैं।

जिन देहमें चेतना शक्तिका निवास है, उन देहोंकी उत्पत्ति, जन्म, विकास, अपक्रांति, अपक्षय, विनाश ये ६ अवस्थाएं ×होती रहती है। इनमें पहली अवस्था उत्पत्ति होकर अस्तित्वमें आने वाली तत्काल बाह्य इन्द्रियोंसे जानी नहीं जाती किन्तु जीवोंका जन्म होनेपर स्पष्ट अनुभवमें आती है। फिर आगे बढ़ना, बिगड़ना, देहकी शक्ति और जड़ांशका ह्रास होना और अन्तमें नाश आदि क्रिया संसारमें भासमान अविचल नियम अनुसार होती रहती है।

जो जड़वर्ग पाषाण सृष्टि है, उसे भी उक्त षट्-अवस्थाकी प्राप्ति होती रहती है, किन्तु गति उतनी मन्द होती है कि अनुभवमें नहीं आती। जो पत्थर, उपधातु, धातु आदि पृथ्वीमें है, वे भी सजीव हैं, सबमें चैतन्य पूर्ण भरा है, जो पाषाण, उपधातु, धातु जब तक पृथ्वीके भीतर हैं, तब तक उनमें विकास,

× महर्षि यास्कने निरुक्तमें कहा है कि—

जायतेऽस्तिवर्धते विपरिणमतेऽपक्षीयते विनश्यति,
इति षड् भावविकाराः॥

परिपाक, रूपान्तर आदि निरन्तर होता रहता है। पृथ्वीसे पाषाण आदिको पृथक् करनेपर विकास और परिपाक रुक जाता है। अपक्रान्ति अपक्षय आदि अवस्थाका प्रारम्भ हो जाता है।

जो जड़वर्ग भासता है, उसका सृष्टिके नियम अनुसार पृथक्करण करनेपर आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीरूपसे अर्थात् पञ्चभूतरूपसे अनुभवमें आता है। सजीव वर्गसे देह और बाहर भासमान जड़वर्ग, सब पञ्चभूतके कार्य हैं। अतः सब स्थूल संसार या जड़वर्ग प्रकृतिरूप चैतन्यके विवर्तरूप है, ऐसा विदित हो जाता है।

जमीनमें बीज बोनेपर वह पृथ्वीमें रहे हुए पञ्च-भूतके भीतर विलीन हो जाता है। फिर उसमें जिस गुणधर्मसे युक्त चेतना शक्ति अवस्थित हो, उस प्रकार का अंकुर बाहर निकलता है। फिर पौधा, गुल्म, लता या वृक्षरूपसे विकसित होता है। इस विकासार्थ भूगर्भसे अपने लिए अनुकूल हो, उस तरह पञ्चभूत का रूपान्तर कराके मूल, स्कंध शाखा आदिकी रचना चेतनाशक्ति करलेती है। इस रूपान्तरपरसे विदित होता है कि जीवोंका देह पञ्चभूतमेंसे ही बनता है तथा मृत्यु होनेपर पुन पञ्चभूतमें ही वह शक्ति विलीन हो जाती है।

जड़वर्गमें भी जो धातु-उपधातुएं हैं। सबके रङ्ग-रूप, रस, घनता, गुण धर्म पृथक्-पृथक् हैं। यह पृथक्ता चैतन्यके भिन्न-भिन्न प्रकारके विवर्त होकर परिणाम होते हैं। सृष्टिका अनुभव जीवोंको मन बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा ही करना पड़ता है। इन मन बुद्धि आदि साधनके सदोष होनेसे अनुभव भी उनके अनुरूप भ्रमयुक्त ही होता है।

जड़वर्गरूप धातु-रत्न आदिमें दीर्घकाल पर्यन्त चैतन्य विभिन्न गुण यह स्थिर रहते हैं। अग्निमें डालकर भस्म करने, जलमें दिनों तक रखने या अन्य प्रकारके प्रयोग करनेपर भीतर अवस्थित चैतन्य और चैतन्य आश्रित विभिन्न गुण धर्म जैसेके वैसे बने रहते हैं और उन धातुओंकी शनैः शनैः जीवोंके देहमें सम्मिलित होने योग्य स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है, यह महर्षियोंने प्राचीन भूतकालमें अपनी दीर्घ दृष्टि द्वारा जान, फिर विभिन्न प्रयोग करके निर्णित किया था। उसके आधारसे वैज्ञानिक दृष्टिसे विशेष अन्वेषण किया गया था।

जो प्राणज देहोंमें रस दुग्ध, पित्त, वसा, मज्जा, अस्थि, त्वचा, शुक्र आदि हैं, सबमें चेतना शक्ति भरी हुई है। उद्भिज सृष्टिके मूल, शाखा, पत्र, पुष्प, फल आदिमें भी विभिन्न गुण धर्म युक्त वही चेतना शक्ति है। इस चेतना शक्तिका प्रवेश विभिन्न गुण सह धातुओंके भीतर हो सकता है। फिर उन धातुओंमें अधिकतर और अधिकतम धारणाशक्ति किसमें है? यह क्रम भी महर्षियोंने निश्चित किया है।

महर्षियोंके निर्मिलशास्त्र वचनोंके अनुसार वर्तमान में भी प्राणीज घृत, वसा, मक्खन, दूध, दही, मल, मूत्र आदि तथा वनोषधियोंके स्वरस, फाण्ट, क्वाथ आदिकी भावनाएं धातुओंको दी जाती है जिससे उनमें नूतन गुणप्रधान चेतना शक्तिका आधान हो जाता है। इसी हेतुसे शास्त्र दर्शित विधि अनुसार बनाई हुई धातुओंकी भस्म विविध गुण दर्शाती है। एवं जो भस्म प्राणवायु (आक्सिजन), तिजाब, क्षारके योगसे तुरन्त बनाली जाती है, उनमें चेतनाशक्ति और मानव देह धातुओंमें दीर्घकाल पर्यन्त टिकनेकी शक्ति बहुधा नहीं होती।

प्रयोगान्तमें विदित हुआ कि प्राणी समूह और वनस्पति समूहोंके भीतर रही हुई विभिन्न गुण प्रधान चेतना शक्ति नाग, वङ्ग आदि सब धातुओंमें स्थापित हो सकती है। एक धातुसे दूसरी धातुमें परिवर्तित भी करा सकते हैं। धारणाशक्ति क्रमशः किस नियम अनुसार रही हुई है। सबमें श्रेष्ठ कौन है, वह सब दीर्घकाल पर्यन्त प्रयोग करके निश्चित किया है। फिर उस अनुभवके अनुसार भगवान् गोविंदपादाचार्यजीने रसहृदयतन्त्रमें लिखा है कि—

काष्ठौषध्यो नागे नागं वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्वे ।
शुल्वं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते ॥

अर्थात् काष्ठौषधियां आदिके गुण कर्म और उनमें रही हुई चेतना शक्ति नाग, वङ्ग, ताम्र आदि सबमें स्थापित हो सकती है। किन्तु दर्शाये हुये क्रम अनुसार चेतना शक्तिको विलीन कराया जाय, तो कनिष्ट धातुओंके भीतर अवस्थित विभिन्न गुण धर्मयुक्त चेतनाशक्ति तथा प्राणी तथा वनस्पतिसे प्राप्त चेतनाशक्ति सबको धातुओंकी शक्तिसह सुवर्णमें स्थापित करके, स्वर्णस्थ चेतनासह सबको पारदमें स्थापित कराया जाता है।

फिर स्थापित हुई शक्तिको उक्त पारदसे देहमें प्राप्त करके विभिन्न रोगोंको दूर कर सकते हैं। एवं देहको पुनः सबल, सुदृढ नूतन घटक प्रधान बना सकते हैं। मनको सबल बना बाह्यजगत्से अन्तरमें इच्छा अनुरूप लेजा सकते हैं। मनको एकाग्र बना सकते हैं एवं वासनाका परित्याग कराकर मनको समाधिकी प्राप्ति भी करा सकते हैं। इनके अतिरिक्त बुद्धिकी। विभिन्न शक्ति, विचारशक्ति, विवेकशक्ति, धारणशक्ति आदिको बढ़ा सकते हैं और सुदृढ़ भी बना सकते हैं। ये सब गुण रसायन रूपसे पारदका सेवन करनेपर ही मिलते हैं।

जिस तरह रसका उपयोग रसायन रूपसे होता है, उसी तरह धातुवादमें अर्थात् कनिष्ट धातुओंको श्रेष्ठ धातुमें रूपान्तरित करानेके लिए भी होता है। यह प्रयोजन ससारमें मुक्तिकी कामना वालोंके लिए नहीं तथापि दयालु आचार्योंने ससारके सुखके निमित्त दर्शा दिया है। इस सम्बन्धमें रसार्णवकारने कहा है कि—

यथा लोहे तथा देहे कर्तव्यः सूतकः सदा।
समान कुरुते देवि ! प्रविशन् देहलोहयोः ॥

भूतकालमें राजर्षि और चक्रवर्ती सम्राटोंके लिए कई बार इस विद्याका चमत्कार दर्शाया है। विविध रत्नमणि, मुक्ता और सुवर्ण आदिका निर्माण रसविद्या द्वारा कर दिया है।

रसायनरूपसे सेवन करानेके पहले धातुओंका रूपान्तर पारद (रसेन्द्र)से होता है या नहीं ? बीजके सम्बन्ध वाली कनिष्ठ धातुका रूपान्तर श्रेष्ठ धातुमें करा सकता है या नहीं ? यह रूपान्तर स्थिर रहता है या अस्थिर ? अग्निमें बार बार गलाने या दीर्घकाल व्यतीत होनेपर उसमें पुनः विपरिणाम होकर श्रेष्ठत्वका ह्रास या नाश तो नहीं हो जाता है + यह निर्णय हो जाय कि रसेन्द्रका सेवन शास्त्र कथित मार्ग अनुसार अधिकारी जनोंको रसायन गुणकी प्राप्तिके निमित्त कराया जाता है।

पारद और धातुओंके विभिन्न रोगहर अनेक प्रयोग निर्णित किये गये हैं। उस तरह प्रकृतिभेद, आयुभेद वात आदि दोषकी प्रधानता जनित भेद, विविध वस्तु सेवनका अभ्यास, व्यवसाय, शारीरिक बल, रोगनिरोधक शक्ति, ऋतु, देश काल आदिका विचार करके कई रसायन गुण प्रदान करने वाले प्रयोग भी निश्चित हुए हैं। इनका सेवन विवेक नेत्रको मूदकर नहीं करना चाहिए, अन्यथा क्वचित् लाभ के स्थानपर विपरीत हानि हो जाती है।

रसहृदयतन्त्रके अन्तिम अवबोधमें रसायन सेवनार्थ विवेचन किया है। देहशोधन, क्षेत्रीकरण, फिर क्रमशः न्यून और अधिक बलयुक्त पारद सेवन, पथ्य का पालन, अपथ्यसे आग्रहपूर्वक दूर रहना, भूल प्रमादसे विकार होनेपर निवारण करने वाले औषध प्रयोग आदिको समझा समझाकर लिखा है। रसायन गुणकी चाहनावालोंको चाहिए, उसका अच्छी तरह मनन कर लें, फिर सेवन करें।

प्राचीन आचार्योंने पारदका उपयोग मुख्य रसायन गुणकी प्राप्तिके लिए ही किया है। धातुवादको गौण माना है। तथापि संसारकी (परिचित समाजकी) निर्धनताको दूर करनेमें धातुवादका आश्रय लिया जाता है। वह महर्षियोंका मुख्य लक्ष्य नहीं था। मुख्य लक्ष्य पारमार्थिक कल्याण-मुक्तिकी प्राप्ति है। इस सम्बन्धमें रसहृदयतन्त्रकारने लिखा है कि—

परमात्मनीव नियतं भवति लयो यत्र सर्वसत्वानाम्।
एकोऽसौ रसराजः शरीर मजरामरं कुरुते ॥

+ पूर्वं लोहे परीक्षेत ततो देहे प्रयोजयेत् ॥

अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्त्तौ योगिनो यथा लीनाः।
तद्वत् कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः॥

इसपरसे विदित होता है कि ब्रह्मप्राप्ति मोक्ष यह मुख्य लक्ष्य था तथा सुवर्ण आदिकी प्राप्तिको गौण माना है।

आचार्योंने यह विद्या परम्परागत जिज्ञासु कोटि-वाले शिष्य या पुत्र आदिको देनेका नियम बनाया था। अनधिकारीको नहीं देनी चाहिए अन्यथा संसारमें अधिक अधर्म फैलेगा। इस बातको जानकर प्राचीन कालसे बौद्धयुग और जैनयुगके आरम्भ तक यह मर्यादा दृढ़ रही। फिर उसमें शिथिलता आगई थी।

श्री नागार्जुन ब्राह्मण आचार्य थे। वे रसविद्याके पारंगत थे। कालान्तरसे वे बौद्धसंप्रदायके विचारोंमें प्रभावित बने। फिर उनने हजारों शिष्य-प्रशिष्योंको इस विद्याका दान दिया। जो श्रमण बनते हैं, वे सब बहुधा लायक मान लिए गये। उनको विद्यादान दिया जाता था। उन श्रमणोंमेंसे अनेकोंको विदेशोंमें भेजा गया ओर विदेशोंमें भी प्रचार किया गया। इस हेतुसे भारतसे चीन, जापान, कोरिया, मलयद्वीप आदिमें यह विद्या पहुँची।

ब्राह्मणों द्वारा जैनयतियोंके पास भी विद्या पहुँची उनने जैन धर्मको सुदृढ बनानेके लिए धातुवादका आश्रय लिया बड़े-बड़े मंदिर पर्वतोंपर करोड़ो रुपये लगाकर बनाये। लक्ष्मीजीको प्रधानता देकर खुले हाथसे खर्चकर सम्प्रदायको फैलानेका प्रयास किया।

किन्तु धातुवादको श्रेष्ठ मानने वालोंके हृदयमें अभिमान, रागद्वेष, ईर्ष्या आदि दोष बिना कहे प्रवेश कर शनैःशनै सुदृढ बनते गये। फिर उस दोषने जैन सम्प्रदाय और समाजको अधः पतनकी और अग्रसर किया।

मुस्लिम युगमें यह विद्या कई रसायन विदोंका सम्प्रदाय परिवर्तन कराकर उनसे मुसलमानोंने प्राप्त की। फिर एशियाके पश्चिम दिशामें रहे हुए प्रदेश, अफ्रीका, यूरोप आदिमें प्रवेशित हुई फिर संसारमें सर्वत्र दुष्कर्म, अधर्मका नंगा नाच होने लगा।

मुस्लिमयुगमें अनधिकारी विद्या प्राप्त करके समाज को हानि पहुँचानेके उदाहरण स्थान-स्थानपर मिलने लगे। समाज जीवन रक्षणार्थ चिन्तित तो रहता ही था। ऐसी अवस्थामें विद्याका दुरुपयोग होना आचार्यों से सहन नहीं हो सका। अत्यधिक संशय, छानबीन और कठिनतर शिष्य परीक्षा होने लगी। शास्त्रको अत्यधिक छिपानेकी वृत्ति उत्पन्न हुई। परिणाममें वर्तमान समय तक उपरोक्त इस विद्याके जानकारों की संख्यामें अधिकाधिक ह्रास हो रहा है।

ब्रिटिशयुगके आरम्भके पश्चात् पाखण्ड प्रपञ्च भारतमें भी दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। ब्रिटिश साम्राज्य नष्ट होकर भारत स्वतन्त्र बननेपर भी पाखण्ड-प्रपञ्च पर अंकुश नहीं आया। अधिक फैल रहा है और देशको वेगपूर्वक पतनोन्मुख बना रहा है।

जनसमाज विलास प्रिय बन गया है। पाखण्ड प्रपञ्च करके ठगाई करनेको बहादुरी मानते हैं। सरल मनुष्योंको भोंदू कहते है। कइयोंने आयुर्वेद पढ लिया इसलिए अपनेको अधिकारी मानते हैं। कई अनेक विषयोंके विद्वान हैं, इसलिए अपनेको श्रेष्ठ अधिकारी समझते हैं। चारित्र्य, संयम, सदाचार, श्रद्धा इन सद्-गुणोंकी आवश्यकता नहीं मानते। वे इस हेतुसे आचार्य उनको कदापि रसविद्याका दान नहीं दे सकते।

जिज्ञासुओंकी आबादी कम होती है। वे संसार के सुख-दुखको सहनकर लेते हैं। अनीतिका मार्ग नहीं अपनाते। ऐसे जिज्ञासु नीतसे सुदृढता पूर्वक चिपकने वाले श्रद्धालु वर्तमानमें कम हैं। जो हैं, उन अधिकारी जनोंके भीतर रसविद्याके इच्छुक कम है। इस तरह अभी तक इस विद्याकी पुनः उन्नति या अधिक प्रचार होनेके लक्षण नहीं दिखाई देते। आगे जिस तरह श्री हरि प्रेरणा करेंगे, उस तरह समाजका विचार बनता जायगा। श्री हरि विश्वको शीघ्र शान्ति सुमति, सदाचार और विद्या प्रेम आदि सद्गुण प्रदान करे, यह हृदयसे चाहते हैं।

रस शास्त्रमें प्रवेश

रस शास्त्र अनादि है। उसका प्रचार विश्वके कल्याणार्थ समयानुरूप अधिकांशमें या न्यूनांशमें होता रहता है। जब पारमार्थिक कल्याणके इच्छुक मुमुक्षुओंकी संख्या अधिक होती है, तब प्रचार करने वाले आचार्य अधिक उपस्थित होते हैं। जब समाजमें पापकी मात्रा बढ जाती है, पाखण्ड, प्रपञ्च, राग-द्वेष, भोग, विलासमें अलंबुद्धि समाजकी व्यवस्थामें बाधक और पारमार्थिक कल्याणकी चिन्तासे रहित अधर्मी मनुष्योंकी आबादी अत्यधिक बढ जाती है, तब रस विद्याके प्रचार और शिक्षा-दीक्षा विधान कम हो जाते हैं।

ऐसा भी समय कदाच आ जाय कि मनुष्य जो समाजमें रहे हैं, उनमें से एक भी इस विद्याका जानकार न रहे, तो उतनेसे विद्याका नाश नहीं होता है। यह पतञ्जली मुनिने योग दर्शनमें स्पष्ट कर दिया है। वहां कहा है, कि "पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" समाधिपाद सूत्र २६। इस सूत्रमें दर्शाया है कि विद्या (ज्ञान) का कदापि नाश नहीं होता। विश्वनियंता रूप जो गुरु है, जो ब्रह्मा, हरि, हर (रुद्र) आदिके भी पहले से उपस्थित है, उनके पास विद्या बनी रहती है। उन का कदापि किसी कालमें नाश नहीं हो सकेगा। +

जो भूगर्भमेंसे पारद मिलता है, उसमें कई प्रकार की अशुद्धियां शास्त्रकारोने दर्शायी है। अतः उसका उपयोग उसी रूपमें नहीं हो सकता। यदि उदर सेवनार्थ उस अशुद्ध पारदका उपयोग किया जायगा, तो मंद क्रिया करने वाले विष (Slow poison) के समान शरीरके भीतर जाकर विभिन्न धातुओंमें मिलकर कई प्रकारकी हानि पहुँचायगा। जीवन दुःखमय बनायगा और फिर अकालमें मृत्युकी शरण पहुँचा देवेगा। इसी हेतुसे आचार्योंने पारदका उपयोग करनेके पहले १८ प्रकारके संस्कार करनेका विधान किया है। इनमें प्राथमिक ८ संस्कार है। वे संशोधन और गुणाधानार्थ है। शेष मात्र गुणाधानार्थ है। प्रथमके ८ संस्कार आगेके १० संस्कारोंकी अपेक्षा सरल है। उतने संस्कार करनेके पश्चात् पारदका उपयोग औषध खरलीय रस रूपसे कार्यमें करना चाहें तो हो सकता है।

प्राथमिक अष्ट संस्कार वर्तमानमें किसी किसी स्थानपर होते भी है। ठीक विधिसे होता है या भूल होती होगी, यह प्रश्न पृथक् है। संस्कार करने वाले जिस साधकको सद्गुरु की शरण मिली है। सद्गुरु की शरणमें रहकर अनुभव किया है, वे तो उत्तम प्रकारसे कर सकते हैं। इतर जो ग्रन्थोंका पठन करके बुद्धि बलसे संस्कार करते हैं, उनके लिए स्पष्ट शब्दोंमें कुछ भी नहीं कह सकेंगे।

शेष १० संस्कार जो मात्र गुणाधानार्थ है। उनको शास्त्र पढ़कर करने वाले साधक अत्यधिक भूलें करते है। गणपति की मूर्ति बनानी है, बन जाती है मारुति की, मूर्ति के समान उनकी कृति हास्यास्पद है। ग्रास मान चारण, गर्भद्रुति, जारण बाह्यद्रुति, बीज निर्माण, बीज जारण, रञ्जन, सारण, क्रामण, वेध, ये सब अधिकाधिक क्लिष्ट है। थोड़ी भी भूल होनेपर कई बार सामयिक हानि पहुँचती है। कई बार क्रिया

\+ कोटिकोऽप्ययुतानीशे चाण्डानि कथितानि तु।
तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवा'॥
असङ्ख्याताश्च रुद्राद्या असङ्ख्याताः पितामहा।
हरयश्चाप्यसङ्ख्याता एक एव महेश्वरे॥

व्यर्थ होकर आर्थिक हानि और शारीरिक हानि भी पहुँच जाती है।

चारणाके कई प्रकार हैं। सबकी विधिमें भेद है। उससे कठिन गर्भद्रुति है। जारणा अधिकतर कष्ट साध्य युक्ति और बुद्धिका विषय है। इसके लिए आचार्योंने कहा है, कि "दुर्लभा जारणा देवी विना भाग्य न लभ्यते।

चारणामें समुख चारणा, निर्मुख चारणा और वासना मुख चारणा, इस प्रकार त्रिविध मार्ग दर्शाये है। समुख पारद वालेके लिये पहले मुखोत्पत्तिका प्रबल प्रदान करना पड़ता है। निर्मुख चारणामे दिव्य औषधि की सहायता ली जाती है या वज्र, वैक्रान्त आदिका आश्रय लिया जाता है। वासना मुख चारणार्थ पहले गधक का जारण दौलायन्त्रसे करना पडता है। विशेषत' बाष्प द्वारा वासना दी जाती है। इन चारणा क्रियाओ में धातुवाद और रसायनवादकी दृष्टिसे समय, औषध और योजनामें भेद हो जाता है।

गर्भद्रुति और जारणा क्रियामें भी कई बार बिड़की सहायता ली जाती है। बिड़ अनेक प्रकारका बनाना पड़ता है। बिड सम्यक् नहीं बनेगा, तो भी सफलता नहीं मिल सकेगी। यह क्रिया भी सद्गुरु देवकी सन्निधिमें रहकर हस्तगत करनी पड़ती है।

जारणा भी बालजारणा, वृद्धजारणा भेदसे २ प्रकारकी है। पहले गंधक जारणा, फिर अभ्रक सत्त्व और सुवर्णमाक्षिक सत्त्वका जारण, तत्पश्चात् सुवर्णका जारण कराया जाता है। इनमें गधकका उपयोग सब समय साथमें किया जाता है। इसके लिए गन्धक भी विशेष गुणाधान युक्त बना लेना पडता है। जारण क्रिया भी भली भांति समझकर कर करनी पड़ती है। छिमटी छिमटी गंधक बार बार दिया जाता है। एक साथ अधिक डालनेपर योग्य फल नहीं मिलता है। कई बार गधकका जारण सम्यक् हो जाने पर पहले सुवर्णका जारण कर लिया जाता है। सुवर्ण जारण करना हो तो भी गन्धककी सहायता ली जाती है। कई बार विभिन्न द्वन्द्व बनाकर या संकर बना कर क्रिया की जाती है। ये सब क्रियायें सद्गुरुसे प्राप्त करनी पड़ती हैं।

सारणाके ३ प्रकार है। सारणा, प्रतिसारणा, अनुसारणा। तीनोमें मात्रा भेद और कुछ क्रिया भेद है। क्यों सारण क्रिया करे ? किस समय करे, किसके लिए करें, ये सब भली भांति जानकर यथा विधि क्रिया हो, तो भी परिणाम संतोष प्रद मिलता है।

क्रामण और वेध क्रिया, ये भी अधिक महत्वकी क्रिया है। किस द्रव्य पर, कितनी मात्रामें क्रिया की जाय ? बीज कौनसा लिया है ? बीज दृष्टिसे पारदका बल कितना है ? इस सबका विचार कर क्रिया; शास्त्र मर्यादा और अनुभवके अनुसारकी जाती है।

रस शास्त्रकी मुख्य औषधि पारद है। और धातु, उप धातु, प्राणिज, क्षार आदि सहायक औषधियां हैं। इस शास्त्रमें पारदका उपयोग कारण भेदसे त्रिविध प्रकारका हो जाता है। फिर इनके लिए नाम करण भी पृथक् पृथक् किया है। रसवाद, रसायनवाद और धातुवाद संज्ञा दी है। तीनोंमें कृति और फलका भेद हो जाता है।

आचार्यों ने अष्ट संस्कारित पारद या हिङ्गुलोत्थ पारदको षड्गुण गन्धक जारित करके लेनेका भी विधान किया है। ऐसी अवस्थामें संदेह उत्पन्न हो जाता है, कि किन किन प्रयोगोंमें अष्ट संस्कारित चल सकेगा ? किन किन योगोमें पक्षच्छिन्न बुभुक्षित लेना चाहिये ? इसके समाधानार्थ आचार्यों ने कुछ साधन भी रखा है।

जो रसौषधि तीव्र वेग प्रधान रोगपर प्रयोजित होती है, जो खरलोके भीतर घोटने मात्रसे तैयार हो जाती हैं; उन सबमें कम गुण युक्त पारद चल सकेगा। जो प्रयोग मंद वेग वाली, दीर्घकाल स्थायी और जीवनको क्षय करने वाली व्याधियोके निवारणार्थ लिखा गया है; इनमे भी पर्पटी या कूपीपक्व रसायन

या अन्य रीतिसे अग्नि सस्कार करनेका विधान किया है, उनके लिए पारद जितना अधिक गुण प्रद होगा, उतना ही अधिक सफल कार्य करेगा।

इस नियमके भीतर भी कुछ अपवाद है, ऐसे स्थानपर सद्गुरुदेव साधक कौनसा पारद लेना हिता-वह रहेगा, वह मार्ग दर्शन करा देते हैं। इस तरह परम्परा गत प्राप्त प्रयोगोंमें भूल होनेकी या न्यून गुण दर्शानेकी संभावना बहुत कम रहती है।

दूसरा विभाग रसायन वाद है। इसके लिए पारद जितना दिव्य होगा। देहका शोधन करके चेत्रीकरण किया होगा, उतना ही रसायन औषधि अधिक गुण दर्शा सकती है। रसायनवादके निमित्त आचार्यों ने पञ्चकर्म और अन्य शोधन कहा है। फिर अभ्रक भस्म आदिका सेवन निश्चित समय तक करके देहका चेत्री-करण कर लिया जाता है। पश्चात् विशुद्ध पारद प्रधान प्रयोग का सेवन किया जाता है। आगे थोड़ा वेध कर सके वैसे पारदका: तत्पश्चात अधिकाधिक वेध शक्ति प्रधान पारदके सेवनकी आज्ञा की है।

रसायनवादमें जब वेध कर सके वैसे पारदका प्रयोग करना हो, तब आचार्य कहते हैं कि "पूर्व लोहे परीक्षेत ततो देहे प्रयोजयेत्" अर्थात् उस पारदसे पहले वेध क्रिया करें। निर्मित सुवर्ण योग्य तो हुआ है। बार बार अग्निमें डालने पर वजन या रग रुप या गुण धर्मका ह्रास तो नहीं होता ? इस तरह सम्यक् परीक्षा करनेके पश्चात् शरीर पर रसायन प्रयोग करे।

रसायनवाद और धातुवादमें कई संस्कार और क्रिया समान है। कुछ भेद भी है। वर्तमानमें धातुवादकी ओर गति करना भय पूर्ण, आपत्ति वाला है। इस हेतु से प्रयोग कर्त्ता क्रामण, वेध आदि कुछ क्रियाको छोड़ कर रसायन वादकी औषधियां तैयार करते है।

धातुवाद अति गुह्यतम है। पुस्तकोंके अध्ययन, मननसे सिद्ध नहीं होता। अत: उस ओर गति न करना ही श्रेष्ठ माना जायगा। यदि सद्गुरु क्रिया सिद्ध हों, वे आज्ञा प्रदान करते हों, तो उनकी सन्निधिमें रहकर अनुभव करें। अन्यथा नहीं।

जो लोग द्रव्योंका झटपट निर्माण करना चाहते हैं; वे कदापि दिव्य औषधि निर्माण नहीं कर सकेंगे। जैसे आध सेर खिचड़ी पकाना हो, और सेर भर कोयले की अग्नि पर रखेंगे, तो करीब आध घण्टेमें खिचड़ी बन जायगी। यदि ३० सेर कोयलेकी अग्नि दी जायगी तो क्या १ मिनटमें खिचड़ीका पाक हो सकेगा ? अनु-भव समझाता है कि खिचड़ी किसी कामकी नहीं रहेगी। उसी तरह मनगढत विधि अनुसार क्रियाकी जायगी, तो कदापि औषध अधिक गुण प्रद नहीं बनेगी। क्वचित् हानि कर भी हो जायगी।

जिस तरह शास्त्र विधिका पालन कर योग्य समय में भस्म, सत्व, रस, रसायन निर्माण किये जाते हैं, उसी तरह भस्म निर्माणार्थ शोधन और मारण भी चेतना शक्ति वृद्धि कर होना चाहिए। क्षार, एसिड योगमें जो वर्तमानमें भस्म निर्माण कर ली जाती है, वह गुण प्रद नहीं है। श्रद्धालु रोगियोको भ्रान्तिमें डालने वाली है। जैसे एलोपैथीमें लोह भस्म ऑक्सि-जन वायुसे जलाकर मिन्टोमें तैयार कर ली जाती है। किन्तु आयुर्वेद दृष्टिसे वह निरिन्द्रिय, जड़ रूप होनेसे उचित लाभ नहीं करती। तत्काल रक्ताणु वृद्धि और रक्त रसकी वृद्धि कराती है, किन्तु कुछ समयमें रक्त मूल स्थितिमें आ जाता है। अत' वैसी भस्मको स्वल्प काल पर्यन्त गुण दर्शाने वाली कहेंगे। आयुर्वेद और रस शास्त्र अधिक काल पर्यन्त गुण बना रहे, यह चाहते हैं।

रसवाद, रसायनवाद और धातुवाद, तीनोंमें धातुओंकी भस्म तथा उपधातु आदिका सत्व मिलाने की योजना शास्त्रकारोंने की हैं। इन सबका निर्माण यथा विधि किया जायगा, तो ही लाभ हो सकेगा। मनग-ढत तर्क वितर्क करके भ्रममें नहीं पड़ना चाहिए। जैसे एक स्थूलमें प्रवेश करने वाले बालकको लिख दिया जाता है कि इस तरह 'अ' 'क' आदि लिखें। बालक पूछता है कि 'अ' को लकीर समान क्यों न बना दूं ?

'त्र' को पैर रहित क्यों न रखा जाय ? बालक को अध्यापक यही कहेगा कि जैसे मैंने लिख दिया है, वैसा अक्षर निकाले। अभी तर्क न करे। स्कूलका शिक्षण समाप्त होकर व्यवहारमें प्रवेश करने पर अपनी बुद्धिका उपयोग करना। इसी तरह नव्य शिक्षा-दीक्षा वालोंको भी रसशास्त्रकी मर्यादाका बोध जब तक न हो एवं अनुभव न मिला हो, तब तक सद्गुरु दर्शित मार्गका उल्लंघन न करें। फिर निष्णात होने पर विशेष विचार करें।

धातु अधिक विशुद्ध ली हो फिर भी उसका शोधन गुणाधानार्थ शास्त्र कथित करना ही चाहिए। शत-प्रतिशतके सुवर्ण, रौप्य, ताम्र आदि विशुद्ध धातुको भी शुद्ध करनी पड़ती है। अर्थात् शास्त्र कथित शोधन करके उसमें चेतना शक्ति प्राणिज द्रव्य और काष्ठौष-धियोंसे आकर्षित करना पड़ता है। चाहे चेतना शक्ति आधुनिक पृथक्करणके साधनों द्वारा विदित हो सके। नियमका पालन करे। जब चेतना शक्तिका अधिक परिचय प्राप्त कर सकेंगे, तब आप स्वयमेव प्रसन्न होंगे। तर्क वितर्क जालसे निवृत्त हो जायेंगे। अन्य साधकोंको भी सुशान्त कर सकेंगे।

धातुओंका मारण करनेके समय कई भस्मोंको जलतर बनानेका आदेश दिया है। रसकार्यार्थ कई भस्म अर्ध जीवित भी रखी जाती है। भस्म वारितर हो या वारितर न हो, यह महत्त्वका नहीं माना गया है। चेतना शक्ति कितनी आकर्षित हुई है, यह मुख्य लक्ष्य है।

इसी तरह रस क्रियार्थ कई द्रव्योंका सत्त्वपातन भी कराया जाता है। उनमें भी चेतना शक्ति कितनी आकर्षित हुई है, यह विशेष जाननेका है। चेतना शक्ति विशेषतः विद्युत् आश्रित रहती है। आचार्योंने इस लक्ष्यमें रख करके ही सत्त्व निर्माण कराया है।

प्राचीन आचार्योंने अभ्रक, सुवर्णमाक्षिक, रौप्य-माक्षिक, वैक्रान्त, खर्पर, मुर्दासङ्ग, शिलाजतु, मल्ल, ताल, शिला, कान्तलोह पत्थर, तुत्थ, नौसादर, स्फटिका, भूनाग, मयूरपुच्छके चन्दवे आदि खनिज, क्षार और प्राणियोंके देहसे सत्त्वोंको निकाल कर उपयोग किया है।

कारण, खनिज, उपधातु या प्राणियोंके अङ्ग-उपाङ्गका उपयोग नैसर्गिक रूपमें करनेपर उनमें अव-स्थित प्राण तत्त्व (विद्युत्) में व्यापक चैतन्यका सञ्चलना पूर्वक देहमें या पारदमें आकर्षण नहीं हो सकता यदि लम्बे अरसे तक प्रयत्न अत्यधिक किया जाय, तो भी बहुत कम आकर्षित होता है। इसी हेतुसे भस्म निर्माण और सत्त्व पातनकी विधि आचार्योंने दर्शायी है।

सत्त्व निकालनेका उद्देश्य विद्युच्छक्ति सह चेतना शक्तिका आकर्षण करना है। इस ओर पूरा लक्ष्य रख कर सत्त्व निकालना चाहिए। सत्त्वमें जितनी विद्युत् आकर्षित हुई हो, उतनीमेंसे अधिकांश योग्य क्रिया होनेपर विद्युत् पारद रूप माध्यममें आकर्षित हो जाती है। इस बातको ध्यानमें रखकर ग्रासमान चारण, गर्भ द्रुति और जारण क्रिया आचार्योंने की है। विद्युत् प्रधान सत्त्वमें अचिन्त्य वीर्य अवस्थित है, ऐसा प्रयोग करके आचार्योंने निर्णीत किया है।

सदेह होता है कि विद्युत् आकर्षित करनेका उद्देश्य आचार्योंने रखा था, यह कैसे विदित हो ? इसके उत्तरमें आचार्य श्री आचार्य देव गोविन्दपादाचार्य जी स्पष्टीकरण करते है, कि हमने सब काष्ठौषधि ओर धातुओंपर प्रयोग करके निर्णीत किया है, फिर रस-हृदयतन्त्रमें दर्शाया है, कि —

काष्ठौषध्यो नागे नाग वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्वे।
शुल्व तारे तारं कनके कनक च लीयते सूते॥

काष्ठौषधियां समस्त उद्भिज द्रव्योंके सत्त्वका आक-र्षण किसी भी धातुमें या पारदमें हो सकता है। एवं एकमेंसे दूसरोंमें नियमानुसार प्रयोगसे स्थापित कर सकते हैं। इसके लिए क्रमशः आगे गति करनेके लिए उद्भिजस्थ चेतनाको नागमे आकर्षित करे। फिर नागस्थ

चेतना द्रव्य सह उद्भिजस्थ चेतनाको वङ्गमें शुल्बमें, शुल्बसे तारमें और तारस्थ चेतना तथा काष्टौषधियां, नाग, वङ्ग, शुल्व आदिसे आकर्षित चेतना शक्ति सब को सुवर्णस्थ चेतनाके भीतर विलीन करें। तत्पश्चात् सुवर्णको पारदके साथ यथा विधि मिला कर सब चेतना शक्तिको पारदमें स्थापित करें। पारद अचिन्त्य वीर्यवान है। यह ससारमें सर्वोत्तम माध्यम है। इसमें चाहे उतनी शक्ति, रग, रूप, गुणधर्म आदिका आकर्षण करावें। फिर इच्छा होने पर प्रयोग करके दूसरे द्रव्यमें स्थापित करा देवें। धातुवाद और रसायनवाद, इसी नियमके आधारसे सफल हुआ है।

पारदके भीतर आकर्षित की हुई विद्युत, चेतना शक्ति, धातु-उपधातुओंके रंग, रूप, गुण-धर्म और बीज सब उससे वेधकालमें अन्यत्र मिला लेनेकी व्यवस्था करने पर दूसरे द्रव्य (कनिष्ट धातु या सामान्य पारद) में गुणधर्म आकर नूतन श्रेष्ठ धातु-स्वर्ण, रौप्य या रत्न निर्मित हो जाता है। यह प्रयोग सिद्ध है।

चैतन्यका विलय चैतन्यमें हो सकता है। विद्युत् में मिल सकती है। शेष प्रकृतिका जड़ अश, जो है। जिनकी रचना निसर्गने भेद युक्त बनाई है, वे एक दूसरेमें विलीन नहीं हो सकते। उतना ही नहीं, इन उपधातुओंको मूल रूपमें रहते हुए पारदमें मिलाने चाहे तो भी प्रकृतिका जड़ स्थूल अंश अन्तराय रूप होता है। उपधातुमें रही हुई चेतना शक्ति पारदकी चेतना शक्तिके भीतर आकर्षित होती है। इस हेतुसे सत्व पातन रूप मार्ग आचार्यों ने दर्शाया है। इसके भी तत्काल फल प्रद द्रुति मार्ग हैं, उसका विचार इस लेखमें नहीं कर सकेंगे।

जैसे भोजन करने पर ग्रासको पहले मुहमें चबाया जाता है, फिर आमाशयमें पचन होता है। तत्पश्चात सत्वाश रक्तमें आकर्षित होकर धातुओंके भीतर पचन होता है। इन क्रियाओंके भीतर मल, मूत्र, स्वेद और श्वसन क्रिया द्वारा भोजनका मल भाग बाहर निकल जाता है मात्र सत्व देह पोषक रूप रह जाता है। इसी तरह पारदको ग्रास देनेपर पहले चारण क्रिया जाता है। फिर गर्भद्रुति क्रिया की जाती है। तत्पश्चात् जारण क्रिया। इन क्रियाओंके समय जो उपधातु सत्व (या धातुओंकी भस्म) का ग्रास दिया हो, उनमेंसे मल भाग पृथक् होता है। जो विड़, भावना द्रव्यके साथ सम्मिलित होकर मिल जाता है। कुछ अश बाष्प हो कर उड़ भी जाता है। जारण क्रिया हो जाने पर पारद का वजन जो पहले था, वही मिलता है।

अभ्रक ग्रास, स्वर्णमाक्षिक सत्व ग्रास, सुवर्णभस्म आदिका ग्रास, शास्त्र विधिसे दिया जाता है। चारण, गर्भद्रुति और जारणकी जाती है। इन क्रियाओंमें ग्रासस्थ चेतना शक्ति हो, वही आकर्षित होती है, स्थूल अंश नहीं। पारद ससारमें ऐसा माध्यम है कि किसी भी धातु उपधातु की शक्ति, रंग, रूप ग्रहण कर लेता है। फिर बीज मिलाकर वेध करने पर जो ग्रहण किया है, वह सब सामान्य पारद या अन्य धातुको समर्पित करके उसका रूपान्तर करा देता है।

आचार्योंने सत्व पातन विधि स्पष्ट समझा समझा कर लिख दी है। फिर भी अनुभव न हो तो सत्व योग्य प्रकारका नहीं मिलता। रस हृदयतन्त्र आदि ग्रन्थोंमें कितनी मात्रा में धान्याभ्रक (या धान्याभ्रक की अर्ध जीवित भस्म) एव अन्य उपधातु एक समय में लेनी, क्या क्या द्रव्य मिलना, ये सब लिख दिये है। सत्व पातनार्थ वर्तमानमें हार्डकोक (पत्थरके प्रबल अग्नि देने वाले कोयले), विशेष वायु तेजीसे डालनेके मूस लिए विद्युच्चालित पंखे या हाथसे चलानेके बड़े पखे, आदि मिलते है। उन साधनोंसे कम परिश्रममें सत्व तैयार हो जाता है।

अभ्रक सत्व निकालने पर जब तक अभ्रकका द्रव होता रहेगा, तब तक ज्वाला पीली निकलती है। पूर्ण सत्व द्रवरूप बन जानेपर ज्वाला श्वेत-हो जाती है। उस समय मूसको नीचे उतार दी जाती है। अन्यथा सत्वांशमेंसे विद्युत् और चेतना शक्ति न्यूनाधिक अंशमें उड़जाते है। इसी तरह अन्य सत्व पातनार्थ

लक्ष्य रखा जाता है। यथार्थमें शास्त्रने सब लिख दिया है। फिर भी सद्गुरुकी सन्निधिमें क्रिया की जायगी, तोही पूरा संतोष मिल सकेगा।

रसशास्त्रकी क्रिया वैज्ञानिक है। थोड़ी भूल हो जायगी। क्रिया आगे पीछे होगी, अग्नि देनेमें न्यूनाधिकता होगी, तो परिश्रम निष्फल जायगा। आर्थिक हानि होगी और मनमें अश्रद्धा उत्पन्न हो जायगी। अत शास्त्र मर्यादाकी ओर आप सब साधक पूरा पूरा लक्ष्य देवें। और अनुभव करके विशेष आगे बढ़ें।

आधुनिक शिक्षा-दीक्षासे विभूषित आयुर्वेद के निष्णात रसशास्त्रमें प्रवेश न होनेपर भी उनकी औषधियां बनाने लगते है। फिर गुण धर्म पूरा प्रतीत न होने या अनुभवमें न आनेपर कह देते हैं कि शास्त्रकारो ने अतिशयोक्ति की है। मेरी बुद्धिने काम नहीं दिया, मैं कारण नहीं जान सका हूँ ऐसा बहुधा नहीं कह सकते। यथार्थमें पारद जहां पक्षच्छिन्न बुभुक्षित अधिक शक्तिशाली लेनेका विधान हो, उस स्थानपर सामान्य हिंगुलोत्थ पारद लिया जाय, तो कभी संतोष नहीं मिल सकेगा।

उदा० सोमनाथ ताम्र इस औषधिका निर्माण रसेन्द्र चूडामणि ग्रन्थके कर्ता श्री आचार्य सोमनाथने किया है। रसेन्द्र चूडामणि रसशास्त्रका ग्रन्थ है। आयुर्वेदका नहीं, ग्रन्थकारने पारदको दिव्य बनाकर अत्यधिक शोधन किये हुए ताम्रमें मिलानेका आदेश किया है। फिर भी वर्तमानके फार्मेसी वाले सामान्य शोधन वाला पारद और कोई हिंगुलोत्थ पारद मिलाते है। फिर गुण-धर्म दिव्य हो ऐसा चाहते हैं। मूल प्रयोग कारने सर्वोत्तम मधुर, दोषहर, वृष्य गुण भी दर्शाये हैं; ये गुण कैसे मिल सकेंगे।

सामान्य पारद लेने पर वह उड़ जाता है। अग्नि सहन नहीं कर सकता। पक्षच्छिन्न होगा, तो उसकी भी भस्म साथ साथ बन जायगी। उतना ही नहीं, ताल और शिलाका योग मिल जाने पर ही विशेषता आती है। गंधकके साथ पारद, ताल, शिला, तीनों उड़ जायगा, तो मात्र ताम्रका गुण शेष रह जायगा। मूल ग्रन्थोक्त सब गुण नहीं मिलेंगे। तुरन्त नव्य शिक्षा-दीक्षा वाले कह देते हैं कि यह तो मूल ग्रन्थकारने अतिशयोक्ति की है। हमारी बुद्धिने काम नहीं दिया है, यह स्वीकार नहीं करेगा।

ताम्रका शोधन भी केवल तैल, तक्र, गोमूत्र और कुलथीके क्वाथके भीतर ७-७ वार बुझावा देकर संतोष मान लिया जायगा, तो वह भी अनुचित है। दिव्य गुण लानेके लिए आचार्योंने कहे हुए विशेष शोधन करना चाहिए। वार वार बुझावा देने या शोधनार्थ अन्य प्रयोग करनेपर उसके भीतर प्राणिज और विभिन्न काष्ठौषधियोंके भीतर रही हुई चेतना शक्ति मिल जाती है। जो ताम्रको विशेष गुणप्रद बनाती है।

बिजलीमे प्रयोजित होने वाला विशुद्ध ताम्र है, ऐसा मानकर शोधन नहीं किया जायगा, या कम शोधन किया जायगा, तो सोमनाथी ताम्र घातक विष के समान हानि पहुँचाता है। इसलिए आचार्योंने सूचना रूप लाल झण्डी दिखलायी है।

यदि पारदमें अधिक गंधक जारण पहले हो गया हो तो प्रयोग कालमें समान गन्धक होगा, तो चल सकेगा। ताल, शिला, जो मिलाया जाता है, वह विशुद्ध शुद्ध लेना चाहिए अथवा सत्व निकाल कर लेना चाहिए। अशुद्ध नहीं मिलाना चाहिए। यदि सब द्रव्य श्रेष्ठ कोटिके लिए जाय फिर यथाविधि खरल किया जाय तत्पश्चात् निर्माण गर्भ यन्त्रमें अग्नि मूल आचार्य की आज्ञा अनुसार १२ घण्टेकी विधि पूर्वक दी जाय, तो गुण कितना अधिक मिलता है? यह परीक्षा करें। गुण-धर्म यथोचित दर्शाया है या अतिशयोक्ति है? ग्रन्थकारकी आज्ञा पालन करना, यह रस शास्त्र चाहता है।

उक्त विधि अनुसार रोगहर जो जो प्रयोग निर्माण किये जाय, वे सब इस तरह सम्हाल कर आचार्योंके

(शेष पृष्ठ ५५८ पर देखें)

श्री प्रेमशंकरजी, संचालक आयुर्वेदिक-विभाग राजस्थान

— का —

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन, कालेड़ा (अजमेर) द्वारा आयोजित पारद अनुसंधान

आदरणीय विद्वज्जन, सज्जनों एवं बहनो,

आज समस्त भारतमें पारद संस्कारोंको लेकर कुछ न कुछ काम पारद विशेषज्ञों द्वारा यत्र तत्र किया जा रहा है। कालेड़ा जैसे छोटे गांवमें पारद संस्कारोंका कार्य कुछ वर्षो से स्वामी श्री कृष्णानन्दजी ने अपने तत्वावधानमें आरंभ किया था और बम्बई निवासी पारद विशेषज्ञ श्री शान्तिलाल भाई को बुलाकर और भी प्रगतिका कदम आगे बढ़ाया। इसमें कोई संदेह नहीं कि १५०० वर्षो के बाद या नागार्जुनके बाद पारद संस्कारोंको लेकर इस प्रकार परिषदें आयोजित करने का लक्ष्य जो स्वामीजी द्वारा इस छोटे से गांवमें पूरा किया जा रहा है, यह आदर्श प्रमाणित होगा।

पारद अनुसंधान सम्मेलनके इस पवित्र अवसरपर यह प्रसन्नता है कि सभी स्थानोंके और सभी प्रान्तों के पारद विशेषज्ञ यहां आये हुए हैं। कनखलके श्री नारायण स्वामी और जामनगरके श्री वासुदेव भाई भी पधारे हैं। राजस्थानके भी प्रायः अधिक विद्वान् वैद्योंने इसमें भाग लिया है। पारद संस्कारोंको लेकर आप सभीके मस्तिष्कमें एक नई क्रान्ति हुई और एक नई विचार धारा आई और कई लोगोंको यह भी आशा हुई कि सिद्ध पारदसे असाध्य रोगोंपर विजय पानेका स्वप्न सम्भवत. इस सम्मेलन द्वारा पूरा हो सकेगा। कई लोगोंको इस अवसरपर सोना और चांदी बनानेके विज्ञानको जानने की अभिरुचि हुई। वस्तुस्थिति यह हुई कि आप सभी लोग दूर दूरसे इस आशासे पधारे कि पारद सम्बन्धी ज्ञान और क्रियाओंके सम्बन्ध में अब कुछ अच्छा परिचय मिल सकेगा। जहां तक पारद संस्कारोंकी जानकारीका प्रश्न है पारदकी यौगिक और उसके घटक पदार्थों की विज्ञताके सम्बन्धमें भी प्रकाश डालना असामयिक नहीं होगा। जहांतक प्राचीन रस विशेषज्ञोंकी मान्यताका प्रश्न है, पारदमें सभी मौलिक तत्वोंका थोड़ी अधिक मात्रामें समावेश है और उसमें सभी धातुओंका संगठन भी उपलब्ध होता है। प्रयोगशालाओं द्वारा भी यह सिद्ध किया जा चुका है कि पारदमें प्रायः सभी धातुयें उपलब्ध होती है, जैसे कि:—

काष्ठौषध्यो नागे नागो वंगे वंगमपि, शुल्वे शुल्वं तारे-तारं कनके कनकं च लीयते सूते।

इससे यह मनन करनेके लिये काफी गुंजाइश है कि प्राचीन विद्वानोंको भी पारदमें पाये जाने वाले घटकोंका ज्ञान परिष्कृत रूपमें था। यही कारण है कि पारदको योगवाही माना है। और उसको विषैले पदार्थों एवं रोगोत्पादक जन्तुओं से रक्षा पानेका एक विशिष्ट आवरण भी माना है। पारदका संयोग जिस किसी वनस्पतिके साथ किया जाता है तो उस वनस्पति का चिरस्थायित्व हो जाता है। लम्बे समय तक वह वनस्पति पारदके संयोगसे नष्ट नहीं हो सकती। इन विशेषताओंपर ध्यान रखते हुए नागार्जुन आदि आचार्यों ने पारद संस्कारोंपर विशेष प्रकाश डाला और पारदमें पायेजाने वाले दोषोंको मिटानेके लिये और उसमें उत्कृष्ट गुणोंके समावेशके लिये संस्कारोंकी प्रक्रियायें आविष्कृत कीं।

प्रसन्नता की बात है कि यहां इन संस्कारोंपर काफी प्रयत्न किया जा रहा है। सफलता कितनी मिल रही रही है यह परिणाम बतायगा, परन्तु आठ संस्कार यहां करवाये गये हैं और अब जारण संस्कारकी तरफ अधिक ध्यान दिया जा रहा है, यह अधिक गौरव की बात है।

जारणके सम्बन्धमें कई विद्वानोके कई तरहके मत हैं। कई लोग संस्कारित पारदमें २-३ बर्क या इस से अधिक बर्क मिला कर यह मान लेते है कि पारद बुभुक्षित हो गया और जो स्वर्णपत्र उसमें मिल चुके हैं वे उसमें जीर्ण हो चुके हैं। यह एक जारणका सीधा अर्थ प्रचारित करते हैं और लोगोको विश्वास भी कराते हैं। यह कोई जारणाका सही अर्थ नहीं है, ऐसे तो बाजारु पारदमें भी इस तरहकी क्रियाए की जा सकती है। जारणा का स्पष्ट अर्थ यह है कि आठ संस्कारोके बाद पारदमें खास तरहके विषो द्वारा क्षारीय गुणोंसे पारदका मुख तैयार किया जाता है अर्थात् इस क्रियासे पारदके सूक्ष्मसे सूक्ष्म अणु इस योग्य हो जाते है कि उसमें दूसरी धातु अर्थात् सोना या चांदी आदिका खास विधिसे बनाया हुआ ग्रास नियत मात्रामें देने पर उस ग्रासका जलीय द्रव बन कर पारदके अणुओंमें मिल जाता है और मुख्य पिंडो के साथ तप्त खरलमें घोटनेपर ग्रास रूपमें किये हुए धातुका विलयन हो जाता है। ऐसी स्थितिमें संस्कारित पारद पर सबसे पहले जो ग्रास जारित किया जाता है, वह पारदकी अपेक्षा ६४ वां हिस्सा ग्रास व अन्य धातु का डाला जाता है। इस ग्रासके जीर्ण होने पर पारद को अच्छे कपड़ेसे छान लिया जाय, चाहे उस को किसी भी तरहके पातन यन्त्रसे उड़ा लिया जाय, चाहे उसको अग्नि पर ही रख लिया जाय। पारदसे सुवर्ण किसी भी दशा में अलग नहीं हो सकता, जब कि साधारण परिस्थितिमें सुवर्ण या चांदीका ग्रास मोटे कपड़ेसे छानने पर या पातन यन्त्रसे उड़ाने पर पारद से अलग हो जाया करता है। यह जारणा संस्कारकी सफलताका द्योतक है। किसी भी दशामें सुवर्ण या रजतका दिया हुआ ग्रास पारदसे किसी भी दिशामें अलग नहीं होगा। जैसा कि जारणाके लक्षण प्रसग में रस विशेषज्ञोंने यह लिखा है—

जारणा हि नाम पातन गालन व्यतिरेकेण घन हेमादिग्रासपूर्वकपूर्वावस्थाप्रतिपन्नत्वम्।

(रसेन्द्र चिन्तामणि)

इससे यह समझनेमें कठिनता नहीं होगी कि इस प्रकार ग्रास का जारण अनेक बार अलग अलग परिमाणमें किया जा सकता है। अभी तक आचार्योंने जिस परिमाणमें भी जारण किया है क्रमशः पारदकी अपेक्षा ६४वां, ३२वां, १६वां, ८वां और चतुर्थांश परिमाणमें भी जारण किया है। इसी प्रकार जारणा संस्कारके सहयोगके लिये सारण, चारण, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, रंजन आदि सस्कार काममें आते हैं जो ८ संस्कारोंके बाद काममें लिये जाते है। इसी प्रकार जारणाके बाद पारदका बन्धन माना गया है; जो एक महत्त्व पूर्ण संस्कार है। जैसा कि—

"स्वाभाविक द्रवत्वे सत्यपि वह्निना,
अनुछिद्य मानत्वं बन्धनं।"

बन्धन संस्कारके बाद पारदमें अभ्रसत्वके जारण की शक्ति पैदा हो जाती है और इस प्रकार पारदमें डाले हुये सुवर्ण ग्रासका जब जारण होता है तो उस की दो क्रियाए सम्पन्न होती है, पहली देह सिद्धि और दूसरी लोह सिद्धि। देह सिद्धि इस लिये कि साधारण परिस्थितिमें किसी भी खनिजका शरीरकी धातुओंमें अन्तर विलियन पूरा नहीं हो सकता। अतः धातुओ से बनाई हुई भस्मोंसे कई बार वाञ्छित लाभ नहीं देखा जाता बल्कि कई बार यदि भस्में ठीक नहीं बन सकी तो उन धातुओका विषाक्त प्रभाव भी शरीरमें होता है। इसके लिये वनस्पतियोके जो खनिज हैं वे अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं अपेक्षाकृत बाह्य खनिजों के। पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणकी कमीसे जब वनस्पतियोंमें खनिज पूरी मात्रामें आकर्षित नहीं हो पाते तो उनकी क्षति पूर्ति करनेके लिये नागार्जुन आदि आचार्योंने

धातु खनिजोंसे पारदके द्वारा शरीरकी धातुओंमें अन्तर विलियन करनेकी क्षमता देने की प्रक्रियाऐं रस चिकित्सा शास्त्रके द्वारा प्रारम्भ की जिससे कष्ट साध्य रोगों में भी इस पद्धतिके द्वारा एक आशुचमत्कार पूर्ण प्रभाव अनुभवमें आने लगा। अतः शरीरको ओर शरीरके समस्त घटकोंको उन २ खनिजोंके तत्वोंसे परिपूरित करनेके लिये ऐसे जारित पारदके द्वारा आजीवन तरोताजा बनाये रखना असम्भव नहीं है।

भगवत् गोविन्दपादाचार्यने इसी सिद्धान्तके आधार पर स्वस्थ शरीर होनेपर मनको सुस्थिर होना माना है और सुस्थिर मनके द्वारा योगाभ्यासकी क्रियाऐं मोक्ष मार्गकी और लेजानेमें सक्षम होती हैं। इसी तरह मनोबलके दृढ़ीकरणके लिये भी शरीर संपत् सुस्थिर करनेके लिये जारित पारदका बहुत बडा स्थान है। यह देह सिद्धिका एक बहुत बडा उपादान भी है। लोह सिद्धिके सम्बन्धमें जैसा कि शास्त्रोंमें वर्णन है इसी तरह अनेक ग्रासोंसे जारण किये हुये पारदमें ताम्र आदि धातुको सुवर्ण और चांदीके रूपमें परिवर्तित करनेमें १०० गुनी, १००० गुनी और लाख गुनी शक्ति पैदा हो जाती है। ऐसी शक्ति वाले पारदको शतवेधी, सहस्रवेधी और लक्षवेधी पारदके नामसे लक्ष्य किया जाता है।

पारदके संस्कारोंका एक ऐसा विषय है कि प्रथम तो मौलिक अर्थमें समझना कठिन है, यदि समझ लिया तो उन कार्योंको करनेके लिये प्रवृत्त होना कठिन है। प्रवृत्त होनेपर भी समय समयपर होने वाली असफलताओंसे पथभ्रष्ट होनेसे लम्बे समय तक इस अभियानमें लगे रहना साधकोंके लिये और भी असंभव हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राचीन आचार्योंने इस सम्बन्ध में किसी लक्ष्य तक पहुँचनेका अवश्य प्रयत्न किया है, परन्तु कई लोग इसके महत्वको नहीं पहचान कर क्रिमियागिरीमें ही अपने आपको सफल मानने लग गये जैसा कि:—

कृपणा प्राप्य समुद्रं वराटिका लाभसंतुष्टा।

अतः इस दिशामें साधकोंको जीवन मरणकी बाजी लगाकर अपने समस्त स्वार्थोंकी आहुति देकर विश्व कल्याणके लिये:—

सिद्धे रसे करिष्येहं निर्दारिद्रय मिदं जगत्।

के पवित्र लक्ष्यको रखते हुए रस संस्कारोंके अनुसंधानमें युगो तक लगना आवश्यक है तभी सफलता मिलना सभव है।

साधकोंको प्रायः कई बार यह अनुभव होता है कि उनको इस विषयमें पूरा सहयोग प्राप्त नहीं होता। जब कभी सहयोगकी आशा धन कुबेरोंसेकी जाती है तो वहां उपस्थित हमारे ही बन्धु कई तरहकी मजाक उडाते हैं और यह कहते हैं कि क्या जारण सस्कार हो चुका। मुझे दुःख होता है उनकी बुद्धि बलपर कि जो जानते हुए इस तरहके उपहासकी प्रक्रिया उन दाताओंके सामने रखते हैं, आयुर्वेद कैसे उठ सकता है। अस्तु. इस गम्भीरतामें जानेकी आवश्यकता नहीं है जब विदेशोंमें एक रोग विशेषकी औषधिपर ही लाखो डोलर प्रति वर्ष खर्च हो जाते है और नियमित असफलताओपर भी वहां कोई ऐसा प्रश्न नहीं करता। परन्तु लम्बी गुलामीमें रहनेके कारण हम लोग खुले मस्तिष्कसे सोचने और करनेके आदि नहीं रहे। अस्तु सम्बन्धित विषयमें अधिक कहना अप्रासगिक होगा। वस्तुस्थिति यह है कि आज स्वतन्त्र भारतमें राज्य और प्रजाके सहयोगसे हमको अपने प्राचीन महर्षियो के मार्गपर चलकर पारद संस्कारोंके सम्बन्धमें भी सफलता प्राप्त करनी है।

यह गौरवका विषय है कि कालेड़ा कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन द्वारा इस दुरुह कार्यको हाथमें लिया गया है और वे अन्धकारमें भी आगे बढ़नेका प्रयत्न कर रहे हैं। यदि वे दृढ़ निश्चयके साथ उत्साह सहित आगे बढ़ते रहे तो एक दिन वह निश्चित आयगा कि प्रजा और राज्यकी सहायता उनके दरवाजेपर आकर दी जायगी। कोई भी राज्य विज्ञानकी समृद्धिकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

जहां तक राज्य सरकारके सहयोगका प्रश्न है, यदि किये गये कार्योंका नियमित और व्यवस्थित रेकार्ड रखा गया तो ऐसा कोई कारण नहीं कि सरकार भी ऐसे कार्योंकी सफलतापर सहयोग करने का कोई निर्णय नहीं ले।

आप लोग सभी प्रान्तोंसे यहां उपस्थित हुए हैं। राजस्थानमें किये जाने वाले इस कार्यके सम्बन्धमें आप अपने ज्ञान अनुभव और सद् भावनासे इस कार्य में पूरी सफलता दिलानेके लिये पूर्ण सहयोग देनेका प्रयत्न करेंगे। इस आशाके साथमें राजस्थान सरकार और यहांके वैद्य बन्धुओंकी ओरसे आप लोगोंका सच्चा स्वागत करता हूँ।

— रस शास्त्रमें प्रवेश —

(पृष्ठ ५५४ का शेष)

कथन अनुसार किये जायेगें, तो वैद्योको काफी यश मिल सकेगा। औषधियां रामवाणके समान कार्यकर सकेगी।

पारदमें अभ्रकका जारण होनेपर पारद पक्षच्छिन्न हो जाता है। फिर सुवर्णका रस हो, उतनी गरमी देने पर भी नहीं उड़ सकता। पहले कुछ अधिक द्रव रूप बनता है, फिर अधिक काल तक अग्नि दी जायगी। तो भस्म रूप बन जायगा। विनाश नहीं हो सकेगा। जो भस्म बनती है, वह मृत नहीं होती है। उसमें दिव्य शक्ति बनी रहती है। इसी हेतुसे पारद भस्मका यथा विधि सेवन करने पर वृद्धावस्थाकी निर्वलताको दूर कर देहको सबल बना देता है।

पारदमें यथा विधि सुवर्णका ग्रास देने पर पारद बुभुक्षित होता है। फिर धातुओंको खानेकी चेतना शक्ति, आकर्षणकी शक्ति बढ़ जाती है। किन्तु वर्तमान में जो भ्रामक मान्यता फैली है कि पारद सुवर्णको पूर्णांशमें खा लेता है, वह रस शास्त्रकी क्रियाका अनुभव मिलनेपर सत्य विदित हो सकता है। उक्त भ्रामक मान्यता विद्यार्थियोंकी ही नहीं है आयुर्वेदके निष्णात महारथियोंको भी होती रहती है।

आयुर्वेदके कई विद्वानोंसे रसशास्त्रकी क्रियाके संबंध में वार्तालाप होती है, तब प्रश्न, तर्क और सदेह बालक वत् भासता है। जैसे न्याय शास्त्रके प्राथमिक ग्रन्थ "तर्क संग्रह" के आरम्भमें ही बालानां सुखबोधाय क्रियते संग्रहो मया अर्थात् बालकोंका न्याय शास्त्रमें सरलतासे प्रवेश हो इस हेतुसे तर्क संग्रह लिख रहा है। बालक किसे कहते हो, तो उत्तर मिलता है कि व्याकरण शास्त्र अधीत हो, ऐसे सुबोध मनुष्यको यहां बालक कहा है। चाहे छोटी आयु हो, चाहे बड़ी। न्याय शास्त्रमें प्रवेश करने वाले सब अज्ञानी बालक ही हैं। इसी तरह रस शास्त्रमें प्रवेश करनेकी इच्छा वाले भिषगाचार्य. आयुर्वेदाचार्य आदि सब बालक ही है। रस शास्त्रको आयुर्वेदका अंग मानने पर भी पृथक् शास्त्र है। इसके पारिभाषिक शब्द, सांकेतिक शब्द विधि, क्रिया आदिमें काफी भेद है। आयुर्वेदके जो महारथी बुद्धि बलसे रस शास्त्रको समझ सकते हैं, या समझ लिया है वे सब भूलमें हैं। क्रिया करनेपर अनेकोंको पश्चात्ताप हुआ है एवं आर्थिक हानि सहन करनी पड़ी है। अनेकोंने अपना स्वास्थ्य भी बिगाड़ा है एव आजीवन रोगको धारण कर लिया है।

रस शास्त्रकी क्रिया करनेके पहले जो महत्वकी सूचना चाहिए, वे इस लेखमें ही है और प्रवेशेच्छु साधकको पथप्रदर्शन किया है। इन सबके ऊपर लक्ष्य देकर सद्गुरु शरण करें। श्री हरि आपको अनुभव करावें और आगे यश और धनकी प्राप्ति भी करावें, यह हृदयसे चाहता हूँ। इति शम्।

अ० भारतवर्षीय पारद अनुसंधान सम्मेलन-प्रदर्शनी में

प्रस्तुत, रस-रसायन तथा धातुवादोपयोगी

कतिपय सिद्धप्रयोग

★★★★

१. **मनःशिला**—मैनशिल मोमिया, मैनशिल तैल, मैनशिल सत्व काला, सत्व रक्त, सत्व मृदु, ५ प्रकारके अन्य सत्व, मैनशिल सत्वपुष्प, शिलासिन्दूर, शिलासिन्दूर (पीत) शिलाचन्द्रोदय।

२. **हरताल शुद्ध**—हरताल मोमिया, हरताल तैल, हरताल सत्व ६ प्रकार, हरताल सत्व (कृष्ण,) हरताल काच, हरताल भस्म (कृष्ण) उष्ट्रास्थिसे, हरताल भस्म (श्वेत) उष्ट्रास्थिसे, अग्निस्थायी हरताल, पारद हरताल मिश्रण (धतूरेके रससे), ताल चन्द्रोदय तालपर्पटी, तालसिन्दूर वगयुक्त, हरतालभस्म, अपामार्गसे (श्वेत व पीत) हरताल पीतपुष्प।

३. **सोमल श्वेत शुद्ध**—सोमल मोमिया, सोमल तेलके २ नमूने, सोमल श्वेत गर्भ सोमल सत्व न० १ व न० २, मल्ल भस्म मल्ल चन्द्रोदय, मल्ल सत्व (वत्सनाभसे) मल्लसत्व (हरिद्रासे), मल्ल चन्द्रोदय तलस्थ, मल्ल चन्द्रोदय (गलस्थ), मल्ल चन्द्रोदय पर्पटी योग्य, मल्ल चन्द्रोदय (गधक अभ्रक जारण युक्त) मल्ल श्वेत पुष्प, मल्ल पुष्प कलमीशोरासे, मल्ल पुष्प श्वेत न० २।

४. **सोमल पीत**—पीतसोमल तैल, पीतमल्ल सत्व न० १, न० २, पीतमल्ल पुष्प न० १ तथा पीतमल्ल पुष्प न० २।

५. **गन्धक आमलासार**—गधक पर्पटी, गधक पुष्प न० १, गधकपुष्प न० २, निर्गन्ध गन्धक, गन्धक श्वेत।

६. **तुत्थ**—तुत्थमोमिया-तुत्थ सत्व न० १, न० २, न० ३, न० ४, तुत्थसे ताम्र निष्कासन नं० १, न० २, तुत्थ सत्व (रजक) तुत्थ भस्म, तुत्थभस्म (करज तैलसे), तुत्थ सत्व (शीतल प्रयोगसे), तुत्थ सत्व न० ५।

७. **वज्राभ्रक**—वज्राभ्रक सत्व (कृष्ण) अभ्रंक सत्व न० १, न० २, न० ३, न० ४, नं० ५, न० ६, वज्राभ्रक श्वेत सत्व, वज्राभ्रक सत्व (पीत), वज्रकृष्णाभ्रक सत्व।

८. **भूनाग**—भूनाग सत्व प्र० १, प्र० २।

९. **नृसार**—नृसार तैल, नृसारपुष्प प्र० १, प्र० २, प्र० ३।

१०. **सज्जीक्षार**—सज्जीक्षार पुष्प प्र० १ प्र० २, प्र० ३।

११ **स्वर्णमाक्षिक**—सुवर्णमाक्षिक सत्व प्र० १, प्र० २।

१२. रौप्यमाक्षिक—रौप्यमाक्षिक सत्व प्र० १, प्र० २, प्र० ३, प्र० ४, प्र० ५ (चन्द्राभ) प्र० ६ (धातु ताम्र), रौप्यमाक्षिक काच, विमल काच।

१३. सौभाग्य—अग्निस्थायी सौभाग्य, सोभाग्य काच, सौभाग्य श्वेत काच चूर्ण।

१४. नीलांजन—नीलांजन सत्व (सीसा-रूप) प्र० १, प्र० २, प्र० ३।

१५. कलमीशोरा—कलमीशोरा (अग्नि स्थायी), कलमीशोरा पुष्प, कलमीशोरा अग्निस्थायी (सोमलसे)।

१६. फिटकरी—फिटकरी सत्व प्र० १, प्र० २, प्र० ३।

१७. गंधाविरोजा—गधाविरोजा पुष्प।

१८. हिंगुल—हिंगुल मोमिया, हिंगुलोत्थ (पारद) भस्म, हिंगुल भस्म (श्वेत) हिंगुल भस्म (अपामार्गसे), हिंगुल गुटिका अर्कसे, हिंगुलसत्व (पारा)।

१६. पारद—हिंगुलोत्थ पारद सत्व, १ स्वेदन सस्कार, २ मर्दन सस्कार, ३ मूर्च्छन सस्कार, ४ उत्थापन सस्कार, ५ पातन सस्कार, ६ बोधन सस्कार, ७ नियमन सस्कार, ८ दीपन सस्कार किये हुये ८ प्रकारके पारद।

१ अष्ट सस्कृत षड्गुण बलिजारित कृष्ण पारद (सरसो तैलसे)।

२ अष्ट संस्कृत षड्गुणबलि जारित पारद

३. बांसके रससे शुद्ध पारद।

४ बुभुक्षित पारद।

५ स्वर्णजारित पारद।

६ पक्षच्छिन्न पारद।

७ पक्षच्छिन्न पारद पीत।

पारदके ११ प्रकारके बन्ध—१ हठबन्ध २ खोटबन्ध, ३ पिष्टीबन्ध, ४ पोटबन्ध, ५. क्रियाहीनबन्ध, ६ कल्कबन्ध, ७ आभास बन्ध, ८ कज्जली बन्ध, ९ सजीवबन्ध, १० क्षारबन्ध, ११ खर्परबन्ध, १२ प्याजी-बूटी बद्ध पारद गुटिका, १३ मूलौषधिबद्ध गुटिका।

जैतून तैल मर्दित पारद, अलसी तैल मर्दित पारद, ज्योतिष्मती तैल मर्दित पारद, जैतून तैल मर्दित पारद, २० गुण गन्धक जारित पारद, कृष्ण पारद, रजक पारद स्वर्ण माक्षिक से, वनौषधि द्वारा शुद्ध पारद।

हरताल योगसे अग्नि स्थायी पारद, तमालपत्रसे पारद भस्म, यशदसे पारद भस्म, स्वर्णमाक्षिकसे पारद भस्म, लज्जालुसे पारद भस्म, रससिंदूर, तलस्थ चन्द्रोदय, हिरण्य-गर्भ पोटलीरस।

घृत—गधक घृत।

तैल—मत्स्यशार्क तैल, रजक पित्त तैल, ज्योतिष्मति तैल रंजक, अपामार्ग तैल, नृसार तैल, श्वेतमल्ल तैल।

क्षार—प्रतिसारणीय क्षार, क्षारयुक्त बिड न० १, बिड न० २, बिड नं० ३।

बिड—कृष्णाभ्रक द्रुति (जल)।

(शेष पृष्ठ ५६४ पर देखें)

अ० भा० पारद अनुसन्धान सम्मेलन प्रदर्शिनी भवन में

बायेंसे दांये—वैद्य श्री मिश्रीप्रसादजी, वैद्य श्री बद्रीनारायणजी, श्री महेन्द्रकुमार, उपस्वास्थ्य मंत्री श्री भीखाभाई, श्री प्रेमशंकरजी डाईरेक्टर वैद्य श्री शान्तिलालजी, श्री युवराजकुमार कोटा. दरबार साहब सावर, निरीक्षक श्री लक्ष्मीनारायणजी आसोपा

अ० भा० पारद अनुसंधान सम्मेलन में
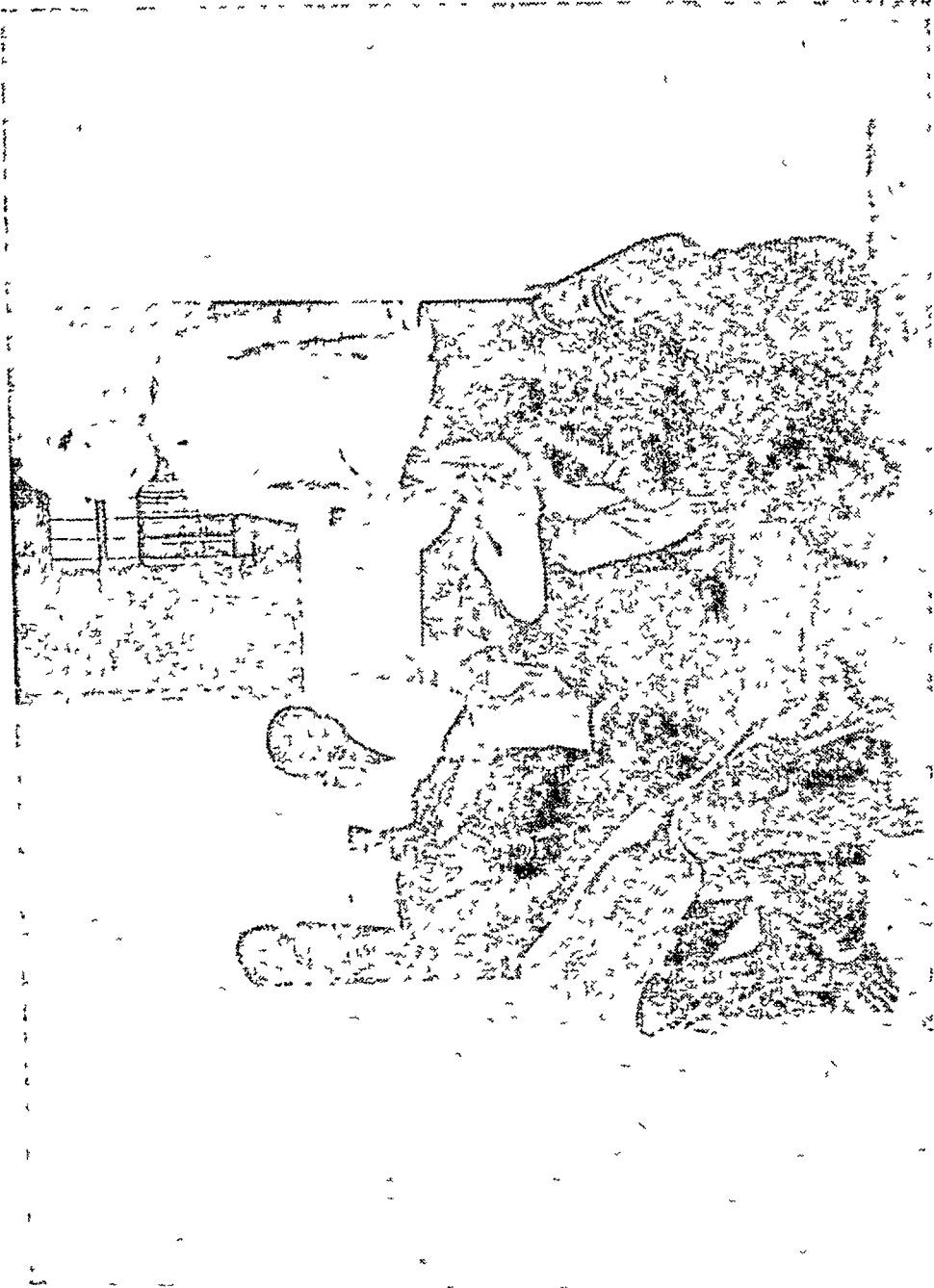
डॉ० श्री लाल भाई भट्ट बम्बई, दंत चिकित्सा विशेषज्ञ सूची वेध करते हुये

रसविद्या तथा ब्रह्मविद्या

[लेखक—शिवनारायण पनपालिया]

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥

श्रद्धा और विश्वासके स्वरूप श्री पार्वतीजी और श्री शंकरजीकी मै वन्दना करता हूँ, जिनके विना सिद्धजन अपने अन्तःकरणमे स्थित ईश्वरको नहीं देख सकते ।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥

ज्ञानमय, नित्य, शंकररूपी गुरुकी मै वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होनेसे टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है ।

श्री गुर पद नख मनि गन जोती ।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिंय होती ॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू ।
बड़े भाग उर आवइ जासू ॥

श्री गुरुमहाराजके चरण-नखोकी ज्योतिमणियों के प्रकाशके समान है, जिसके स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है । वह प्रकाश अज्ञान-रूपी अन्धकारका नाश करने वाला है; वह जिसके हृदयमें आजाना है, उसके बड़े भाग्य हैं ।

उघरहिं विमल विलोचन ही के ।
मिटहिं दोष दुख भव रजनीके ॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक ।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ॥

इसके हृदयमें आते ही हृदयके निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसाररूपी रात्रिके दोष दुःख मिट जाते है । एवम् श्रीरामचरित्ररूपी मणि और माणिक्य गुप्त और प्रगट जहां जो जिस खानमें हैं, सब दिखाई पड़ने लगते है ।

जथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान ॥

जैसे सिद्धांजनको नेत्रोंमें लगाकर साधक सिद्ध, और सुजान पर्वतो, वनो और पृथ्वीके अन्दर कौतुक से ही बहुतसी खाने देखते हैं ।

योग्य गुरुसे अधिकारी शिष्यको दृष्टि प्राप्त होती है । तथा वह अपने अन्तर्तम आत्माको जान सकता है । समस्त विश्वके गर्भमें जो अन्तःप्रवाही पदार्थ है, उनको भी जान सकता है । आन्तरिक रहस्य या रसवेत्ता हो सकता है । हमारे देशमें जो भी विद्याएं हैं, उनमें प्रवेश होनेकी यह प्रथम कुञ्जी है कि हम योग्य अधिकारी बनकर यमनियमोका पालन करके शुद्ध भावसे उनमें प्रवेश करे । शुद्ध अन्तःकरण से प्रविष्ट होनेपर ही हमें रहस्य उद्घाटन होगा ।

पाश्चात्य संस्कृतिमे जो भी वैज्ञानिक है, उनका भी आचरण इसी भूमिकापर है । किन्तु वे परमात्म-तत्व तक घुसते नहीं, न ही उनकी विचारधारामें आचरणपर उतना जोर है जितना हमारे यहां । नतीजा यह होता है कि वे अणुवादमें प्रवेश करके अस्त्रास्त्र निकालते हैं, मगर वे ही अस्त्र संसारमें घातक सिद्ध होते हैं, सहायक कम । महाभारतमें योग और मन्त्र-विद्यासे अनेक अस्त्र और शस्त्रोंकी उत्पत्ति मिलती है जो हमारे मनोबलका दिग्दर्शक है । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय जीवनमें तपस्या

योग तथा परम तत्वका अनुसधान यही प्रमुख है। पार्थिव जीवनको मूल शिवतत्व तथा शक्तितत्व तक जोड़ा जाता है। प्रगतिके पथपर ऐहिक सुखोकी प्राप्ति करते हुए पारमार्थिक सुखोंकी भी प्राप्ति निहित है।

हमारे योगशास्त्रमें चित्तकी वृत्तियोंका निरोध करते हुए मनोबलकी प्राप्ति, नानाविध सिद्धियोकी प्राप्ति तथा अन्तमें सर्वश्रेष्ठ ईश्वरकी प्राप्ति निर्दिष्ट है। वैसे ही रसविद्यामें अनेक विध शक्तियोकी प्राप्ति देह को अजरत्व और अमरत्वकी प्राप्ति, बलकी प्राप्ति निहित है। लक्ष्य यह है कि जीवन बलकी प्राप्तिके बाद भोगमय न बनकर मोक्षकी ओर अग्रसर होवे। भोगसे मनुष्यका बल क्षय होता है। मोक्षसे बलका सवर्धन होकर वह परमानन्दको प्राप्त होता है। जीवन स्वार्थी न रहकर जनकल्याणके लिये ढलता जाता है। सेवारूप बनता है।

भारत सनातनकालसे ब्रह्मविद्या प्रधान देश है। "अध्यात्मविद्या विद्यानाम्" समस्त विद्याओमें अध्यात्मविद्या ही यहां प्रधान मानी गई है। संसारके समस्त दुःखोकी आत्यन्तिक निवृत्ति तथा परम आनन्दप्रद परमात्म स्वरूपकी प्राप्ति याने मोक्ष प्राप्ति ही यहांके जीवनका परम लक्ष्य है। शास्त्रीय विवेचनोमें जिन-जिन विद्याओका वर्णन हमारे ग्रन्थोमे आता है, उन सभीका लक्ष्य मोक्ष है। ब्रह्मविद्या इस लक्ष्यकी ओर सीधा राजपथ है। ब्रह्म ही उसका प्रतिपाद्य विषय है। अन्य विद्याऐं ऐहिक उन्नतिके साथ साथ मनुष्यको उन्नत करते हुए मोक्षके योग्य अधिकारी बनाती है। और अन्तमें परम ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति कराती है- "ऋते ज्ञानान्नमुक्ति."।

सत्‌चित् आनन्द घन परब्रह्म परमात्मा एकमेव था, है और रहेगा। 'सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन्' एकमेव परब्रह्मका प्रतिपादन तथा नानात्वका निषेध यही ब्रह्मविद्याका प्रतिपाद्य विषय है। 'ईशावास्यमिदम् सर्वम् यत्किञ्च जगत्याम् जगत्" निर्गुण निराकार, अव्यक्त परब्रह्म स्वरूप है। वही सगुण साकार और व्यक्त विश्वमें ओत प्रोत है। उसीने अपनी माया शक्तिको अंगीकार करके अपने आपको ढांक रखा है।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥

इसी मायाशक्तिका आवेष्टन होनेके कारणसे परमात्मस्वरूप हमारी नजरमें नहीं आता। किन्तु उस परमात्माकी ओर लक्ष्य जानेसे बाह्यसे अन्तरकी ओर प्रविष्ट होनेसे, अन्ततम, गुह्यतम परमात्म स्वरूपमें लीन होनेसे अपने आपको उसीपर प्रयत्न करनेसे उसकी प्राप्ति है।

दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥
एषा ब्राह्मीस्थिति पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ॥

रसहृदयतन्त्रमें आचार्य श्री गोविदपादाचार्यने रसविद्याका अत्यन्त सरल तथा मार्मिक विवेचन किया है। आद्य श्री शंकराचार्यने ब्रह्मविद्याका निरूपण किया है। महान् शिष्यके महान् गुरूने रसविद्यापर अधिकारी वाणीसे पुरातन रसविद्याको नवीनतम सरल स्वरूप दिया है। जैसाकि आचार्यने पुरातन आध्यात्मविद्याको नवीनतम सरल स्वरूप दिया है। "रसोवैसः" वह परमात्मा परम आनन्दमय है, इसी मूल भीतिपर रसविद्याकी शुरुवात है। रसविद्या का प्रतीक पारद है। हरगौरी रस इसका प्रधान है। शंकर पार्वती ही इसके आराध्य दैवत् हैं। हरगौरी रसके निर्माणसे देहसिद्धि तो है ही, किन्तु हरगौरी शकरपार्वतीकी प्राप्ति भी है। इसीलिये यह विद्या भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी है।

ब्रह्मविद्यावादी जहां संसारको मायामूलक, अज्ञानजन्य मानकर इसके अस्तित्वको ही स्वीकार नहीं करते। व्यावहारिक सत्तामें सत्य मानते हैं, परमार्थ

सत्तामें अस्तित्वहीन। रसशास्त्रवेत्ता जगतको सत्य मानकर चलता है। अन्तमें वह भी इसको शिव-शक्तिमय मानता है। शक्ति या मायाके विवेचनमें प्रथम रूपमें भेद दृष्टिगोचर होता है, किन्तु आगे जाकर यह भी अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति ही है। इसके साथ-साथ रसशास्त्रवेत्ता जगत्का प्रथम निराकरण न करके इसको शिवशक्तिका ताण्डव नृत्य समझे, तो जगत् दुखदायी न रहकर परम आनन्दमय बन सकता है।

इस अखिल ससारको दरिद्रता एवम् रोगोंमे व्याकुल देखकर श्री शंकर भगवानके हृदयमे रसरूपिणी करुणा निकली। यह रसविद्या तथा पारदविद्या का मूल है। पारदके सेवन द्वारा देहको सुदृढ बनाकर ध्यानाभ्यास वालोंकी वृत्तिको एकाग्र और निरुद्ध करा, सुषुम्नाके भीतर अव स्थित ब्रह्मग्रंथि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि इन तीनोंका भेदन करा निर्विकल्प समाधिकी प्राप्ति कराती है। मस्तिष्कस्थ गगन मडल में स्थित शिवस्थानमें पहुँचाती है। पारद स्वयं मूर्छित होनेपर रोगोंको दूर करता है। बन्धनमें आकर रोगों से मुक्त करता है। और स्वय मिटकर औरोंको अमर कर देता है। यह दयावान पारद ही रसविद्याका प्रतीक है।

मूल लोह आदि सभी धातु स्वयं अस्थिर स्वभाव वाली है, जलने, भीगने और सूखने आदि क्रिया द्वारा विनाश होने वाली होनेसे देहकी स्थिरताका संरक्षण करनेके लिये समर्थ नहीं है। मात्र 'पारद' रसराज एक ही धातु देहको अजरामर करनेको समर्थ है।

> काष्ठौषध्यो नागे नागं वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्वे।
> शुल्वं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते ॥

काष्ठौषधियां सीसेमें, सीसा वंगमें, वंग ताम्बेमें, ताम्बा चांदीमें, चांदी सोनेमें और सोना भी पारेमें लीन हो जाता है। पारद हर (शंकर) वीर्य होनेसे अविनाशी है। पारदमें समस्त काष्ठौषधियां, धातुलीन होते हैं। यह पारदके अष्टादश सस्कारो द्वारा सिद्ध है। या अन्य धातुओंके साथ पारदके संस्कार हो कर जो उन उन धातुओंके सत्व निकाले जाते हैं, वे भी बहुत उपयोगी है। याने रसराज पारदमें सभी धातु निहित है। उनका विश्लेषण (पृथक्करण) करके देहके लिये अनेक उपयुक्त औषधियोंका निर्माण होता है।

> परमात्मनीव नियतं भवति लयो यत्र सर्व सत्वानाम्।
> एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥

जिस प्रकार ज्ञान प्राप्ति होनेसे नियत समयपर सम्पूर्ण तत्वों (आत्माओं) का परमात्मामें लय होता है उसी प्रकार रसराज पारदमें पञ्चभूतात्मक सर्वतत्वो (काष्ठ-औषधि, सर्वधातु, उपधातु आदि)का विलय होता है। अत' रसराज पारद ही सर्वगुणयुक्त होनेसे देहको अजरामर करता है।

> अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्तौ योगिनो यथा लीनाः।
> तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः ॥

योगीजन जिस प्रकार भगवान सदाशिवके स्वरूप में वृत्तियोंका लय करके अमर हो जाते हैं; उसी प्रकार अभ्रक जारित पारदमें सुवर्ण लोह आदि जीर्ण होनेपर वह रसराज अमृतके तुल्य अजरामर बनाने वाला हो जाता है।

> युक्तिः कैवल्यनिर्वाणश्रेयोनिःश्रेयसामृतम्।
> स्थिरदेहोऽभ्यासवशात्प्राप्य ज्ञानं गुणाष्टकोपेतम्।
> प्राप्नोति ब्रह्मपदं पुनर्भवावासदुःखेन ॥

पारदके उपासना (सेवन) द्वारा मनुष्य स्थिरदेह प्राप्त करके मणि आदि सिद्धि सह आत्मानात्मा विवेक ज्ञान, प्राप्त कर लेता है। वह ज्ञान दृढ होनेपर, ब्रह्मपद प्राप्त होता है।

जो परमज्योतिःप्रकाश एक अंशसे समस्त जगत को व्याप्त कर रहा है, उसकी प्राप्ति स्थिरदेह, आत्म-ज्ञान और सम्यक् अभ्याससे हो सकती है। ऐसा युक्त पुरुष चिदानन्दरूप और स्वप्रकाश हो जाता है। उसका हृदय अन्य प्राणियोंको देखकर द्रवीभूत होता है। जिससे वह उनको भी ज्ञानवान् बनानेका संकल्प करता है। ब्रह्मज्ञानी अपने मनकी सब वृत्तियोंको उस परब्रह्ममें लीन करके समस्त जगत्को चिन्मय,

ब्रह्मरूप अनुभव करता है। व्यावहारिक पदार्थों में सर्वत्र निर्विशेष ब्रह्मका अनुभव करता है।

आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम्।
श्रेयः परं किमन्यत् शरीरमजरामरं विहायैकम्॥

विद्याओंका आश्रय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन पुरुषार्थ चतुष्टयकी प्राप्ति के लिये है। जिसके लिये देहको अजरामर बनाना मुख्य कर्तव्य माना गया है। इसके अतिरिक्त परंश्रेयकी प्राप्ति किससे हो सकती है।

अतः बुद्धिमान साधकोंको दिव्य देहकी प्राप्तिके साधनरूप रसराज पारदको मलोंसे निर्मुक्त कराकर दिव्यता प्राप्त करनेके लिये जो जो क्रियाएं की जाती हैं, उन अठारह संस्कारोंको जानना चाहिये।

यह विशेषरूपसे रसहृदयतन्त्रमें देखें।

यह रसविद्या सकल मंगलोंके आधाररूप है। यह रसविद्या साधकोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेके लिये उनके शरीरको अजर अमर बनाती है। यह रसविद्या परमश्रेय (समाधि प्राप्ति द्वारा) कैवल्य (मुक्ति) के कारणरूप है। इस रसविद्या द्वारा पहले ब्रह्माजीको अजरामररूप प्राप्त हुआ है।

रस विद्याके अंगीकारसे उत्तरोत्तर मनुष्य अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होता है। वह अपने अहम्को समष्टिमें लीन करता है। जीवनमें प्रभुपरायणता धारण करता है। वासनाक्षय, मनोनाश होकर विश्वके नानात्व में परमात्माके एकत्त्व स्वरुपका दर्शन होता है, आत्म ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

तेषामेवानुकम्पार्थ महमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञान दीपेन भास्वता॥

जिससे उसके—

भिद्यते हृदयग्रन्थि, श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

इस लिये रस विद्या तथा ब्रह्म विद्या परमश्रेयस है। इसे ग्रहण करना चाहिये। इति शुभ भूयात्॥

— कतिपय सिद्धप्रयोग —

(पृष्ठ ५६० का शेष)

धातुवाद

१ वरलोह प्र० १, प्र० २, प्र० ३।

२ शुल्वनाग प्र० १, प्र० २।

३ वग शुल्व वेध, वग पतगी तमालपत्र, वंग पारद योगसे।

४ जोड चूर्ण न० १, नं० २।

५ शुकतुण्ड ताम्र न० १, न० २, न०३ ताम्र शुद्ध रजित न० १, न० २, न० ३, ताम्र पारदसे रक्तरञ्जन।

६ पीत जोड ७ बार (बुझाया)।

७. अयस्कान्त।

८ पित्तल-कास्य-रौप्य हरताल योगसे

९ वगभस्म (हरताल मारित) न० १, न० २।

१० शुक तुण्ड ताम्र- रौप्य।

११ रौप्य रक्ती, ताम्र रक्ती।

१२ चन्द्रदल।

१३ चन्द्रार्क।

१४ घोषाकृष्ट ताम्र।

१५ हेमरक्ती शुकतुण्डसे, हेमरक्ती वरलोहसे।

रसायन सेवन

रस शास्त्रमें पारदका प्रयोग और फल भेदसे ३ विभाग हुए हैं। रसवाद, रसायनवाद और धातु- वाद रसवादमें विविध रोगोको दूर करनेके लिए चिकित्सा दृष्टिसे विचार किया है। रसायनवादका उद्देश्य प्रौढा-वस्था और जरावस्थाकी निर्बलताको दूर कर पुन' देहको युवावस्थाके समान बना देना है। धातुवादका उद्देश्य अधम धातुको रूपान्तरितकरा उत्तम धातु बना देना है। इनमेंसे रसायन वादके सम्बन्धमें इस लेखमें विचार करेंगे।

रसायन सेवनके सम्बन्धमें विचार करनेके आरम्भ में प्रश्न उत्पन्न होता है कि —

अधिकारी कौन है ? प्रारम्भिक कर्त्तव्य क्या है ? पथ्या-पथ्य क्या है ? औषधि क्या लेनी चाहिए ? भूल होने पर क्या क्या आपत्ति उत्पन्न होगी ? सम्यक् सेवन होनेपर फल क्या मिलेगा ? इस सबका क्रमशः विचार किया जायगा।

१. अधिकारी कौन ? संसारका अविचल नियम है कि कोई भी कार्य करना हो, लेना हो, देना हो (दान देना हो, रकम उधार देना हो, माल देना हो, मन्त्र देना हो, गुप्त विचार देना हो, धरोहर रूपसे संपत्ति देना हो, विद्यादान देना हो. शरण देना हो आदि आदि) इन सब कार्योंमें अमुक अधिकारी है या अनधिकारी ? यह पहले ही विचार करना पड़ता है। अनधिकारीसे व्यवहार करनेपर या अनधिकारीसे किसी कार्य लेने पर सफलता नहीं मिलती। इसी तरह अपनी योग्यता न होनेपर यदि कोई व्यक्ति रसायन सेवन प्रारम्भ करेगा, तो उसे बीचमें छोड़ना पड़ेगा या हानि उठानी पड़ेगी।

अधिकारी और अनधिकारीके सम्बन्धमें आनन्द कन्द अष्टम उल्लासमें लिखा है कि—

स्त्री क्लीबबालकानां च नहि योज्यं रसायनम्।
बाला पञ्चदशाब्दा ये कुमारा स्त्रिशदब्दकाः ॥
पञ्चाशद्वर्षदेशीया युवानः परिकीर्तिताः ।
अतः परं च स्थविरा भवेयुस्ते रसायने ॥
यथोक्तकाले सिद्धिस्स्यात्कुमारस्य रसायनात् ।
तस्माद्द्विगुणकालेन यूनस्सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥
तस्मात् त्रिगुणकालेन वृद्धस्सिद्धिमवाप्नुयात ।
ज्ञातव्याः क्रमशो देवि ! ह्युत्तमो मध्यमोऽधमः ॥

व्यवहार परायण स्त्री, नपुंसक, १५ वर्षसे कम आयु वाले वालक, इनको रसायन औषधिका सेवन कदापि नहीं कराना चाहिए। ये सब अनधिकारी हैं। इनको रसायन देनेपर शारीरिक और नैतिक हानि होनेकी संभावना है।

१५ वर्षसे अधिक और ३० वर्षकी आयु तक कुमार माना गया है। ३० से ५० वर्ष तक युवा सञ्ज्ञा दी है। इससे अधिक आयु वालेको स्थविर और वृद्ध कहा गया है। जिनको कुमार कहा है, उस अवस्था वाले योग्य अधिकारीको यथोचित कालमें देह सिद्धि प्राप्त होती है। युवा अधिकारीको उसकी अपेक्षा दूना समय लगता है। युवासे बड़े वृद्ध (प्रौढ) अधिकारी को तीन गुना समय देह सिद्धिमें लगता है। (अति-वृद्धको इससे भी अधिक समय लगेगा और मात्रा भी कम सेवन कर सकेगा) ऊपर दर्शाये फलके अनुरूप उत्तम, मध्यम और अधम अधिकारी माने जाते हैं।

रस शास्त्रने भूतकालमें मुमुक्षु और मुक्तोंको अधि-कारी माना है। पामर (पाखण्डी, असदाचारी) को

बिल्कुल अनधिकारी माना है। क्वचित् परोपकार परायण विषयी (भोगेच्छु) नृपति, धनिक या सेवा भावी सज्जनको भी अधिकारी मानकर रसायन सेवन कराया जाता था। इस हेतुसे किसी किसी राजा, धनिक और परोपकारी सज्जनकी २००-४०० वर्ष तक आयु भोगनेके उदाहरण भी इतिहासमें मिलते हैं।

रसायन सेवन करने वालोंको इन्द्रिय दमन और मनका संयम सह भक्ति परायण जीवन व्यतीत करना पड़ता है। भोग विलासकी भावना वालोंको रसायन सेवन नहीं कराया जाता। यदि कोई व्यक्ति मिथ्या बोलकर रसायन सेवन करने लगेगा, तो नियमोंका यथोचित पालन नहीं कर सकेगा। जिससे परिणाममें हानि ही उठायगा। भावी जीवन दुःखमय बना लेगा।

सामान्यत: १६ से ५० वर्षकी आयु वालोंको रसायन सेवन कराया जाता है। क्वचित् वयोवृद्धोंको भी रसायन औषधि दी जाती है। ५० वर्ष की आयु तक जितना लाभ मिल सके, उतना वयोवृद्ध और अति जीर्ण देह वालोंको नहीं मिल सकता है अथवा समय अधिक लगता है। कई मनुष्य वंशागत रोगी होते हैं। किसीको गर्भावस्थामें ही विकारकी प्राप्त हो गई है या बाल्यावस्थामें कोई प्रबल रोग जनित उपद्रव रह गया है तो उनको इच्छित पूरा लाभ नहीं मिल सकेगा। तमाखू, शराब, भांग-गांजा आदिका व्यसन पहले किया हो, हानि होनेपर व्यसन छोड़ा हो फिर शरीर रोग पीड़ित और निर्बल रहता हो, उनको भी कदाच इच्छित फल न मिल सके। ये सब सभवित हैं। इतना समझकर जो व्यक्ति संयम आदि साधन युक्त होकर रसायन सेवन करता है तो उसे अधिकारी माना जायगा।

वर्तमानमें विश्वकी आबादी २७० करोड़ मनुष्यकी हो गई है और दिन-प्रति-दिन तेजीसे बढती जा रही है। इसी हेतुसे सामान्य जनता मध्यम श्रेणी वालेको जीवन निर्वाह करने में अति कठिनाई आती है। वैसे गृहस्थाश्रमी सुबोध हो सकते हैं किन्तु कौटुम्बिक भार वहन करनेके लिए अति चिन्तित रहते हैं। उनके ऊपर धन कमानेका बोझा होनेसे वे उदासीन सदृश रहते हैं। उनको रसायन सेवन नहीं कराया जाता है।

कनिष्ठ श्रेणी वालोंपर शरीरिक परिश्रम अधिक रहता है, विशेष विद्यावान् नहीं होते, तथापि विशेष चिन्तातुर भी नहीं रहते। इनको भी उदर पूर्ति या कुटुम्ब पोषणके लिए अधिक समय तक कार्य परायण रहना पड़ता है। अत: उनको सेवन करानेमें उनका हित नहीं हो सकता।

जो धनिक नीति परायण, व्यावहारिक उपाधि से बहुधा मुक्त, भक्ति मय जीवन व्यतीत करने वाला संयमी, यम नियमका दृढ़तासे पालन करने वाला हो उनमेंसे जो अधिकारी सेवन करना चाहें, उनको सेवन करा सकते हैं। इनके अतिरिक्त जो जिज्ञासु त्यागी, संयमी और प्रभु परायण जीवन वाला है, पारमार्थिक कल्याणकी भावनासे रसायन सेवन करने के इच्छुक है, उनको श्रेष्ठ अधिकारी मानकर यथोचित समय पर और यथोचित मात्रामें रसायन सेवन कराना चाहिए।

रसायन सेवनार्थ देह शोधन-रसायन सेवन कराने के पहले देहको पञ्च कर्मसे शुद्ध कर लेना पड़ता है। जिस तरह मलिन वस्त्रको रंगना हो तो तुरन्त रंग वाले पानीमें नहीं डुबाया जाता, पहले साबुन या क्षार लगा कर वस्त्रको धोना पड़ता है अन्यथा योग्य रंग नहीं चढता। अथवा एक नाली मार्गसे खेत्रको जल पिलाना है। यदि स्थान-स्थान पर कूड़े कचरेसे मार्गावरोध होगा, और जल पिलाया जायगा, तो कूड़े कचरेके हेतुसे मार्गमें ही क्षोभ उत्पन्न हो जायगा। खेत्रको जल नहीं मिल सकेगा, उसी तरह शरीरके भीतर विभिन्न मार्गोंके अवस्थित मल, आम, कफ, कीटाणु विष, इन मलों के हेतुसे उत्पन्न अश्मरी आदि जो जो प्रतिबन्धक हो, उन सबको दूर करना चाहिए।

देह शोधनार्थ रसशास्त्रकारोने भी आयुर्वेदके समान पञ्च कर्म-पाचन, स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, इन

की योजना की है। इस सम्बन्धमें आनदकन्द षष्ठ उल्लासमें निम्नानुसार कहा है।

पाचनः—भोजनमें लवण आदिका सेवन सामान्यत. होता रहता है एवं पथ्य-अपथ्य, मात्रामें अधिक सेवन होता रहता है। इस हेतुसे संगृहीत विकार को सम्यक् प्रकारसे दूर कर देहको स्वच्छ बनानेकी आवश्यकता है। जैसे दूषित पात्रमें दूध नही टिकता, बिगड़ जाता है, वैसे ही मलिन देहमें रसायन; योग्य लाभ नहीं पहुँचा सकता विभिन्न प्रकारके उपद्रव उत्पन्न कराता है। प्रतिदिन दोपहरको पथ्य लघु भोजन करे जो सरलतासे पचजाय। रात्रिको छोटी कटेली, धनिया और सोंठ, इनका ४ तोला जौकूट चूर्ण लेकर १६ गुने जलमें मिलाकर अष्टमांश क्वाथ करे। फिर छान शीतल होनेपर पी लेवें। इस तरह ३ रात्रितक पीवे। पश्चात् शतावरीका क्वाथ ३ रात्रिको पीवे। इस तरह ६ दिन पचन योग्य विकार शिथिल होकर पाचन हो जाता है।

स्नेहन—घी और चावल तथा बकरेका मांस रस (मांसाहारियोंके लिये), (अभावमें दूध) दोपहरको योग्य मात्रामें सेवन करे। अथवा घी मिला हुआ गेहूँ प्रधान भोजन और मूगकी दालका यूष सेवन करे। भोजन उतना करे कि सरलतासे पचन हो जाय, रात्रिको गो घृत, सैंधव मिलाकर सेवन करे। घी १ तोला (४ निष्क) और ३ माशे सैंधव लेवें (या प्रकृतिको अनुकूल हो, उतनी मात्रा लेवे) भृङ्गराज और आंवलेके सिद्ध तैलकी सारे शरीरपर मालिश करें। इस तरह ७ दिनतक करनेपर स्नेह देहके सब अवयवोंमें पहुँच जाता है।

स्वेदनः—मछलीका मांस, उड़द, तिल, जौका सत्तू, ये सब मिलकर ६४ तोले, एकाष्ठीला (पीपलामूल) अगर, खरेंटी, रास्ना, छोटी कटेली, नागरमोथा; तेजपत्र, कौशिक (गुग्गुलु), अतीस, हल्दी, ये सब मिलकर २ पल तक, दूध, कांजी, ये तीनों मिलकर २ आढक (५१२ तोले) लेवे। सबको मिट्टीके घड़ेमें भर कर क्वाथ करें। इसकी बाष्प शरीरको यथा विधि २ घड़ी (४८ मिनट) तक देवें। पहले तैल मर्दन कर लेवे। फिर गलेतक कम्बल ओढकर मोटे कपड़े बिछाये हुए खाटपर बैठे। ऐसे स्थानपर स्वेदन क्रिया करें, जहाँ तेज वायु न लगे इस तरह एक सप्ताह तक प्रतिदिन सुबह किया करे।

वमन—मैनफलको (प्रकृतिके अनुरूप १-२ तोले के) पाठा समभाग मिलावे। फिर १६ गुने जलमें क्वाथ करें। वस्त्रसे छानकर पीपल, इन्द्रजो, मुलहठी और सेन्धा नमक, ये सब ३-३ माशे मिलाकर प्रातःकाल सेवन करनेसे वमन होकर सब विकार निकलते हैं। (यह क्रिया सामान्यतः ३ दिनतक करायी जाती है)

विरेचनः—पारद, गन्धक (दोनोको मिलाकर की हुई कज्जली), सोहागाका फूला, त्रिकटु (सोंठ कालीमिर्च, पीपल), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला), ये सब समभाग १-१ तोला लेवे तथा शुद्ध जमाल गोटा सबके समान (५ तोले) मिलाकर खरल कर लेवें। इसमेंसे २-२ रत्ती गुड़के साथ मिलाकर सेवन करे। ऊपर थोडा जल पीवें। इससे ३ घण्टेमें विरेचन होने लगेगा पचन संस्थामें आम, मल, कफ आदि जो संगृहीत होगे, सबको बाहर फेक देगा। विशेषतः यह एक बारही सेवन कराया जाता है। (रसहृदयतन्त्र कारने करीब ६ माशे कुटकीका सेवन विरेचनार्थ देनेका लिखा है।

लवण जनित विकार पर :—रसहृदयतन्त्रकारने शरीर शुद्धिके निमित्त कहा है, कि पहले जो लवण सेवन हुआ है, उसमे उत्पन्न विकारको दूर करनेके लिए सुबह सैंधव मिलाकर गोघृतका सेवन ३ दिन तक करें। फिर केतकी की मञ्जरीका क्वाथ ३ दिन तक सेवन करें। रसरत्नाकरमें सैंधव युक्त घृत लेने का विधान नहीं किया मात्र केतकी स्तनके क्वाथ लेने की आज्ञा की है।

आनन्द कन्दमें केतकी स्तन और जम्बीर (नीबू का रस) मिलाकर १६ तोले ७ दिन तक लेनेका विधान किया है। यह प्रयोग लवण दोष निवारणार्थ माना है।

क्षार जनित विकार शमनार्थ—इसके अतिरिक्त क्षार जनित विकृतिके नाशके लिए आनंद कदमें आचार्यने त्रिफलाका क्वाथ शहद मिलाकर ३ दिन तक सेवन करनेकी आज्ञा की है।

अम्लता शमनार्थ—यदि अम्लपित्त जनित विकृति हो तो वायविडङ्ग, वच, कुष्ठ और केतकी स्तन का चूर्ण, इनका क्वाथ करके ३ दिन तक सेवन कराया जाता है। अथवा इमलीके क्षारका जल ४-४ तोले, यवक्षार तथा मिश्री १ तोला मिलाकर ३ दिन तक सेवन करानेसे भी अम्लताका शमन होता है।

कृमिनाशार्थ —कृमि विकारको दूर करनेके लिए वच, वायविडङ्ग, पलाश बीज, जन्तुघ्न (कपीला), ये सब मिला कर १ तोला तथा गुड़ १ तोला मिलाकर लिवाये जलके साथ सेवन करे। प्रात. काल तीन दिन तक

सब रोगोंके शमनार्थ सामान्य प्रयोग—श्यामा (काली निशोथ), चित्रकमूल, वायविडङ्ग, वासापत्र, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, हरड़, वहेड़ा, आंवला, सैंधानमक, देवदारु और नागरमोथा, ये सब समभाग मिलावें। मात्रा १ तोला तक। घीके साथ प्रात.काल को ७ दिन तक सेवन करने पर सर्व जीर्ण रोग दूर हो जाते हैं।

इस तरह शरीर शुद्धि करके दूध चावलका सेवन करते हुए, रसायन योगका सेवन करें। क्वचित् किसी किसी साधकको क्षेत्रीकरणार्थ वनौषधिका सेवन कराया जाता है। कभी रस, भस्म आदि सेवन करके क्षेत्रीकरण कराया जाता है।

क्षेत्रीकरण योग—(१) दूध २ से ४ औंस, गोघृत १। तोला, आवले का रस १ औंस करीब, शहद १। तोला, देवदारुका तैल (तार्पिन तेल २ से ४ ड्राम) इन सबको मिला मथन कर उसमेंसे ८ तोला (२ पल) प्रतिदिन सुबह पीवें। एक मास पीने पर कान्ति और मेधाकी वृद्धि होती है। दूसरे मासमें क्रमश' मात्रा बढाकर ४ पल मंथका सेवन करे। इस तरह २ मास सेवन करने पर नेत्रविकार दूर होते हैं एवं अन्य दोष भी शान्त होते हैं। तीसरे मासमें मात्रा ६ पल तक बढावें। इससे देह महा तेजस्वी, देवोंके समान वन जाती है

(२) आरोट पारद (मल स्सकार युक्त पारदको मूर्च्छित और रञ्जित किया हो वह)× तथा कान्ताभ्र सत्व मिलाकर २-२ रत्ती शहद, गोघृत और त्रिफला के साथ एक मास तक सेवन करें। फिर मात्रा क्रमशः बढावें। १६ वें मासमें १६ रत्ती तक मात्रा सेवन करें। इस तरह सेवन करने पर वलीपलितसे निर्मुक्त होकर साधक १०० वर्ष तक नीरोगी रहता है।

(३) कान्ताभ्र सत्त्व और सुवर्ण जारित आरोटक पारदका सेवन करना, ये द्वितीय विधिकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसी तरह सेवन करने वाला साधक सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है।

इनके अतिरिक्त भी कई प्रकारके योग प्रकृति भेदसे उपयोगी क्षेत्रीकरणार्थ मिलते है। इसके लिए रसहृदयतन्त्र, आनन्द कन्द आदि ग्रन्थ देखें।

पथ्यापथ्य—रसायन सेवन करने वालोंको आग्रह पूर्वक पथ्यका सेवन करना चाहिए। नियमोंका पालन करना चाहिए। एव अपथ्यसे पूर्णाशमें बचना चाहिए। शास्त्रमें पथ्य मानी हुई किन्तु प्रकृतिको अनुकूल न हो, उस वस्तुको अपथ्य मानकर त्याग कर देना चाहिए।

पथ्य—शास्त्रकारोंने लाल शालि चावल, गेहूँ, गोघृत, गोदुग्ध, गौका दही, जगलके पशु-पक्षियोंका मांस रस, मूग, शक्कर, शहद, सैन्धव, हंसोदक, वथुवा चौलाई, पुनर्नवाके पान, परवल, मीठी तुम्बी, केला, धनिया, ईख, मीठे अनार, कच्चे नारियलका जल और सोठ (अदरख), ये सब पथ्य हैं। भोजन करके पान चबाना, चन्दन, केशर, कस्तूरी आदिका लेप करना, सुगन्धित पुष्पों वाली मृदु शय्या पर शयन, सदा शिव, आत्मा आदिकी कथा, मधुर भाषामें भाषण, शुद्ध सुन्दर सुगन्धित कोमल वस्त्रोका परिधान, थोड़ा

× स्वेदनाद्यैश्च संस्कारैस्सप्तभिस्संस्कृतो रस' ।
मूर्च्छितो रञ्जितो देवि ! सूतस्त्वारोट' स्मृत:॥

चलना, मृत्युञ्जयका जप, मानसिक प्रसन्नता हो, उस तरह का वर्ताव, मंद हास्य, स्वच्छताका पालन,

नृत्य खेल तमाशा, गान, शिवपूजा, देव, अग्नि, गुरु, ब्राह्मणोंको वन्दन, श्रुतिकी आज्ञाका पालन, ध्यान और समाधिका अभ्यास, दुःखी जीवोंपर दया, सत्य, हितकर और प्रिय बोलना, दुःखका निरोध करने वाली वाणी, मन और शरीरकी चेष्टा, ये सब रसेन्द्रको क्रामण कराने वाले (देहके अणु अणुमें प्रवेश कराने वाले) हैं।

अपथ्य—अत्यशन, अतिपान, अति निद्रा, अति जागरण, असमयपर भोजन, स्त्रियोंका अति सहवास, अति एकांत, अनुचित स्थानमें निवास, मद, अति हास्य, अतिहर्ष, अतिक्रोध, अधिक स्पृहा, अति बकवास करना, जलक्रीड़ा, दुःख उत्पन्न हो ऐसे कार्य, अति चिन्तन, तरबूज, करेला, कुष्माण्ड, ककड़ी, मकोय, कुलथी, ककोड़ा, कुसुंभ-तिल-तैल, अलसी तैल, उड़द, मटर, मसूर, मठ्ठा और चावल, सिरका, कडुवा रस प्रधान वस्तु, चरपरे पदार्थ, खटाई, लवण, क्षार, क्षौद्र (मधु), पिच्छिल पदार्थ, पित्तकर भोजन, शुष्क रूखे पदार्थ, भैंसका दूध, दूधसे बने हुए दही आदि पदार्थ, अधिक दाले, कच्चेआम्र, संतरा, बेल, लकुचा, सुहिजना, नैवेद्यका भोजन, अग्नि सेवन, गौ, ब्राह्मणोंको पैरोंसे मारना (लातें मारना) पाप करना, जीवहिंसा, वृक्षोंको काटना, जुआ खेलना, मृगया आदि सप्त व्यसन, अश्वत्थ और कपित्थकी छायामें रहना वन्ध्याकी नपुंसकपुरुष-खाट-हाथी एवं डरपोक मनुष्य की संगति, तथा चार रास्ते मिलनेके स्थान और अति निर्जन स्थान आदिमें मलमूत्र विसर्जन करना। अपने हितेच्छुकी, द्विज (ब्राह्मण) तथा अपने गुरुकी स्त्रियोंसे संगति करना, वीरांगना अथवा जितेन्द्रियस्त्रियोंसे सहवास करना, प्रहरी, बन्दी गणों, मछुऐ एवं केवटे तथा गोताखोरोंकी संगति करना, प्याज, हींग-लशुन राई, बेंगन कटेरी, मटर, सेवन करना—

ऊंचाईको लांघना, उछलना-अधिक ऊपर चढना, रात्रिमें सब ओर पर्यटन करना, खूब सोना, मदिरा, आसवोंका, अति सेवन, मुर्गे व जल जीवोंका मांस खाना, तीखे, गर्म, भारी, कब्ज करने वाले, रूखे व सूखे मांस खाना, सिर्का पीना तथा केलेके पत्ते व कांसीके बर्तनमें भोजन करना, धूप (गर्मी) का सेवन आदि ये सब रसायन सेवन करने वालोंके लिए हानिकर है। उन सबका त्याग करना चाहिए।

सूचना—जो मनुष्य क्षेत्री करण किये बिना, रसायन सेवन करता है, उनकी देहमें रसका यथोचित क्रामण नहीं होता फिर विविध रोगोंकी संप्राप्ति हो जाती है। ऐसा रसहृदयतन्त्रकारने निम्न वचनसे दर्शाया है।

अकृतक्षेत्रीकरणं रसायनं यो नरः प्रयुञ्जीत।
तस्य क्रामति न रसः स रसः सर्वाङ्गदोषकृद् भवति॥

क्षेत्रीकरणार्थ रसहृदयतन्त्रकारने अभ्रक भस्म, लोह भस्म आदिके सेवनकी विधि भी दर्शायी है। वह मार्ग भी सरल और उपयोगी है। प्रकृतिभेद, देशभेद, ऋतुभेद आदिसे सेवन करानेके लिये प्रयोगोका निर्माण आचार्योंने किया है।

जब सम्यक् प्रकारसे क्षेत्रीकरण हो जाय तब पारद भस्म या शतवेधी, सहस्रवेधी आदि रसकी योजनाकी जाती है। शतवेधी, सहस्रवेधी आदिमेंसे पहले शतवेधीका प्रयोग होता है, फिर सहस्रवेधी, तत्पश्चात् लक्षवेधी।

क्वचित् भूल प्रमाद वश रसाजीर्ण हो जाता है। स्वेच्छाचारीके लिए यह आपत्ति अधिकतर आती है। रसाजीर्ण होनेपर निद्रा, आलस्य, ज्वर, दाह, चक्कर आना, नाभिस्थानमें शूल, उदरमें भारीपन, हाथ-पैरोंमें खिंचाव आदि उपस्थित होते हैं ऐसा होनेपर रसायन प्रयोग बन्द कर दिया जाता है तथा अजीर्ण नाशके निम्न उपचार किये जाते हैं।

(१) वमन करना इष्ट हो तो ककोड़ेके मूलका रस या क्वाथ सैंधानमक, मिलाकर वमन हो जाय, उतनी मात्रामें ३ दिन तक सुबह पिलावें। अथवा विरेचन करानेकी आवश्यकता वालोंको गोमूत्रमें काला नमक मिलाकर विरेचन हो उतनी मात्रामें ३ दिन पिलावें।

(२) आम और कफाधिक हो, तो बिजौरेके फलों

का रस सोठ और सैंधव मिलाकर चटाने या पिलाने से आमविष दूर हो जाता है। अपक्वरसका पचन होता है तथा कफ विकृति भी दूर हो जाती है।

(३) क्वचित् अशुद्ध पारदका सेवन हो जाता है। इसमें यदि नाग, वङ्ग दोषयुक्त पारदका प्रयोग हुआ हो, तो गोमूत्रके साथ कुटकी का चूर्ण और करेलेका रस मिलाकर ३ दिनतक पिलानेसे वमन विरेचन होकर विकार शमन हो जाता है।

(४) कभी वङ्ग विकारसे यकृत् प्लीहा वृद्धि, ज्वर और पाण्डु हो तो शरपुङ्खाके मूलका क्वाथ पिलाया जाता है। नाग विकारसे यकृत्की विकृति हुई हो, या उदरशूल, कफप्रकोप, अन्त्रस्थ विकृति हो तो देवदाली का सेवन कराना चाहिए। यदि मलावरोध, और रक्त विकार सह ज्वर हो, तो पटोल क्वाथ। रक्तमें मधुर रस बढ गया हो, तो बिम्बीका सेवन करावें। एव शोथ उपस्थित हुआ हो तो मकोयका सेवन हितावह है।

(५) नाग विषज विकारके शमनार्थ करेलेके मूल और पाठाका क्वाथ सेवन करानेका रसकामधेनु में दर्शाया है।

(६) रक्त, मासादि धातुओंके अन्तरस्थ अग्निको प्रदीप्त करानेके लिये हरड़, सोंठ, सैंधानमक, चित्रकमूल, और पीपलका चूर्ण कर निवाये जल, मण्ड या यूप आदिके साथ सेवन कराया जाता है।

(७) अत्यम्ल (चूका, अनारदाना, कच्ची इमली) आदि, अति लवण मिश्रित, या अति मिर्च मिश्रित भोजन आदिका सेवन करानेपर नाड़ियोमें उपस्थित विकृति आम विष, रस जनित विकार ये सब दूर हो जाते हैं।

सूचना—रसायन सेवन कालमें किसी भी पथ्य का अतियोग नहीं करना चाहिए। भिन्न भिन्न रसयुक्त और पृथक्-पृथक् प्रकारका पथ्य भोजन करना चाहिए। भूल की जायगी, तो जठराग्नि मंद हो जायगी फिर रसका क्रामण भी योग्य नहीं हो सकेगा। जो रसायन सेवी पथ्य पालनपर ध्यानाभ्यास परायण रहता है, वह सांसारिक और शारीरिक रोग और चिन्ता, वृद्धावस्था जनित दुःख, मृत्यु (पुनर्जन्म) से मुक्त होता है और दिव्य गुणवान बन जाता है। सूक्ष्म देहमें आकाश गमन कर सकता है और सब भुवनोंमें भी गमन कर सकता है।

कितने समय रसायन सेवन करना चाहिए? उस और किन किन अवस्थाओंमें कैसा पारद लेना चाहिये इसका उत्तर आयुर्वेद प्रकाश कारके निम्न वचनसे मिल सकता है।

"अथ यदि रसायन गुणेच्छा चेद् गन्धक जारणोत्तरं हेमाभ्र सत्वादि यथा विभव गन्धक जारणोरियते रसं प्रोक्त विधिना संसाध्य जारयित्वा मारणविधिना हत्वा मात्रया चेत्रीकरणपूर्वकं पथ्ययोगेन मण्डलावधि षण्मास वर्षेकं द्विवर्ष त्रिवर्ष वा संसेव्य.। तदा तदुक्तफल माप्नोति यावज्जीवं सेव्यो वा संपत्तिश्चेन यदा यथावकाश पौनः पुन्येन समेव्यः।

अथ केवलं रोगहननेच्छा चेन् स्वेदनादि दीपनान्तैः सस्कारै रस सशोध्य प्रोक्त विधिना गन्धकेन संमूर्च्छ्य मात्रया पथ्ययोगेन संसेव्यो यावदारोग्यमिति।

प्राचीन आचार्योंने जो औषधिया रोग नाशक रूप से कही हैं, उनमें पारद अष्ट संस्कारित लेने की आज्ञा की है। अभावमें हिंगुलोत्थ पारद। यदि उसको तत्काल लाभप्रद बनाना चाहते है, तो षड्गुण गन्धक जारित करनेके पश्चात् ही उपयोगमें लेनेका आचार्योंने आग्रह पूर्वक कहा है। यदि उससे भी विशेष लाभ लेना हो, सन्निपात आदि घातक तथा असाध्य रोगोंको दूर करना इष्ट हो, तो सबीज पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित किया हुआ पारद लेना चाहिए पारद जितना दिव्य होगा उतना ही अधिक फल दे सकेगा।

रसायन तथा रसायन और वाजी करण (दो कार्य करने वाली) औषधियां निर्माण करनी हो, तो उनके लिए रसेन्द्र ही लेनेका विधान है। पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित नहीं होगा, सुवर्ण अभ्रक सत्व, लोह आदिका ग्रास नहीं दिया होगा तब तक रसेन्द्र सच्चा कार्यकारी नहीं बन सकेगा। पूर्ण चन्द्रोदय, लक्ष्मीविलास वसतकुसुमाकर, आयुर्वेद प्रकाश कथित अमृतार्णव, हेमसुन्दर आदिमें सामान्य पारद की यदि योजना की जायगी, तो शास्त्र कथित गुण नहीं मिल सकेगा। इति।

औषधि प्रस्तुत प्रणाली—

स्वर्ण वंग

लेखक—ब्रह्मचारी स्वामी रामकल्याणानन्द वैद्य, उर्फ लाल बाबा वैद्य
श्री कल्याण धर्मार्थ औषधालय, वडोरा

श्री वैद्यजी वयो वृद्ध एवं अनुभवी सफल चिकित्सक हैं, आपकी आयु ६० वर्षकी है। तथा आपने एक सफल प्रयोग जो अपने गुरु बालकनाथजी आसन खरखड़ा पीठाधीश्वरके ४० वर्ष जिन को सफलता पूर्वक प्रयोग करते आ रहे है। ९९ प्रतिशत सफल होते हैं। गायत्री तपोभूमि मथुराके आत्मज्ञानी तथा शेड्यल्ड कास्ट फेडरेशनके अध्यक्ष तथा नवयुवक मडल वडोराके मंत्री हरिजन सेवक सघके कार्यकर्ता है तथा धनराज सिद्धान्त रत्न आयुर्वेद विशारद आपके सुपुत्र वैद्य है। आजकल वडोरा नव मडल सहकारी समिति बहु उद्देश्य कृषि औषधालय में निशुल्क कार्यसे जनताकी सेवा कर रहे हैं, यह भी एक सफल चिकित्सक है, सेवा भावुक है। स्वामीजी ने अपना जीवन मानवताकी सेवा में ही अर्पण कर दिया है। इनका कार्य ४० वर्षसे ही निशुल्क चल रहा है।

स्वर्ण वंग:—वङ्ग, पारद, गधक, नोसादर सम-भाग यही शास्त्रीय योग हैं। प्रथम वंगको गला कर उसमें पारद मिलाया जाता है। उस मिले पदार्थको लवण व अम्ल रससे धोया जाता है। फिर गंधक नौसादर मिलाकर कांच कूपी द्वारा बालुका यन्त्रकी आंच दी जाती है; सर्व प्रथम नरसार उडना आरम्भ होता है। उसके बाद गंधक और अम्लमें पारद उडकर स्वर्ण सदृश वंग तैयार होता है। स्वर्ण सदृश वंग होनेसे इसे स्वर्ण वग कहा जाता है। विचार प्रस्तुत स्वर्ण वंग के गुण प्राय: वङ्ग जैसे अथवा साधारण वङ्गसे उत्कृष्ट पाये जाते हैं। अब देखना है कि उडने वाले द्रव्योंने यहां कौनसा कार्य सम्पादन किया? प्रथम पारदका, संमिश्रण वङ्गको बारीक कण रुपमें विभक्त करता है। नौसादर और गंधक इसको स्वर्ण सदृश भस्म बनाकर स्वयं उड जाते हैं। वङ्ग कण शीशीमें जिस स्थान पर रखे थे वहीं पड़े रहते है। अत: स्वर्ण वङ्ग अत्यन्त हलकी पाई जाती हैं। यदि स्वर्ण वंगका मूल योग सारा ८० तोला है अर्थात् प्रत्येक द्रव्य २०-२० तोला है तो आपको तैयार स्वर्ण वंग ११ से १५ तोला तक प्राप्त होगी। तैयार होने पर भी यदि आच बन्द न की जावे तो प्रस्तुत वङ्ग खराब होती चली जावेगी यहां तक कि १ तोला भी शेप नही रहेगी।

साधारण वङ्ग भस्म बना इसे यदि आग पर डाला जाय तो ओर भी आश्चर्य जनक दृश्य दीख पड़ेगा और स्वर्ण वङ्ग धूम सम होकर उड जायगी। शेप केवल लकडीकी धूसर भस्म जैसी राख दिखाई देगी। साधारण वंग भस्म निर्धूम होगी परन्तु इससे निराश न होना। चाहिए। चूंकि स्वर्ण वङ्गके प्रयोगसे हमें बहुत लाभ होता है। निःसंदेह स्वर्ण वंग प्रमेह हर, रसायन बल-कारक, कान्ति, मेधा, अग्नि, वीर्यको बढ़ाती हैं। ऊपर लिखा गया है कि नौसादर गधक पारद इसमेंसे निकल गये तथापि उनका समिश्रण व्यर्थ नही गया। उन द्रव्यो से ही स्वर्ण सदृश वंग तैयार करते समय यदि व्यर्थ जाने वाले द्रव्योंको रोकनेका प्रयत्न किया जाय तो विलक्षण ही लाभ होगा और वङ्गमें किसी प्रकारकीहानि नहीं होगी जो साधारण वङ्गसे उत्कृष्ट द्रव्य माना गया है। व्यर्थ जाने वाले द्रव्योंको रोकनेका यथाविधि प्रयत्न किया जावे तो अतुल बलदायक होंगी। ऐसी विधिसे कार्य सम्पादन करते समय निम्न बातोंपर का ध्यान रहे।

(१) इसके लिए बालूका पात्र लोहेका हो और वह भी सम तल।

(२) पात्र भट्टीके ऊपर न रख कर बालू पर्य्यन्त बीच गला देना चाहिये।

(३) धुआं निकलनेके लिये रास्ता उपरकी ओर न होना चाहिये, इसके ३ या चार रास्ते चारों दिशामें नलियोंसे बनाए जाने चाहिये।

(४) चालिस्त साफ मिट्टी गोवरसे बना देना चाहिए

(५) शीशी आतशी हो या साधारण ५-६ कपरोटी वाली सम तल होनी चाहिये।

(६) शीशीका मुंह दो या डेढ अंगुलसे कम खुला न होना चाहिये। तङ्ग मुंहमें नौसादरके रुकनेका भय बना रहेगा।

यथा विधि उपरोक्त बातोका ध्यान रखते हुये स्वर्ण वङ्गके लिए आंच देना आरम्भ करदे। प्रथम आँच लगनेपर सफेद धूमा कृति नौसादर उडना आरम्भ होगा, अत. उसके रोकनेके लिये एक बड़ा मिट्टीका पात्र यन्त्र की भूमिसे एक अंगुल ऊपर अधोमुख रखदे जितना नौसादर उडेगा बर्तनमें लगता जायगा। परन्तु बार बार बर्तन उठाकर शीशीके मुखकी ओर देखते रहना चाहिये। जब नरसारका श्वेत धूम समाप्त हुआ है और गंधकका धूआ आरम्भ हो जाय तो उस स्थान पर दूसरा पात्र रख देना चाहिये और गंधकका धूम निकलना बन्द हो जाय तब दूसरा पात्र रख देना चाहिये, ऊपर से गीला वस्त्र पात्र पर रख देना चाहिये। डमरुयंत्रकी विधिसे रखदे और आवश्यकतानुसार जलसे सेचन करते रहे। परन्तु साथ साथ परीक्षकका ध्यान लोहकी सींकसे निकाल कर स्वर्ण वंगकी और रहना चाहिये। जब वङ्गके कण चमकने दिखाई दें तब स्वांग शीतल होनेपर शीशीको तोडकर स्वर्ण वङ्ग निकाल ले। स्वर्ण वङ्गसे नीचे १ भारी जमा हुआ पदार्थ आप को मिलेगा उसे निकाल सावधानीसे अलग रखे। प्रथम पात्र जो श्वेत धूमको रोकनेके लिये रक्खा गया था उसे सावधानीसे उतार कर शीशीमें भरदे यह उत्तम जोहर होगा। दूसरा पात्र गंधक जो धूमके लिये रखा गया था उसे और दूसरा पात्रमें लगा द्रव्य सावधानी से ऊतार कर इनमें द्रव्य मिला दें जो की स्वर्ण वङ्गके नीचे गोगन कठिन सा मिला था। बारीक चूर्ण करें। और कपड़ेपर बिछा बिछा कर लिपेटते जाएं इस प्रकार कपड़ेका एक गोला तैयार कर आग लगा दें। ईंटपर सब रख दे जिस प्रकार पहिले पात्र ढका था टके स्वर्ण वङ्गके धूमको रोकने पर किया था भूमिमें १ या दो अंगुल ऊंचा अधो मुख रखदें उसके पीठ पर गीला कपड़ा रखदें और आवश्यकता पर सिचन करें। यह कार्य केवल दो या ३ घंटामें समाप्त हो जायगा और उडकर बर्तनमें लग जायगा, पारद भी स्वांग शीतल हो जानेपर शुद्ध पारदको उतार लें। यह पारद साधारण शुद्ध पारदोंसे अच्छा होगा अर्थात् पारद व नौसादर भी विना मूल्य हाथ आयेंगे। बालूका यन्त्र बड़ेमें बड़ा बनाया जाय परन्तु लोह पात्र समतल हो ऐसे यंत्रपर एक ही बारमें ५-६ शीशियां रखी जा सकती हैं। एक शीशीमें ६० तोलासे ज्यादा न होना चाहिये शीशीका मुंह जितना तंग हो उतना ही द्रव्य कम डालें क्योंकि नोसादरसे मुह बन्द होनेका भय रहता हैं। शीशियां सब एक साथ बराबर होनी चाहिये। स्वर्ण वङ्ग तैयार करनेको जो विधि लिखी गई है यदि बीस तोला शुद्ध वंग ले तो १) तोला होगी, पारद शुद्ध २॥।) तोला नौसादर ≡) और गधक ।) इसका योग ४≡) हुये अर्थात सर्व प्रथम हमें ४≡) खर्च करने पडेंगे यदि सावधानी से उडाया जाय तो हमें नौसादर जोहर कुछ ही कम प्राप्त होगा और पारद २० तोला में १५ तोला मिल सकेगा जिसकी कीमत २–) आना होगी। नौसादर पारद २ रूपया २५ नये पैसे कीमतके व्यर्थ जानेसे हाथ आवेगे ऐसा करनेमें ४≡) मेंसे २ रुपया २५ पैसे बचत हुई, विज्ञान बढा।

इस समय भारत वर्षमें हजारों फार्मेसियां काम कर रही हैं। संचालकोंसे तथा वैद्य बन्धुओंसे नम्र निवेदन है कि सभी मेरी लिखी विधिसे अनुभव कर लाभ उठाये और शीघ्र स्वास्थ्य पत्रिका कालेड़ाको सूचना दें।

रसक्रियाविज्ञानम्

ले०—डा० नवनीतलाल बद्रीनाथ पण्ड्या गृहीत आयुर्वेदशास्त्री
आयुर्वेद विशारद L. A M D A. S. F. (Bom.)

आयुर्वेदिक चिकित्सामें रसचिकित्साका प्राधान्य स्वीकार हुआ है। कारण, रससे चिकित्सा करने वालो को स्वल्प मात्रामें उपयोग करना पड़ता है; औषधि अरुचिकर नहीं लगती और शीघ्र आरोग्य प्रदान करती है। अतः इतर सब चिकित्साओंकी अपेक्षा यह अधिकतर अनुकूल हुई है। इसी हेतुसे आचार्यों ने कहा है कि—

न दोषाणां न रोगाणां न पुंसाञ्च परीक्षणम्।
न देशस्य न कालस्य कार्यं रसचिकित्सिते ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो न जानाति रसं यदा।
सर्वं तस्यो पहासाय धर्महीनो यथा बुधः ॥भै. र.॥

रस चिकित्सा करनेमें वातपित्तादि दोषके तरतम भावके ज्ञानकी आवश्यकता प्रायः नहीं रहती है। रोगी परीक्षा, सबल-निर्बल परीक्षण, देश परीक्षा और कालपरीक्षाकी भी आवश्यकता नहीं है। कारण कि रसौषधियोंके भीतर एक ऐसी अचिन्त्य शक्ति निहित है, कि जिनके प्रयोगकालमें दोषादिकका विशेष निर्णय न होनेपर भी रोगकी प्रत्येक अवस्थाओंमें अपना प्रभाव प्रकाशित कर सकती है। इसी हेतुसे जो वैद्य आयुर्वेदके ज्ञान युक्त हो, किन्तु उनको रस चिकित्साका ज्ञान न हो, तो उनके प्राप्त किए हुए सर्व शास्त्रोंका ज्ञान धर्माचरण हीन पण्डितके समान उपहासास्पद बनता है—

आयुर्वेद द्वारा चिकित्सा करने वाले वैद्योंमें मुख्यत निम्न ४ प्रकार होते हैं।

उत्तमो रसवैद्यस्तु मध्यमो मूलिकादिभिः।
अधमः शस्त्रदाहाभ्यां सिद्धवैद्यस्तु मान्त्रिकः ॥

रस चिकित्सा करने वाले वैद्य उत्तम, काष्ठौषधियों के उपयोगको प्रधानता देने वाले मध्यम; दाह और (रस चिकित्सासे सुधर सके वैसे रोगोंमें भी) शस्त्र क्रिया करने वाले अधम माने जाते थे। जो मंत्रोपचार से चिकित्सा करने वाले थे, उनको सिद्ध वैद्य माना था।

चरक संहिता में भी चिकित्सा के ३ प्रकार दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय और सत्वावजय कहे हैं। अर्थात् दैवव्यपाश्रय चिकित्सा शास्त्राधारित है। रस चिकित्सामें भी रसेशपूजा, अर्चा आदि कई क्रियाये दर्शाई हैं। अतः रस चिकित्सा दैवव्यपाश्रय चिकित्साका ही एक भाग है। इसके अतिरिक्त युक्तिव्यपाश्रयका अन्तर्भाव भी उसके भीतर हो जाता है।
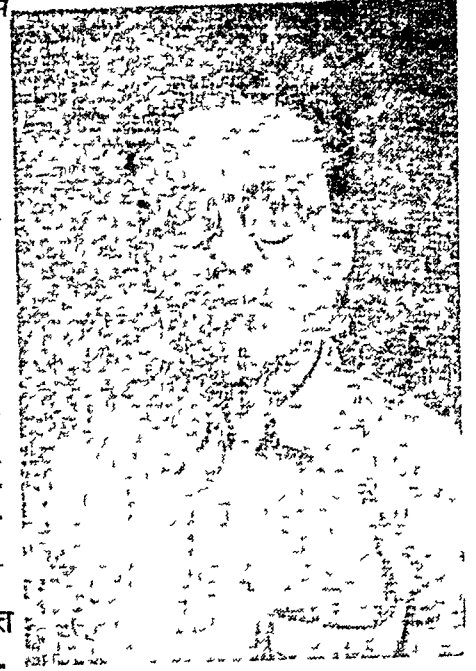
काष्ठौषधि चिकित्सा और रसचिकित्सा, ये आयुर्वेदके २ हाथ हैं। इनमें भी रस चिकित्साके लिए स्तुति की है कि—

अल्प मात्रोपयोगित्वात् अरुचेरप्रसंगतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वात् औषधेभ्योऽधिको रस. ॥

तात्पर्य यह है कि शीघ्र फलदायी होनेके हेतुसे व्यवहारमें रसचिकित्साका अधिक प्रचार हुआ है।

रस चिकित्सामे प्रधान औषधि द्रव्य पारद है। उसे रसराज और रसेन्द्र संज्ञा भी दी है। धातु-उपधातु रस, उपरस, महारस आदि द्रव्योंके संस्कारसे पारद विशेष शक्तिशाली बनता है। पारद योगवाही होनेसे अनेक द्रव्योंके साथमें सरलतासे मिल जाता है तथा

उस योगके द्रव्योके गुणोमें वृद्धि कराता है ।

मानव देह सजीव कोषोका बना है। Man is a polycellular organism. आयुर्वेदने पञ्च महाभूत दिशा काल, आत्मा और मनको द्रव्य (Substances) संज्ञा दी है। जीवित देहमें पञ्च महाभूत, आत्मा, इन्द्रियां, मन इन सबका संयोग होता है। इसी हेतुसे आचार्योंने कहा है कि "शरीरेन्द्रियसत्त्वात्म संयोगो धारि जीवितम् ।" शरीरमें अवस्थित रस-रक्तादि धातु पञ्च महाभूतके ही रूपान्तर हैं। रस आदि सप्त धातुओं की न्यूनाधिकता होनेपर उनके अनुरूप गुण धर्मवाले द्रव्यों द्वारा समत्व ला सकते है। सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम् ।

रसादि धातुएं यथार्थमें पञ्च महाभूत का परिणाम होनेसे देहसे निर्जीव (Inorganic) है। मानव देह के भीतर आत्म चैतन्यका निवास होनेसे देहके सब कोष सजीव बन जाते हैं। अर्थात् निर्जीव धातुओको सजीव करनेकी क्रिया आयुर्वेदमें है। शोधन मारण आदि क्रियाओ द्वारा निर्जीवमें सजीवत्व (चेतनाशक्ति) आ जाती है। इसी देहसे किसी भी निर्जीव द्रव्यका चिकित्सारूपसे उपयोग, विना सशोधन मारण किये नहीं होता है। यदि भूल करके मूलरूपमें किया जायगा तो हानि पहुँचेगी।

देहके उपयोगी द्रव्योमें वनस्पतियां जंगम द्रव्य है। उनके सेन्द्रिय तत्व देहमें सरलतासे पचन हो सकते है। किन्तु धातु निरीन्द्रिय है। जिससे वे जीवित देह मे पचन नहीं हो सकती। इसी हेतुसे आयुर्वेदके प्राचीन आचार्योंने वनौषधियो और प्राणिज रस द्वारा शोधन मारण संस्कार करके धातु-उपधातुओको सेन्द्रिय (Organic) बना सकते हैं। जिन जिन वनस्पतियोंकी भावना दी जाती है, पुट दिये जाते हैं, उन सब वनौषधियोंके गुण धर्मका चेतनाशक्ति सह उसमें प्रवेश होता है। जैसे लोह द्रव्य स्वभावसे कुछ विवध करता है। किन्तु त्रिफला और घी कुवारके कुछ पुट देनेपर विबन्ध विकृति दूर हो जाती है, यह सबके अनुभवमें आ सकता है।

इस तरह रसादि धातुओंके सेन्द्रियकरण करनेकी जो पद्धति है वही आयुर्वेदकी शोधन मारणक्रिया है। ये क्रियायें एक प्रकारके संस्काररूप हैं। "संस्कारो हि नाम गुणान्तराधानम्" अर्थात् संस्कारमें अन्य गुणोंका समर्पण होता है। द्रव्योंको अमुक विधिमें संस्कारित करनेपर, उनके गुणोंमें परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन भावना मर्दन और अग्निसंस्कारमें होता है।

पदार्थके गुणोंका एक प्रकारसे दूसरे प्रकारमें परिवर्तन हो जाना, उसे संस्कार (Chamical changes in the form of compound) संज्ञा शास्त्रमें दी है। उसी उद्देश्यको लेकर कहा है कि—"वह्निसंयोगेन गुणान्तराधानम्" अग्निके संयोगसे संस्कारके गुणोंमें परिवर्तन हो जाता है। इसी तरह मर्दनं गुणवर्धनम्" अर्थात् मर्दन करनेमें विद्युतकी उत्पत्ति होनेसे भी गुणवृद्धि होती है।

इस परसे उतना निःसन्देह मान सकते हैं कि आयुर्वेदिक रसादि द्रव्योंकी भस्म बनानेकी पद्धति, यह धातुओकी सूक्ष्म चूर्ण मात्र नहीं है; किन्तु निरीन्द्रिय द्रव्योंको सेन्द्रियत्व समर्पित करके देहमें उसका पचन हो सके, वैसा सेन्द्रिय द्रव्य (Organomatalic compound) बनाना है।

रसादि धातुओंके शोधनके हेतु—रसादि धातुओं के शोधन-मारण करनेके समय गुणवर्द्धक वनौषधियों के क्षार, अम्ल, विष और घी तैल आदि स्नेहोंमें संस्कार किये जाते हैं। रसार्णवकारने कहा है कि—

सर्वे मलहराः क्षाराः सर्वे चाम्लाः प्रबोधकाः ।
विषाणि च तमोघ्नानि स्नेहा मार्दवकारकाः ॥

वनौषधियोके क्षार धातुओंके भीतरसे मलको पृथक् करते हैं। सब अम्ल द्रव्य (वनौषधियोंके अम्ल रस) धातुओके प्रबोधक (जागृत् करने वाले Active) बनाने वाले है। धातुओके भीतर जो तमोगुण, जड़ता का अंश हो, वह विषके संयोगसे दूर हो सकता है। स्नेह द्रव्योसे सशोधन मारण करने पर धातुओंके भीतर मृदुता कोमलताकी प्राप्ति होती है।

खनिज द्रव्योके शोधनमें निम्न कारण माने जाते हैं।

१ खनिज धातुओंके भीतर नैसर्गिक रीतिसे अन्य द्रव्य संमिश्रित होते हैं, उन अशुद्धियोको दूर करनेके लिए।

२. धातुओंके प्रत्येक अणु परमाणुको सेन्द्रियत्व प्रदान करनेके लिए।

३. शोधन करनेमे धातु मृदु होती है, उनका चूर्ण (रज) सरलतासे होता है।

४. जिसे शुद्ध करना हो, उस द्रव्यके भीतर विष का विशेष अंश रहा हो, तो उसे निर्बल बनाना है। जिससे उनके गुणो द्वारा देहको पोषण प्रदान करने वाले तत्वोकी वृद्धि होती है।

धातुओंकी मारण क्रियाके हेतु :—"म्रियते अनेन इति मारणम्।" जिसमे धातुओको महामूर्च्छा की प्राप्ति हो जाय-मृतभस्म रूप बन जाय अर्थात् धातुएं अपने धातुत्व Metalic Form को छोड दे, उनको धातुओंकी भस्म संज्ञा दी है। इस क्रियाको मारण क्रिया कहते हैं अर्थात् धातुओको मूल रचना स्थान पर विभिन्न स्वरूपमें परिवर्त्तित करा देना। धातुओ की भस्म हो जानेपर भी उसमें मूल धातुओंके भीतर अवस्थित भौतिक तत्व (Physical properties) मूल रूपमें विद्यमान नहीं रहते। किन्तु उनका रूपान्तर (Oxide, Sulphide अथवा Carbonate) रूपसे हो जाता है।

मारण क्रिया दो प्रकारकी है, १ सामान्य; २. विशेष। सामान्य मृत भस्म बहुधा १५-२० पुटमें तैयार हो जाती है। किन्तु जब ५०, १०० या १००० पुट दिये जाते हैं, तब विशेष क्रिया कहलाती है। सामान्य रूपसे मारित भस्म रोग दूर करनेमे उपयोगी है। किन्तु रसायन गुण भी प्राप्त करना हो, तो अधिक पुट देकर भस्म निर्माणकी जाती है।

धातुओंके मारणमें पारद मिलाया जायगा, तो विशेष गुणोत्कर्ष होता है। पारद योग वाही है, अत उद्दीपक (Catalytic) सहायक रूपसे कार्य करता है। यदि किसी भी धातुकी भस्म बनानी हो, और पारद के योगसे निर्माणकी जाय, तो वह श्रेष्ठ कोटिकी बनती है। इस सम्बन्धमें कहा है कि.—

लोहानां मारणं श्रेष्ठ सर्वेषा रसभस्मना।
मूलिभिर्मध्यमं प्राहुः कनिष्ठं गन्धकादिभिः॥
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम्॥
॥ आयुर्वेद प्रकाश अ० ३-४३॥

काष्ठौषधियोंसे मारित भस्मोका सेवन करने पर उदरमें कृमिकी उत्पत्ति होती है (उदरे तस्य कीटानि जायन्ते नात्र संशय)।

मारण क्रियामे पुटका महत्व:—धातु मारणार्थ पुट, यह अग्नि के बलाबलके नापनेका एक साधन है। भूतकालमें थर्मामीटर जैसे उष्णता मापक साधन नहीं थे। उस समय किस द्रव्यको कितनी अग्नि देना? किसकी अग्नि देना? ये सब पुटकी परिभाषामे समयानुरूप संक्षेपमें समझाया गया है। विशेषत सद्गुरुकी सन्निधिमें रहकर शिष्य जान लेते थे। आचार्योंने लिखा है कि:—

रसादिद्रव्यपाकानां प्रमाणज्ञापनं पुटम्।
नेष्टो न्यूनाधिक' पाक. सुपाक हितमौषधम्॥
आ० प्र० ३-४५॥

पुट देनेपर धातु लघु बनती है। देहमें शीघ्र फैल जाती है। उसका पचन अच्छी तरह हो जाता है। देहकी क्रिया प्रदीप्त होतीहै। वह उत्तेजना (Stimulation) देती है। इनमें भी यदि पारदमें मारण क्रिया की हो, तो धातु अधिक गुणप्रद बनती है। इस दृष्टि से आचार्योंने कहा है कि:—

पुटनात् स्यात् लघुत्व च शीघ्रव्याप्तिश्च दीपनम्।
जारितादपि सूतेन्द्रा ल्लोहानामधिको गुण.॥
आ० प्र० अ० ३-४५॥

किन किन धातुओंके कितने कितने पुट देना चाहिए? अग्नि गज पुट देवें या कुक्कुट पुट या कैसा पुट? इस सम्बन्धमें भी शास्त्रकारोंने नियम बनाये हैं। भूतकालमें सुवर्ण कितनी डिग्री अग्नि देनेपर पिघलता है? पारद कितनी अग्नि देनेपर उडता है? इसे निर्णय करनेका साधन नहीं था। फिर भी पुट दृष्टिसे कितनी मात्रामें अग्नि सहन हो सकेगी, यह निश्चित रूपसे रस निर्माण करने वाले जानते ही थे। इसी हेतु से लिखा था कि:—

स्वर्ण रूप्य वधे ज्ञेय पुट कुक्कुटकादिकम्।
ताम्रे काष्ठादिजो वह्निर्लोहे गजपुटानि च॥

स्वर्ण, रौप्य की भस्म बनानेके समय अग्नि कुक्कुट पुटकी देवे। क्योंकि उसका रस कम अग्निपर हो जाता है अतः, प्रारम्भमें अग्नि कम देवे। फिर शनैः शनैः बढावे। ताम्रको लकडीकी अग्निपर (चूल्हेपर) मारण करे। लोहको गजपुट अग्नि देवे। तात्पर्य कि लोह-ताम्र आदिको प्रारम्भमें अधिक तेज अग्नि देनेका विधान किया है।

कुक्कुट पुट, गजपुट, वराहपुट, महापुट, भूधरपुट आदि आकृति अथवा पुटके क्षेत्र फल (Area) दर्शा कर समझाया है। कुक्कुट पुट अर्थात् एक कबूतर बैठे उतना स्थान समचौकोर (या गोल) गड्ढा खोदकर, उसमें गोबरी भरकर पुट देना वह गजपुटमें समचौरस (या गोल) एक राजहस्त परिमाणका गड्ढा करके उसमें आधे या कुछ अधिक गोबरी भर ऊपर ठीक बीचमें सपुट रख शेष गोबरी भरकर अग्नि देना, वह पुट देने के लिए अन्य कोई पात्र या यन्त्र की अपेक्षा जमीन को विशेष महत्व दिया है।

गड्ढा योग्य नापमें खोदकर ईंटोंसे बदकर पुट दिया जाय, तो उसमें ठीक योग्य पात्रमें गोबरी भर सकते है। उसमें दी हुई अग्नि बाहर चारो ओर फैल नहीं जाती है। जिससे भस्म द्रव्यके नापमें (on stand) एक सम आवश्यक अग्नि मिलती है। फिर जब अग्नि बुझ जाय, तब चारो ओर की तप्त जमीनको शीतल होने में देर लगती है। तात्पर्य कि कुछ मात्रामें गर्मी सूगर्भ में और सपुटमें अधिक समय तक टिकती है। उससे भस्मका पाक भली भांति होता है।

स्वांग शीतल होनेपर ही संपुटको बाहर निकालने की शास्त्रमें आज्ञा की है। कारण, अग्निसे परिपाक को प्राप्त, भस्म शनै शनै शीतल होती है। भस्ममें हुए पाकका स्वरूप स्थिर रह जाता है।

भस्म परीक्षा —आचार्योंने लिखा है कि —

लोहादेर पुनर्भावो गुणाऽधिक्यं ततोऽग्रता।
न चाप्सु मज्जन रेखापूर्णता पुटतो भवेत्॥

लोह आदि धातुओं की भस्म बनानेमें जब अपुनर्भाव उत्पन्न हो, तब भस्म बनी है, ऐसा माना जाता है। इस तरह परीक्षित भस्म गुणमें श्रेष्ठ मानी है। इस के अतिरिक्त जलमें डालनेपर वह नहीं डूबती, अंगुलियो की रेखाके भीतर प्रविष्ट होती है. यदि नेत्रमें अञ्जन की जाय, तो नेत्रमें पीडन नहीं करती। अर्थात अञ्जन सदृश और "केतकी रजोपमम्" अर्थात केवडे की रज जैसी स्निग्ध हो जाती है।

भस्मको जैसे जैसे पुट दिये जाते हैं, वैसे वैसे वर्ण परिवर्तित होता जाता है। "पुटात रागो" अर्थात् भस्म का रंग भावना द्रव्यके अनुरूप एवं पुटके हेतुसे विशेष प्रकारका होता जाता है।

भस्म की परीक्षा स्थूल, सूक्ष्म भेदसे निम्नानुसार २ प्रकारकी होती है। इनमें स्थूल परीक्षाके निम्नानुसार कई भेद हैं—

अ—स्पर्श परीक्षा:—अंगुलीकी रेखामें प्रवेश योग्य सूक्ष्म श्लक्ष्ण, मृदु, कठिन, शीत, उष्ण आदि हुई है या नहीं ? यह परीक्षा करें। आचार्यने कहा है कि—

अंगुष्ठतर्जनीमध्ये घृष्ट रेखान्तर विशेत्।
मृत लोहं समुद्दीष्ट रेखापूर्ण विधानतः॥र.र.स॥

अंगुष्ठ और तर्जनीके बीचमें छिमटी भस्म लेकर मसलनेपर रेखाओंके भीतर प्रवेश हो जाय, तो भस्म मृदु हुई है ऐसा माना जाता है।

आ—रूप परीक्षा:—प्रत्येक भस्मका वर्ण पृथक् पृथक् हो जाता है। भावना द्रव्योंके अनुरूप भी भेद हो जाता है। इस प्रकारसे देखना, उसे रूप परीक्षा कही है। रूप परीक्षासे भी भस्मके वर्ण, प्रभा (तेज) कान्ति, स्निग्धता, सूक्ष्मता आदि विदित हो जाते हैं। भस्मके भीतर चन्द्रिका तो नहीं रही ? यह भी रूप परीक्षासे (देखनेपर) अवगत होता है। सामान्यतः विभिन्न धातुओंके वर्ण निम्नानुसार प्रतीत होते हैं—

१ स्वर्ण भस्म—जाम्बवाभ सुवर्णस्य भस्म प्राहु भिषग्वरा (आ० प्र०) जामुनके रंग सदृश या कबूतर के कण्ठके रंग सदृश (कपोत कण्ठाभम्) होती है।

२. ताम्र भस्म —मयूरके कण्ठके सदृश (शुल्व मयूर कण्ठाभम्)

३. त्रिवङ्ग भस्म:—हल्दीके रंग सदृश (हरिद्राभ त्रिवङ्गञ्च)।

४. जसदभस्म—पीत वर्णकी (यशदं पीतकं मतम्)

५–ताल भस्मः—शखके सदृश श्वेत (तालं कुन्द प्रभाकाशम्) ।। लि० र० ।।

६–तीक्ष्ण लोह भस्मः—रक्त वर्ण की (रक्त वर्णं हि तद्भस्म योजनीयं यथायथम् । र० र० स० ।।

७–कान्त लोह भस्मः—सिन्दूर सदृश रक्त वर्ण (शोणितं जायते भस्म कृतं सिन्दूर विभ्रमम् ।र.र स.।।

८ नाग भस्म —रक्त या कबूतरके रंगकी प्रभायुक्त (रक्त जायते भस्म कपोतच्छायमेव वा) ।

९. मुण्डलोह भस्म—रक्त जैसी लाल (शोणवर्ण-समुद्भवः)

ऊपर लिखे अनुसार भस्मोके वर्ण कई प्रकारके शास्त्रमें वर्णित हैं। इन वर्णोंके आनेका आधार, भस्म बनानेकी पद्धति, भावना द्रव्य और अग्निके प्रकारपर निर्भर है। यहां पर जो विवेचन किया है वह शास्त्रमें लिखा है, वही दर्शाया है। विधि भेद होनेपर भस्मो के वर्ण पृथक् पृथक् आनेकी भी संभावना है। इसके लिए संशोधन अनुसधान करनेकी विशेष आवश्यकता है।

उदा० लोह भस्मको हिंगुल मिलाकर पुट दिया जायगा, तो श्यामता आ जाती है। घीकुवारकी भावना देनेपर वर्ण रक्ताभ बनता है, जामुनकी छालके क्वाथ की भावना देनेपर नीलाभ वर्ण भी आ जाता है, इस तरह अन्य औषधियां और कृति विधिके भेदसे वर्णमें अन्तर हो सकता है।

इ. रस परीक्षा—रसनेन्द्रियसे या रस विपाकसे भस्मकी रस परीक्षा होती है. धातुकी भस्म सामान्यत' स्वाद हीन होती है, मिट्टी समान स्वाद युक्त भासती है। पचन संस्थानमें जाकर विपाक होनेपर उसपरसे रसका अनुमान या अनुभव होता है। इसके अतिरिक्त उष्णत्व, शीतत्व, क्षारत्व, क्षारहीनत्व गुण भी प्राय विदित हो जाता है।

ई. गन्ध परीक्षा:-नासिकासे सूंघकरके भी परीक्षा हो जाती है। भस्ममें उचित गन्ध आती है या दुर्गन्ध उत्पन्न हुई है, यह जाना जाता है। जैसे कि गन्धक का अंश शेष रह जाने पर भावना द्रव्यकी विकृतिके अनुरूप वास उपस्थित होती है।

उ. शब्द परीक्षा—खरलमें डालकर मर्दन करने पर बत्तेके नीचे सदोष भस्म आने पर कुछ विशेष प्रकार की मंद कर कर आवाज उत्पन्न होती है। दांतपर मसलनेपर भी यह विदित हो जाती है। प्रायः कपड़े से छानने पर अपक्व अंश पृथक् निकल आता है।

ऊ. निश्चन्द्रिका—भस्ममें चन्द्रिका शेष रह गई है या नहीं ? यह रूप परीक्षासे विदित हो जाता है, यह ऊपर दर्शाया है। जब तक भस्ममें चन्द्रिका प्रतीत होती है, तब तक पुट देना ही चाहिए। शास्त्रमें इस सम्बन्धमें लिखा है कि —

निश्चन्द्रक सुसूक्ष्मं च लोचनाञ्जनसंनिभम् ।
तदा तु मृतमित्युक्तमभ्रकं नान्यथा मृतम् ।।
मृतं निश्चन्द्रतां यातमरुणं चामृतोपमम् ।
सचन्द्रं विषवज्ज्ञेयं मृत्युकृद् व्याधिरोसवत् ।।
"यावन्निश्चन्द्रतां यान्ति तावद्देय. पुटः क्रमात्"।

अभ्रक भस्ममें चन्द्रिका प्रतीत होने पर विषवत् त्याज्य या अपूर्ण पक्व मानी जाती है। निश्चन्द्र होने पर भस्म अमृतके समान उपकारक बन जाती है। कई बार अग्नि कम परिमाणमें लगाते रहने पर अनेक पुट हो जाने पर भी अभ्रक भस्ममें चन्द्रिका नष्ट हो जाती है।

ए. लघुत्व '—भस्मके लघुत्वका आधार बहुधा उसके वारितरत्व पर है। "मृतं तरति यत्तोये लोहं वारितरं भवेत् " (र० र० स०) अर्थात् प्राचीन विधि अनुसार बनाई हो तो जलमें डालने पर वह जल पर तैरती है। यह सतह दबाव Surface Tension है। भस्मको योग्य विधिसे मर्यादा अनुसार जितने जितने अधिक पुट दिये जायेंगे, उतना उतना वारितरत्व गुण अधिकतर होता जाता है। आचार्य कहते हैं कि–

तावल्लोहं पुटेद्यावद्यावच्चूर्णी कृतो चले।
निस्तरगो लघुस्तोये समुत्तरति हंसवत् ।। र० भा०

ऐ सूक्ष्मत्व :—शास्त्रमें लिखा है कि—

कचकचिति न दंताग्रे, कुर्वन्ति समानि केतकीरजस ।
योग्यानीह प्रयोगे रसोपरसलोह चूर्णानि ।।आ०प्र०।।

दांतोंसे चबाने पर करकर आवाज न होती हो, एवं केवड़ेकी रजके समान मृदु हो गई हो, तब रस, उपरस और लोहेकी भस्म को प्रयोगमें व्यवहृत करनी चाहिए।

यह भी स्पर्श परीक्षाके अन्तर्गत ही है। रेखा पूर्णतासे सूक्ष्मत्व अवगत हो जाता है। "निश्चन्द्रकं सुसूक्ष्म च लोचनाञ्जन संनिभम्॥"(आ० प्र०) अर्थात अभ्रक भस्म निश्चन्द्रिक, सुसूक्ष्म, मृदु और नेत्रांजनके समान हो जाती है। भस्मको अधिक मर्दन करनेपर अणुओका सूक्ष्मतम विभाजन (Final state of division) होता है।

ओ अमृतास्यः—रसरत्नसमुच्चय कारने कहा है कि—

तस्योपरि गुरुद्रव्यं धान्यं चोपनयेद्ध्रुवम।
हंसवत् तीर्यते वारिण्युत्तम परिकीर्तितम्॥

ऊनम बनी हुई भस्म श्रेष्ठ कोटिकी होनेमे जलपर तरती है एवं उसपर धान्यके दाने रखनेपर भी वह तैरती रहती है, यह ऊनम भस्मकी परीक्षा है।

औ. अग्निस्थिरत्व—भस्मको अग्निमें डालने पर, वह निर्धूम रहे अग्निमें मूलस्वरूपमें स्थिर रहे, वजन कम न हो, एव भस्म जलने (अत्युष्ण होने) पर उसमेंसे किसी प्रकारकी गन्ध न आवे, तब अग्नि स्थायी मानी जाती है। पारदकी भस्म पर "अग्नि स्थायी" इस स्वरूपको अधिक महत्त्व दिया है।

जब तक पारदका पूर्णांशमें पक्षच्छेद नहीं होगा, तब तक वह अग्नि स्थायी नहीं हो सकेगा। इसके लिए पारदको अभ्रक सत्व और सुवर्ण माक्षिक सत्व के ग्रासोका जारण यथा विधि कराया जाता है।

अभ्रक, इस मिश्र धातुमेंसे मूल धातुको पृथक् करनेकी क्रिया अर्थात् सत्त्व पातन क्रिया कहलाती है, अच्छे उत्तम प्रकारके वज्राभ्रकमें लोहका अंश विशेष रहा है, इसके अतिरिक्त मैंगेनिज, पोटासियम और एल्युमिनियमके तत्त्व भी समिश्रित हैं। श्रेष्ठ माक्षिक (copper Cyrite) का सत्त्व विशेषतः ताम्रके समान होता है। अत ये सत्त्व विशिष्ट प्रकारके लोह-ताम्र है, ऐसा पृथक्करण परीक्षासे विदित हो जाता है।

किसी भी द्रव्यमें वह सहन कर सके उससे अधिक सबल द्रव्य मिलाया जायगा, उसका रासायनिक योग (Compound) बनाया जायगा, तो मूल द्रव्यका गलन बिन्दु (Melting point) और क्वथनाक Boiling point) बढ जाते हैं। जैसे कि जल सामान्यत. १००° से° उष्णता मिलने पर उबलने लगता है, उसमें नमक पिघलाकर उबाला जायगा, तो उसका क्वथनाक बढ जाता है। अर्थात नमककी मात्राके अनुरूप ११०° से° या उसमे भी अधिकतर गर्मी मिलने पर उबलने लगता है। इसी तरह पारद सामान्यतः ३५६° या ३५७° से° गर्मी मिलने पर बाष्प होकर उड़ने लगता है। किन्तु उसके साथ लोह या ताम्र जैसे विशिष्ट द्रव्यका योग कराया जायगा, तो तपाने पर क्वथनांक बढ जाता है। लोहका गलन बिन्दु १५३५° से° और क्वथनांक करीब ३०००° से° माना है। ताम्रका गलनाक १०८४° से° और क्वथनांक करीब २३००° से° है। इस हेतुसे पारदकी अपेक्षा लोह और ताम्रका गलनाक और क्वथनाक अधिकतर होनेसे, एव ये दोनो धातु पारदकी मित्र मानी जाती हैं, इस लिए पारद को अपनी शक्तिकी अपेक्षा न्यून उष्णता पर उड़ने नहीं देती; किन्तु वे धातु अग्निके भीतर उसे पकड़ रखती है। इस नियमके अनुसार अग्निको अधिकतर परिमाणमें सह सके, वैसा पारद बन सकता है (उसे ही आचार्यो ने पक्षच्छिन्न संज्ञा दी है।

पारदको पक्षच्छिन्न बनानेके लिए यथा विधि पहले गन्धकका जारण कराया जाता है, फिर अभ्रक सत्त्व (लोह) और माक्षिक सत्त्व (ताम्र) का यथा विधि बिड और गन्धक मिला मिला जारण कराया जाता है। इस क्रियाके भीतर पारदको अजीर्ण न हो जाय, उस तरह सम्हालकर ग्रास दिये जाते हैं। इस नियम परसे सहज समझमे आ सकेगा, कि पारदकी पक्षच्छेदन क्रिया अभ्रक-माक्षिकके यथा विधि ग्रास मान, चारण, गर्भद्रुति और जारण क्रियापर अवलम्बित है। यह विधान पारदके गलनांक और क्वथनांक (To Increase the melting point and boiling Point) बढानेकी क्रिया ही है।

अग्नि स्थायी शब्दसे अग्निका जिस तरह सामान्य अग्नि अर्थ किया जाता है, उस तरह आयुर्वेद की परिभाषाके अनुरूप 'जठराग्नि' भी तात्पर्यार्थ हो सकता है। व्यवहारमे माने हुए कई अग्नियोके भीतर

जठराग्नि भी है। पारद गन्धक, अभ्रक सत्व और माक्षिक सत्वके साथ यथा विधि जारण क्रिया करने पर पचान्छिन्न होता है। फिर उसे सबीज बनाकर यथा विधि भस्म निर्माण करायी जायगी, तो वह भस्म रसायन गुणप्रद और महा मूर्च्छित होती है। फिर वह व्याधियोंका हरण और रसायन गुण प्रदान करने में समर्थ बनती है। इस भस्मके लिए "मूर्च्छितो हरते व्याधिम्" और "मूर्च्छित्वा हरति रुजम्" आदि वचन कहे हैं।

आयुर्वेदकी अनेक औषधियोंको मुख द्वारा ही सेवन करनेका विधान किया है फिर वे उनके रस-गुण-वीर्य विपाक-प्रभावकी रीतिसे अपना लाभ पहुँचाती हैं।

मूर्च्छनके २ प्रकार हैं। १–सगन्धक मूर्च्छन, २ निर्गन्ध मूर्च्छन। निर्गन्ध मूर्च्छनमें पारदके यौगिक–रस कर्पूर, रस पुष्प आदि जठराग्नि स्थिर नहीं होते अर्थात् उनका पचन योग्य नहीं होता। फिर उसका विपाक्त असर कुछ समय व्यतीत होनेपर उपस्थित होता है। इसके विपरीत पारदके सगन्ध मूर्च्छन योग-विशुद्ध पारदकी कज्जली, रससिन्दूर, चन्द्रोदय, पर्पटी आदि योग्य बन जानेपर उसके विष प्रभाव भविष्यमें कदापि प्रतीत नहीं होते। इन सब प्रयोगोंके जठराग्निमें स्थिर हो जानेके हेतुसे उनका रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव के अनुरूप परिणाम उत्पन्न होता है। वे देहके रस-रक्तादि धातुओंके भीतर धात्वग्निके बलसे पचन हो जाते हैं। फिर रोगहर और रसायन गुण, योगकी शक्तिके अनुरूप समर्पित करते है। इनके अतिरिक्त परिपक्व भस्म भी महा मूर्च्छित योगके अन्तर्गत मानी जाती है। जो प्रबल रसायन गुण समर्पक है। इस स्पष्टी करणपरसे "अग्निस्थायी भी" शब्दका अर्थ आयुर्वेदकी परिभाषाके अनुरूप बाह्य, जठराग्नि और धात्वग्नि भी हो सकता है। जिस तरह 'स्नेह' शब्दका लोक भाषामें अर्थ प्रेम है। किन्तु आयुर्वेदकी परिभाषाके अनुरूप स्नेह ४ प्रकारके द्रव्य हैं। घृत, तैल, वसा और मज्जा। इस तरह अग्नि स्थायीके विभिन्न अर्थ होते हैं। पारद सेवन करनेपर अग्निका अर्थ लौकिक अग्नि नहीं होगा। जठराग्नि और धात्वग्नि स्थान भेदसे हो जाता है। इस तरह तात्पर्यके अनुरूप अर्थ करना, वह आयुर्वेदकी परिभाषाके अधिक अनुकूल है। विद्वान् वैद्योंसे निवेदन है कि मेरी इस विचार सरणीके ऊपर अवश्य विचार करें।

अं० सूक्ष्म परीक्षा—भस्मोकी अन्य प्रकारकी परीक्षा है, उसे सूक्ष्म परीक्षा कह सकेगे। ऊपर जो परीक्षाएं लिखी हैं, वे सब स्थूल भौतिक परीक्षा (Physical test)है। सूक्ष्म परीक्षाके निमित्त रासायनिक विधि (chemical test) को अपनाई जाती है।

१. निरुत्थ—

सर्वमेव मृत लोहं धांतव्यं मित्रपञ्चकैः।

इत्येव स्यात् निरुत्थानम् सेव्यं वारितर भवेत्॥

नि० ॥ २० ॥

जिन धातुओंकी भस्मोकी परीक्षा करनी हो, उनको मित्र पञ्चकके साथ मिलाकर तपावे, फिर भस्मके भीतर कुछ भी विक्रिया न हुई हो तो वह निरुत्थ मानी जाती है।

अथवा चांदीके साथ भस्मको मिलाकर तपावे फिर शीतल करनेपर रौप्यका वजन न्यूनाधिक न हो, तो भस्मको निरुत्थ कह सकते हैं।

२. अपुनर्भव—रसरत्न समुच्चयकारने कहा है कि—

गुडगुञ्जासुख स्पर्श मध्वाज्यैः सह योजितम्।

नाऽऽयाति प्रकृति ध्मानाद पुनर्भव मुच्यते॥

गुड़, गुग्गुलु, शहद, टकण और घीके साथ भस्म को मिलाकर तीव्र अग्नि देकर तपावें, जो भस्म मूल धातुरूपमें परिवर्तित न हो जाय, वह अपुनर्भव कहलाती है।

इनके अतिरिक्त कई धातुओकी विशिष्ट परीक्षाएं भी हैं। जैसे कि—

ताम्र भस्म—ताम्र भस्मको दही या अन्य अम्ल द्रव्यमें मिला २४ घण्टे रहने देवे। भस्म योग्य बनी होगी, तो दहीका वर्ण हरा-नीला नहीं होगा। अपक्व भस्म होगी, तो दही हरा हो जायगा।

ताल भस्म—इसे लवणाम्ल (Hydrochloric acid) में डालें। निम्न तलमें पीतवर्णकी भस्म मिले, तो भस्म योग्य बनी है, ऐसा विदित होता है।

पारद भस्म—अग्निपर डालनेपर निर्धूम, तेज हीन श्वेत, धातुओंका भोक्ता, वजनदार और चपलता हीन हो, तो योग्य मानी जाती है। आयुर्वेद प्रकाश कारने कहा है कि—

अतेजा अगुरूः शुभ्रो लोहहाऽवञ्चलो रसः।
यदा नावर्तते वह्नौ नोर्ध्वं गच्छेत्तदा मृतः ॥१-४०८॥
अगुरुरतेजाः शुभ्रो वह्निस्थायी स्थिरोऽधूमः।
हेमादिधातुभोक्ता तरङ्कर्ता स्यान्मृतः सूतः ॥१-४०८॥

रसादि भस्मोंके गुण—धातुओंकी भस्मो को मानव देहके भीतर पचन योग्य निर्माण करनी है, इसी हेतुसे देहमें प्रवेश करके रस रक्तादि धातुओंके भीतर मिल जाती है। इसके सम्बन्धमें आयुर्वेद प्रकाश कारने कहा है कि —

रसीभवन्ति लोहानि मृतानि सुरवन्दिते।
विनिघ्नन्ति जरा व्याधीन् रसयुक्तानि किं पुनः ॥२-४२॥

इस श्लोकका अन्य ग्रन्थोंमें निम्नानुसार कुछ भेद सह पाठान्तर हुआ है।

मृतानि लोहानि रसी भवन्ति निघ्नन्ति युक्तानि महामयांश्च। अभ्यास योगाद् दृढ़ देह सिद्धिं कुर्वन्ति रुगजन्य जरा विनाशनम् ॥

रसादि धातुओंकी भस्म रसमय (रस सदृश) हो जाती है। जलके समान वह देहकी श्लेष्म कलाओ के कोषाणु (Tissues) में शोषित हो जाती है। अर्थात् धातुओंको रस सदृश रूपान्तर (Colloidal form) बन सके वैसी निर्माण करने की क्रिया, यह शोधन-मारण है। यहांपर रसी भवन्तिका अर्थ Reducing to Colloidal form है, ऐसा मानना चाहिए। मूल धातुओंकी अपेक्षा भस्म स्वरूप प्राप्त होनेपर Colloidal हो जानेसे देहके भीतर विशेष गुण प्रदान करती है। आधुनिक विज्ञान विदने धातुओंकी Colloidal अवस्था की व्याख्या निम्नानुसार की है:—

A substance is said to be in colloidal state when its perticles are suffiicently finely divided in submicroscoptic size as can be kept in solution without any mechanical suspension. The particles in the colloidal solution do not separate out in the liquid owing to brownian movements and to the electric charges which they carry. In some this charge is positive but in the majority it is negative and the mutual repulsion of similarly charged particles keep then in suspension. ... The use of colloidal solution in medicine is based on the fact that the minute particles remaining in the solution give a larger surface area and there fore confer greater activity......colloidal metals have been extensively used as internal antiseptics in many forms of infection chiefly puerperal and other septicimias, colloidal and has been used in the treatment of cancer and siver in the form of Electrargol in septic conditions and infections (Pharmacology and Materia Medica by Ghosh.)

आयुर्वेदकी पद्धतिसे निर्मित अनेक धातुओंकी भस्म इस तरह रसी (Colloidal) स्वरूपको प्राप्त हुई हैं और उसे हमने स्वानुभूत किया है। इस प्रकारकी भस्मोंमें विद्युच्छक्ति अवस्थित है। उनके अणुओंमें कम्पन (Brownian movement) शक्ति निहित है. उनमें सेन्द्रिय रूपान्तर पाये हैं। इसीसे वे देहके भीतर रस-रक्तादि धातुओंको पोषण प्रदान करते है, रोगोंको दूर कर सकते हैं और युक्ति पूर्वक उसका प्रयोग करने

पर देह सबल और निरोगी बनता है, वृद्धा वस्थाको दूर करता है, अकाल वृद्धत्वको नहीं आने देता। ये हैं अपनी भस्मोंके सामान्य गुण धर्म।

यह मूल प्रसंग अभ्रक, रत्न, कान्तपाषाण और धातु आदिकी द्रुतिके अन्तमें दर्शाया है। द्रुति करना हो, सब पहले धातु आदिका मारण करना पड़ता है। धातुका मारण किस किस औषधिसे करे? इसके उत्तरमें पहले औषध सूची देकर समझाया है। इन औषधियोंसे अर्ध मृत भस्म बना कर फिर द्रुतिके लिए यथा नियम क्रिया करें। यह आचार्यका तात्पर्य प्रतीत होता है।

अर्ध मृत भस्म रूप बने हुए सब लोहकी फिर क्रिया करने पर रसीभवन्ति (द्रुति भवन्ति) द्रुति बन जाती है। जो सब रोगोंको नष्ट करती है। इन द्रुतियों के साथ यथा विधि रसेन्द्रका योग कराया जाय, तो आश्चर्य ही क्या?

उक्त श्लोकके आगे "शीलनन्नाशयन्त्येव वलीपलितरुग्जरा: ॥ लिखा है अर्थात् उक्त रसेन्द्र युक्त द्रुतिका प्रयोग रसायन सेवन करने पर सर्व रोग, जरावस्था, तथा वली, पलित सबको दूर करके युवावस्था की स्फूर्ति और आरोग्य प्रदान करता है। ये सब द्रुति और रसेन्द्रकी महिमा दर्शायी है।

पारद भस्म गुण:—आयुर्वेद प्रकाश कारने कहा है कि:—

रसायनं त्रिदोषघ्नो योगवाह्यति शुक्रलः।
भस्म सूतोऽखिलातङ्क नाशनस्त्वनुपानतः ॥१-४०९॥

सबीज रसेन्द्रकी यथा विधि भस्म करनेपर वह रसायन, त्रिदोष नाशक, योगवाही, अति शुक्र वर्द्धक तथा योग्य रोगानुरूप अनुपानके साथ देनेपर सब प्रकारके रोगोंकी नाशक है।

ये गुण पक्षच्छिन्न, सबीज पारदकी भस्म से मिलते हैं। सामान्य पारद की भस्म बनाने पर वह अपक्व रहती है और शास्त्र दर्शित गुण भी नहीं दर्शा सकती।

रसादि धातुओंकी भस्मकी मात्रा:—आयुर्वेद प्रकाशकारने प्राचीन आचार्योंके मत अनुसार अनुभव करके लिखा है कि:—

यव वृद्धया प्रयोक्तव्यं हेम गुञ्जाष्टकं रविः।
तारं तद्द्विगुणं, लोहमन्यत्तु त्रिगुणाधिकम् ॥
गुञ्जामेकां समारभ्य यावत्स्युर्नव रक्तिकाः।
ताव ल्लोहं समश्नीयाद्यथा दोषबलं नरः॥३-४०।४१॥

एक यवके समान भस्मकी मात्रा शक्तिके अनुरूप क्रमशः बढावें। प्रारम्भमें सुवर्ण भस्म १ यव प्रमाण देवें। ताम्र ८ रत्ती पर्यन्त। रौप्य २ रत्ती तक। लोह भस्म सामान्यतः ३ रत्ती तक। एक गुञ्जासे प्रारम्भ करके अधिकमें अधिक ९ रत्ती तक मात्रा बढा सकते हैं। इसमें दोषोंके बलाबलका विचार करके मात्राका निर्णय करना चाहिए।

यहांपर प्राचीन पद्धति अनुसार बनाई हुई भस्मों की मात्रा ४०० वर्ष पहले सबल देह वालोंके लिए लिखी है। वर्तमानमें शारीरिक और मानसिक शक्ति निर्बल हुई है। एवं कई भस्में विशेषतर उग्र बनाई जाती हैं। अतः इस परिस्थितिका विचार करके मात्रा का निर्णय करना चाहिए।

पारद भस्मकी मात्रा—आयुर्वेद प्रकाश कारने रसार्णवके आधारसे लिखा है कि—

गुञ्जामात्रं रसं देवि ! हेमजीर्णं तु भक्षयेत्।
द्विगुञ्जां तारजीर्णस्य रविजीर्णस्य तत्त्रयम् ॥

पारदमें सुवर्ण जारित किया हो, तो मात्रा १ रत्ती। रजतका जारण किया हो तो २ रत्ती तथा मात्र ताम्र का जारण करके भस्म बनायी हो तो मात्रा ३ रत्ती मानी जाती है।

यदि सबीज पारदको अधिक वेधक बनाकर भस्म बनायी हो, तो मात्रा स्वल्प हो जाती है। इस तरह औषध बल और देह बल आदिका विचार करके योजना करनी चाहिए। इतिशम् ॥

अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसंधान परिषत्
(All India Mercury Research Association.)
स्वीकृत प्रस्ताव

१–अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसन्धान संमेलन में अनेक प्रान्तोंसे प्रतिनिधि गए तथा रस शास्त्रज्ञ विद्वान् एकत्रित हुए है। यह सम्मेलन रस शास्त्रकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। कालेड़ा कृष्ण गोपाल में यह जो सम्मेलनका आयोजन हुआ है, इसी प्रकार प्रति वर्ष विविध प्रांतोंमें अखिल भारतीय स्वरूपसे जारी रखना परमावश्यक है। इसलिए यह पारद अनुसंधान सम्मेलनका यह अधिवेशन प्रस्ताव करता है कि तज्ञो में से एक कार्यवाहक समिति Executive Committee नियुक्त की जाय, जो इसका संगठन कर एक विधान तैयार कर ३ मासमें अपनी योजना तैयार करले।

स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महा. कालेड़ा कृ० गो०	अध्यक्ष
राजवैद्य शान्तिलाल जी	,, सेक्रेट्री सयोजक से०
श्री प्रेमशंकरजी	सदस्य, अजमेर
श्री हरिदत्तजी शास्त्री	,, बम्बई
श्री वासुदेव भाई यू. द्विवेदी	,, जामनगर
श्री धामणकर	,, पनवेल
श्री भवानीशंकरजी	, उदयपुर
श्री चेतनानन्दजी	,, दिल्ली
महन्त श्री मुरलीमनोहरजी	उदयपुर सह संयोजक

कार्यक्षेत्र—रस रसायन कार्यको आगे बढ़ाना, ऐसे अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसधान सम्मेलन का आयोजन करना, और आगे प्रचार करना।

(अध्यक्ष स्थानसे)
सर्व सम्मतिसे स्वीकृत
वैद्य प्रेमशंकर शर्मा २८-३-५९

२–इस सम्मेलनमें रसशास्त्र तथा पारद अनुसंधान विषयक जो चर्चा, विचारणा हुई है तथा जो अनुभव सामने रखे गये हैं उससे यह सम्मेलन इस निर्णयपर पहुँचा है कि आज जो रस शास्त्र तथा पारद अनुसंधान का जो कार्य भारतवर्षमें हो रहा है उसको अधिक प्रोत्साहन मिले, और उसका अधिक प्रचार हो। यह सम्मेलन केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंसे अनुरोध करता है कि वे अपना ध्यान इस प्रणालीकी ओर दें। तथा इसके विकासको सहायता दें।

(अध्यक्ष स्थानसे)
वैद्य प्रेमशंकर शर्मा
२८-३-५९

३–श्री कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवनने पारद अनुसधानका कार्य और आयुर्वेदीय शिष्ट साहित्यका प्रकाशन किया है यह हमने प्रत्यक्ष देखा उससे हमको प्रसन्नता हुई है। यह जनकल्याणका कार्य जो यहांपर निःस्वार्थ भावसे किया जा रहा है इसके लिये हम इस संस्थाके सचालकोंको धन्यवाद देते हैं।

(अध्यक्ष स्थानसे)
वैद्य प्रेमशंकर शर्मा
२८-३-५९

रसशास्त्रके प्रयोगनिर्माणार्थ
नियम और विधान

प्राचीनकालमें जब तक ग्रीक और हूण जातिके आक्रमण नहीं हुए थे, तब तक भारत स्वतन्त्र, सुखी, धनधान्य सम्पन्न था। बाहरसे विदेशियोंके आक्रमण के समयमें या करीब उस कालसे पहले जैन और बौद्ध धर्मकी स्थापना होनेसे साम्प्रदायिक अत्याग्रहवश समाजमें परस्पर मनमुटाव उत्पन्न हो गया था तथा राजाओंके भीतर परस्पर रागद्वेष बढकर वैमनस्य फैला था। ये सब काल प्रभावसे एक साथ उपस्थित हुए थे। परिणाममें देशका अधःपतन होनेका आरम्भ हो गया था। राजागण भीतर भीतर युद्ध करसे निर्बल बनते गये थे। एवं एक दूसरेके कष्टमें सहायता पहुँचाने रूपधर्मको भूल गये थे। जिससे विदेशियोंको अधिक मौका मिला था। बार बार विदेशियोंके आक्रमण होने लगे। पहले ग्रीक और हूण जाति ही आक्रामक थी। १० वें शतकसे मुस्लिमोंका त्रास बढ गया। लूटना जलाना, दुराचार करना, जनताको दुष्टता पूर्वक मारना, धर्म परिवर्तन करना आदि अन्याय अत्यन्त बढ गये। फिर वे राज्योंको हड़पने के लिए भी युद्ध करने लगे। १२ वें शतकके अन्तमें देहली नरेश पृथ्वीराज चौहानको मारकर देहलीमें गादी स्थापित की। प्रजापर भयङ्कर अत्याचार आरम्भ हो गया। मुस्लिम आबादी बढाकर अपने सम्प्रदायको सुदृढ बनाने और भोग विलास करनेके लिए हो सके उतना जुल्म किया गया। यह स्थिति क्रमशः बढती गयी और करीब ६०० वर्ष तक रही। फिर ब्रिटिश सरकारने भारतका राज्य सम्हाला। क्रमशः राजाओंको एक पीछे एक सबको अपने वश किये। आर्थिक शोषण युक्तिपूर्वक अत्यधिक बढा दिया, धार्मिक आचरण शिथिल हो ऐसी शिक्षा दी। पाखण्ड प्रपञ्च फैलानेकी योजना बनाई। परिणाम में जनताकी आर्थिक स्थिति कमजोर बनी। शारीरिक स्वास्थ्य गुमाया, नैतिक अधःपतन हुआ। एवं जनता बुद्धिसे भी अपग बन गई। इस स्थिति प्राप्ति होनेके पश्चात् जब ब्रिटिशोंकी स्थिति दयनीय बन गई। उनने निरुपाय होनेसे भारतको स्वतन्त्रता दे दी। इसे मात्र १२ वर्ष हुए हैं अभी तक पुनः मूल स्थितिकी प्राप्ति या शान्तिकी स्थापना नहीं हो सकी है। किन्तु पतन और अधिक हो गया है।

जब तक भारत स्वतन्त्र, सुखी, धन, धान्य संपन्न था, तबतक सब प्रकारके साहित्योंकी उन्नति किस तरह हो, इस ओर लक्ष्य दिया जाता था तथा वैज्ञानिक नूतन-नूतन दिव्य पदार्थोंके निर्माण आदिके निमित्त आविष्कार करनेकी ओर प्रयत्न होता रहता था। दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, पिङ्गलशास्त्र, शब्दशास्त्र, धनुर्विद्या, योगविद्या, तन्त्रशास्त्र, आयुर्वेद, रसशास्त्र तथा कलाकौशल आदि सबके साहित्य और अनुभवपूर्ण कृतिमें काफी प्रगति हुई थी। भारतवर्षमें बड़े बड़े कई विश्व विद्यालय स्थापित हुए थे। भारतकी सुकीर्तिकी सुवास संसार के सब देशोमें पहुँच चुकी थी। चारो ओरके विदेशो से विद्या प्राप्तिके निमित्त विद्या प्रेमी आते रहते थे। यह समय काल प्रभावसे शनैः शनै बिलकुल बदल गया है। अब भारतको विद्या प्राप्तिके लिए अन्य देशों की ओर देखना पड़ता है।

भारतमें इस समय घोर अज्ञान छा गया है।

सत्यनारायण महाप्रभुकी सेवा, मनका संयम, इन्द्रिय दमन, सदाचार और मानवोचित नैतिक धर्म पालन, शारीरिक स्वास्थ्यकी रक्षा, इन सबमें शिथिलता आगई है या घोर पतन हुआ है। ऐसी परिस्थितिमें रहकर रसशास्त्रके प्रयोग निर्माणके नियमोंके सम्बन्धमें विचार करना है और उसका आश्रय लेकर समाजके स्वास्थ्यकी और आर्थिक उन्नतिका अधिक लाभ उठाना चाहते हैं।

रसशास्त्रके भीतर करीब १००८वर्ष पहले आचार्य श्री नागार्जुनने इस विद्याका लाभ सातवहन (शालिवाहन) को दिलाया था। फिर अनेक शिष्यो प्रशिष्यों को शिक्षण देकर जनताको आर्थिक सहायता देकर बौद्ध साम्प्रदायको ब्रह्मदेश, चीन, जापान, हिन्द, चीन मलाया, श्याम, सिलोन आदिमें फैलाया था और सुदृढ़ भी बनाया था। फिर पारदपर विभिन्न रोगोंको दूर करनेके प्रयोगोपर विशेष लक्ष्य आयुर्वेद शास्त्रकारों ने दिया और सब रोगो के नाशक रसप्रयोग निर्माण कराये।

आयुर्वेदके चिकित्सकोंको प्रतिवर्ष नूतन औषध संग्रह करना पड़ता था। वर्षाऋतु व्यतीत होनेपर पहलेकी संगृहीत औषधियां पुरानी और न्यून गुणप्रद मानकर फेंक देनी पड़ती है। संसारकी आबादी बढ़ जानेसे और जंगल कम हो जानेसे वनौषधियोंकी प्राप्तिमें धीरे-धीरे कठिनाई बढने लगी थी। इस हेतुसे भी उनको अधिक सरल मार्ग ग्रहण करनेकी आवश्यकता उत्पन्न हुई थी।

रसशास्त्रके अध्ययनसे यह विदित हुआ कि पारद धातु और रत्न आदि ऐसे माध्यम है कि उनमें वनौषधियां और प्राणिज औषधियोंके गुण, धर्म, चेतना, शक्ति प्रधान, विद्युच्छक्ति (प्राभाविक शक्ति) इन सबका धारण और संरक्षण करनेकी अचिन्त्य शक्ति है। पक्षच्छिन्न पारद और धातु आदिको अग्निमें देनेपर गुण, धर्म आदिका नाश नहीं होता। एव इन गुणोंको दीर्घकाल पर्यन्त मूल स्थितिमें रख सकते हैं। फिर अनेक प्रयोगोका निर्माण करके अनुभव किया। पारद सब रोगोंको नाश करनेमें समर्थ है। इसी हेतुसे रसायनशास्त्र और आयुर्वेदके निष्णात आचार्योंने पारद प्रधान रोगनाशक सफल और आशुफलप्रद प्रयोगोंका निर्माण किया है। वर्तमानमें यह संग्रह करीब २०००० का मिलता है। सब रोगोपर प्रयोग निर्मित हो जाने पर रस पद्धतिकारने लिखा है कि—

सा दैवी प्रथमा सुसंस्कृत रसैर्या निर्मिता सद्रस-
श्चूर्णस्नेह कषाय लेहरचिता स्यान्मानवी मध्यमा।
शस्त्रच्छेदन लास्यलक्षणकृताचाराधमा साऽऽसुरी-
त्यायुर्वेदरहस्यमेतदखिल त्रिस्त्रश्चिकित्सा मताः।

तात्पर्य कि जो चिकित्सा सुसंस्कृत रसप्रयोगसे की जाय वह दैवी। चूर्ण, स्नेह, (घृत-तैल), कषाय, अवलेह, गुटिकासे की जाय, वह मनुष्योचित मध्यम। शस्त्रछेदन,क्षारदहन, अग्निदहन, आदिसे क्रियाकी जाय वह आसुरी अधम इस तरह उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ अथवा दैवी, मानुषी और आसुरी, ये त्रिविध चिकित्सा है, यह समस्त आयुर्वेदका रहस्य है।

आयुर्वेद प्रकाशकारने भी रसवैद्यकी स्तुति करने के निमित्त कहा है कि—

मुक्त्वैकं रसवैद्यं तु लाभ पूजा च कीर्तनम्।
तृण काष्ठौषधैर्वैद्यः को लभेन वराटिकाम्॥

रस, भस्म आदिके प्रयोग कब कार्य कर सकेंगे? एव इसके लिए किन-किन नियमोंका पालन करना पड़ेगा। ये सब शास्त्रकारोने निश्चित करके लिपिबद्ध कर लिया है। इन नियमोको लक्ष्यमें रखकर देश भेद, स्थानभेद, कालभेद,ऋतुभेद, प्रकृतिभेद, लक्ष्यभेद, आदि कारणोंसे प्रयोगोंमें कुछ न्यूनाधिक करना हो, या नूतन प्रयोग निर्माण करना हो, तो हो सकेगा। इस सम्बन्धमें संक्षेपमें किन्तु नूतन अधिकारी सज्जन उद्देश्यको समझ सकें, उस तरह दर्शानेका प्रयत्न करता हूँ।

अशुद्ध पारद विविध रोगोंकी उत्पत्ति करता है।

अतः पारदको सर्वदा सम्यक् प्रकारसे संशोधित करके ही उपयोगमें लेना चाहिए। संस्कारित पारदको गन्धक जारित करके प्रयोगोंमें मिलाया जाय तो अधिक कार्यकारी बनता है। इसमें भी अधिक लाभ अभ्रकसत्व और सुवर्णमाक्षिकसत्वका ग्रास देकर पक्षछिन्न बनाने पर मिलता है। इसकी अपेक्षा भी अधिकतर सुवर्ण-ग्रास देकर बुभुक्षित बनानेपर बनता है। जितना अधिक जारण शास्त्र विधिके अनुसार कराया जायगा उतना ही विशेष प्रभावशाली बनता है।

इसलिये आचार्योंने कहा है कि—

अजारयन्तः पविहेमगन्धं वाञ्छन्ति सूतात्फलमप्युदारम्।
क्षेत्रादनुप्तादपि सस्यजातं कृषीवलास्ते भिषजश्च मन्दाः॥

विशुद्ध पारदसे यदि उत्तम फलकी प्राप्तिकी आशा करते हो, तो अभ्रकसत्व (सुवर्णमाक्षिक सत्वसह), सुवर्णभस्म और गन्धकका ग्रास देकर विधिपूर्वक जारण क्रिया करें। इनका जारण किये बिना जो फल चाहते हैं, वे चिकित्सक बीज वपन रहित क्षेत्रसे अनाज (फसल) प्राप्तिकी आशा रखने वाले किसानके सदृश हैं। अर्थात् दोनों मन्द बुद्धि वाले हैं।

रसहृदयतन्त्रके समान रसेन्द्रचिन्तामणिकारने भी कहा है कि—

रसगुण बलिजारणं विनाऽथ न
खलु रुजां हरणक्षमो रसेन्द्रः।
न जलदकलधौतपाकहीनः
स्पृशति रसायनतामिति प्रतिज्ञा॥

जब तक विशुद्ध पारदको अन्तर्धूम विधिमें षड्गुण गन्धक जारित नहीं किया जायगा, तबतक रोग विनाश करनेमें पूर्णांशमें सफल नहीं हो सकेगा। षड्गुण गन्धक जारित होनेपर सन्निपात और अन्य असाध्य रोगोंपर भी तत्काल अपना चमत्कार दर्शाता है। गन्धक जारणके पश्चात् अभ्रकसत्व और सुवर्णका यथोचित जारण नहीं कराया जायगा तो वह रसायन रूपसे संतोषप्रद कार्य नहीं कर सकेगा यह रसतन्त्रकार प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं अर्थात् पूर्णांशमें सत्य है।

जो जो संशोधन या गुणाधान क्रिया की जाय, वैसा समझ करके शास्त्रविधि अनुसार करनी चाहिए। अन्यथा उचित लाभ नहीं मिल सकेगा। इसलिए रसार्णवकारने कहा है कि—

विधिहीनो रसो देवि! नैव सिध्येत् कदाचन।
शास्त्रहीनस्य देवेशि! नैवसिद्धिर्वरानने॥ अष्टादशपटल॥

रोगहर प्रयोगोंके निमित्त पारदको शुद्ध करनेके लिए अष्ट संस्कार करनेकी आवश्यकता है। इन संस्कारों को यथा विधि करनेपर पारद शुद्ध और गुणप्रद बनता है। उनपर जिन औषधियोंके स्वरसका योग कराया जाता है, उनमेंसे कई औषधियां शोधन और गुण-प्रदान करने वाली भी हैं। इसी हेतुसे कई नूतनगुण, विद्युच्छक्ति आदिकी भी साथ साथ प्राप्ति होती है।

जिस तरह पारदके शोधन संस्कार पहले किये जाते हैं। उस तरह धातु उपधातु आदिका भी शोधन और गुणाधान संस्कार किया जाता है। धातुओंका शोधन कैसे किया जाय? इस सम्बन्धमें आचार्योंने लिखा है कि—

सुवर्णरूप्य ताम्रायः पत्राण्यग्नौ प्रतापयेत्।
कृत्वा कण्टकवेधीनि दृष्ट्वा वह्निसमानि च॥
निषिञ्चेत् तप्ततप्तानि तैले तक्रे गवांजले।
काञ्जिके च कुलत्थानां कषाये सप्तधा पृथक्॥
एवं स्वर्णादि लोहानां विशुद्धिः संप्रजायते।
तीक्ष्णादि लोहकिट्टं संशोध्यं लोहवद्बुधैः॥

सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, लोह इन सबके कण्टकवेधी पतरे बना अग्निमें अच्छी तरह तपा तपाकर तैल, तक्र, गोमूत्र, कांजी, कुलथीका क्वाथ इन सबमें ७ ७ वार बुझावें। इस तरह बुझाते रहनेसे इन धातुओं की विशुद्धि हो जाती है। साथ साथमें इन औषधियों द्वारा प्राणतत्वकी प्राप्ति होती है और मृदुता भी आती है। मण्डूरका शोधन भी तीक्ष्ण आदि लोहके समान किया जाता है।

अन्य ग्रन्थकारने रविदुग्ध, जम्बीर द्रव अधिक लिखे हैं। ताम्रके संशोधनार्थ अधिकतर लक्ष्य देनेका आचार्योंने विधान किया है। ऊपर जो नियम धातु आदि तपाकर बुझानेका दर्शाया है, वह सामान्य नियम है। इसके अतिरिक्त भी कई प्रकार दर्शाये है। एवं विशेष गुणाधान विधि भी कही है। कई बार विशेष गुणप्रद बनानेके लिए रोगहर अनेक औषधियोंकी भावना दी जाती है।

सूचना—भ्रम, प्रमाद, बुद्धिमांद्य, अपरिचय आदि कारणसे विरोधी गुणप्रधान, द्रव्योंके रस, गुण, वीर्य को आकर्षित न कराया जाय, यह सम्हालें। भूल होने पर इच्छित लाभ नहीं मिल सकेगा। क्वचित् हानि भी पहुँचेगी जैसे पित्त ज्वर प्रयोग तैयार करना है, तो पित्तवर्द्धक किसी भी औषधिकी भावना नहीं देनी चाहिए एवं प्रयोगमें मिलाना भी नहीं चाहिए।

नाग, वङ्ग, यशद, खर्पर, उपधातुएं रत्न, उपरत्न विष, उपविष, विषमय, तीक्ष्ण काष्ठौषधियां, इन सबका शोधन शास्त्र विधि अनुसार कराया जाता है। यह सब आयुर्वेद सिद्धित रसग्रन्थोंके भीतर विस्तारसे दर्शाया हुआ है। योग्य संस्कार करनेपर ही मानवदेहके लिए अनुकूल बन सकते हैं।

शुद्ध पारदको प्रयोगोंमें मिलानेके लिए गंधक मिलाकर कज्जली बनाई जाती है। अथवा हिंगुल, रससिंदूर आदि बनाकर प्रयोगमें सम्मिलित किया जाता है। पित्त वर्द्धक प्रयोगोंमें बहुधा हिंगुल, रससिन्दूर आदि अधिक प्रयोजित होते हैं। एवं पित्त-शमनार्थ बहुधा कज्जली मिलाई जाती है। अतिसार ग्रहणी, आदि रोग जीर्ण होनेपर यदि अधिक कष्टप्रद हो तो उसमें पारदका सेवन पर्पटी बनाकर कराया जाता है किसी भी प्रयोगमें शुद्ध पारद गन्धक प्रधान कज्जली, या अन्य द्रव्य न बनाते हुए नहीं मिलाया जाता।

कज्जली बनानेके लिए या रससिन्दूर आदि बनाने के लिए गन्धक भी विशुद्ध मिलाना चाहिए। अशुद्ध गन्धकके उपयोगका आचार्योंने निषेध किया है। औषध कार्यमें जितनी पवित्रता रखी जायगी और द्रव्योंकी शुद्धिपर लक्ष्य दिया जायगा, उतनी ही औषधि विशेष कार्यकर बनेगी।

भूतकालमें हिंगुल खनिज आता था, वह प्रयोजित होता था। वर्तमानमें हिंगुल कृत्रिम है। अशुद्ध पारद के साथ गन्धकाम्ल (Sulphuric Acid) मिलाकर बना लिया जाता है। उसमें जो अच्छी जाति है उसमें पारदका परिमाण अधिक होता है। वही शुद्ध करके हिंगुलके स्थानपर लिया जाता है।

नीलथोथा भी कृत्रिम आता है। खनिज वर्तमान में नहीं मिलता। कृत्रिमका ही उपयोग हो रहा है। कासीस दो प्रकार की आती है। खनिज और कृत्रिम इनमेंसे कृत्रिममें लोह द्रव्य अधिक होता है वह खनिज की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है।

खर्पर, वैक्रान्त आदिका योग्य परिचय नहीं मिलता। उनके स्थानपर जो द्रव्य वर्तमानमें मिलते है, वे ही लिये जाते हैं। शिलाजतु, कस्तूरी संतोषप्रद नहीं मिलते। कई वनौषधियां अविदित हो गई हैं। उनके स्थानमें प्रतिनिधि लिए जाते है या कुछ अंशमें समान गुण वाली जो आचार्योंने दर्शायी, उनको ही प्रयोगोंमें मिलाना पड़ता है। इस तरह काल प्रभाव से कुछ भेद हो जाता है। इस कारणसे भी परिणाममें थोड़ा अन्तर आजाय, तो संभवित है।

प्राचीन आयुर्वेदमें धातुओंकी रज बनाकर प्रयोगों में मिलाते थे। यह रज बनानेकी विधि औषधियोंके रसमें रखकर की जाती होगी। रसशास्त्रके समान भस्म बनानेका रिवाज नहीं होगा। रसशास्त्रके प्रयोगों का अन्तर्भाव होनेपर प्राचीनशास्त्रके प्रयोगोंमें भी वर्तमानमें भस्म मिला लेते है।

रसशास्त्रके रोगनाशक प्रयोगोंमें धातु उपधातुओं की भस्म तथा रत्न-उपरत्न आदिकी पिष्टी मिलाई जाती हैं। सत्वर गुणकी प्राप्ति करानेके लिए अभ्रक

भस्मके स्थानपर अभ्रक सत्व भस्म मिलाई जाती है।

इसी तरह सुवर्णमाक्षिक, मल्ल, ताल, शिला आदिके सत्व भी मिलाये जाते हैं। वनौषधियोंकी भावनाएं देकर रस, गुण, वीर्य और प्रभाव (विद्युत प्रधान चेतनाशक्ति अथवा प्राभाविक शक्ति) आदिका आकर्षण कराया जाता है। कई योगोंमें प्राणिज द्रव्यों की चेतना शक्तिको आकर्षण करायी जाती है। अग्नि प्रबोधक प्रयोगोके साथ साथ क्षार, लवण आदि मिलाये जाते हैं और अम्ल फलोंके रसकी भावनाएं दी जाती हैं। औषध प्रयोग अधिकाधिक वीर्यवान किस तरह बन सके, उस ओर लक्ष्य दिया जाता है।

जिन धातु-उपधातुओंमें अन्य धातु-उपधातुका मिश्रण हो, उनकी भस्म बनायी जायगी, तो उसके सेवनसे हानि पहुँचती है। ऐसी सदोषओसे क्या क्या हानि पहुँचती है, वे प्रत्येक भस्मसे वर्णन साथ आचार्यों दर्शाया है। इन सबको शास्त्रपरसे समझ लेना चाहिए। जिससे क्वचित् किसीको भूल प्रमाद वश किसी व्यक्ति विशेषको सदोष भस्म विकार हो गया हो तो यथा भस्म चिकित्सक निदान कर सकेंगे। एवं उपचार कर सकेंगे।

रस, धातु, उपधातु, रत्न, विष, सामान्य खनिज द्रव्य, और तीक्ष्ण औषधि आदिका शोधन, भिन्न भिन्न उद्देश्यसे कराया जाता है। सामान्यतः मल विरेचनऔर गुणाधानार्थ माना जाता है। फिर भी भिन्नता होती है। उपरत्नमे अचिन्त्य शक्ति मानी गई है। उनका शोधन मृदुता लाने और अन्य काष्ठौषधियों के गुण धर्मको आकर्षित करानेके निमित्त होता है।

विष, उपविषका शोधन मारक विष और तीक्ष्णता का ह्रास कराकर मानव प्रकृतिके अनुकूल बनानेके लिए किया जाता है। खनिज पत्थर और अस्थि आदि शोधन कीटाणु और विष समिलित हो तो उनका नाश कराने तथा आशु फल प्रद बनानेके लिए होना है। रोग भेद, देशभेद और द्रव्योंके जातिभेदसे कभी कभी पृथक् संस्कार भी कराते हैं।

इन सबके शोधनकी अपेक्षा पारदका शोधन विशेष महत्त्वका है। थोड़ी-सी भूल होनेपर पारद उड़ जाता है, क्वचित् नयी अशुद्धि संमिश्रित हो जाती है। कभी अपूर्ण या अनुचित जारण आदि क्रियाका फल ठीक समयपर नहीं मिल सकता।

यदि धातुओंकी भस्म, रसका शोधन आदि क्रिया नव्य मतके अनुसार ही की जायगी, तो शास्त्र कथित लाभ नहीं मिल सकेगा। अतः उन सबको रसशास्त्र और आयुर्वेदमें स्थान नहीं दिया जायगा। उदाहरणार्थ वर्तमानमें नूतन चिकित्सक शत-प्रतिशत विशुद्ध धातु-सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, तीक्ष्ण, लोह आदिके शोधनकी आवश्यकता नहीं मानते। एवं लोह धातुकी भस्म बनानेके लिए तारको प्राणवायु (Oyigen) से जलाकर तत्काल भस्म बना लेते हैं। उसमें किसी भी प्रकारके वनौषधज या जीवोंके अङ्ग-उपाङ्ग या रस आदि द्रव्योंका प्राभाविक शक्ति अथवा वीर्यका आकर्षण नहीं कराया गया है। अतः वह गुणहीन मानी जाती है।

रस शास्त्रकारों ने निर्माणके प्रारम्भके नियम कहा है कि:—

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना।
मूलीभिर्मध्यमं प्राहु: कनिष्ठं गन्धकादिभिः॥
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम्॥

जिन धातुओंकी भस्म कज्जली, हिंगुल (और वनौषधियोंके रस) मिलाकर बनायी हों, वे उत्तम। मात्र वनौषधियोंके रस-क्वाथ आदिसे बनायी हो, वे मध्यम। गन्धक, क्षार लवण आदिके योगसे निर्माण करायी हों, वे कनिष्ठ मानी जाती हैं। तथा विरोधी धातुओंके द्वारा जिनका मारण हुआ है उनकी भस्म मानव देहके लिए दुर्गुण प्रद (व्याधिकारक) मानी जाती है। ऐसे प्रयोग धातुवादमें अति उपयोगी हैं। फिर भी रसायन गुणके निमित्त देहवादमें नहीं होता। जैसे सुवर्ण भस्म नाग मिश्रणसे या सिंदूर मिलाकर बनायी हो, या वङ्ग मिलाकर रौप्य भस्म बनायी हो,

फिर उनका भाग पारदको दिया जायगा, तो वह पारद सेवन योग्य नहीं माना जायगा (धातुवादोपयोगी माना जायगा) धातु, रत्न, उपरत्न, अन्य खनिज और प्राणिज सब कठोर द्रव्योंको मारण करके कोमल बनाये जाते हैं। बार बार विविध गुणप्रद औषधियोंके रस आदिकी भावना देकर मर्दन करा कर अग्नि दी जाती है। जिस तरह मानव देहके लिए अनुकूल और गुणवर्द्धक बन सके। इसलिए प्राचीन आचार्योंने अगणित व्यक्तिओंपर प्रयोग करके परिणामके सम्बन्धमें लक्ष्य देकर गुण धर्म निश्चित किये हैं। सबके भीतर कितने प्रभावको धारण करनेकी शक्ति है। सब धातु, उपधातु आदिके गुण, धर्म क्या क्या हैं? कौन कनिष्ठ, कौन मध्यम और कौन श्रेष्ठ और कौन सर्वोत्तम है, है, ये सब निर्णित किये हैं। वर्तमानके चिकित्सक गणके लिए मार्ग निष्कण्टक, सरल और निर्विघ्न गमन करने योग्य बना दिया है। फिर भी विवेकनेत्र बिलकुल निमिलित कर आगे नहीं बढना चाहिए। बार बार दोष, धातु विकृति, देश, काल, ऋतु, प्रकृति, स्वभाव, स्थिति, वंशगत विकार, मानसिक बल, नीति अनीतिमय जीवन, व्यसन, पथ्यापथ्यके पालनकी शक्ति संयम, इन्द्रिय दमन, आयु, देहकी कोमलता कठोरता, क्या क्या औषध प्रयोग पहले हुए हैं। इन सब परिस्थिति, कारण आदिका विचार करके फिर चिकित्सा करनी चाहिए।

रस प्रयोग, भस्मका प्रयोग या उपधातुके सत्वका निकालना और रोगियोंको देना, इन सबको रोगहर गुण धर्म वनौषधि आदिकी भावना देनी पडती है। वनौषधियो और प्राणिज चेतना शक्तिका संमिश्रण कराया जाता है। कई बार इसके साथ प्रयोग बनाने के समय वनौषधियां मिलायी जाती है। जिस तरह औषधि आशु फलप्रद और दिव्य गुण दर्शक बन सके वैसा प्रयत्न आचार्योंने किया है। एवं चिकित्सा कालमें उसे लक्ष्य रखकर चिकित्साकी जाती है।

धातु, उपधातुकी भस्मोंके प्रयोग कई रोगोपर आचार्योंने किये हैं, उनके साथ रसेन्द्र मिलाया जाय, तो मनुष्यों अश्व, हाथी, इनके रोगी हरण करनेमें वह रसेन्द्र प्रधान उपयोग विशेष सबल बन जाता है, ऐसा आचार्योंने निम्न वचनसे व्यक्त किया है।

यस्य रोगस्य यो योग स्तेनैव सह दापयेत्।
रसेन्द्रो हरते रोगान्नरकुञ्जर वाजिनाम् ॥

अथवा किसी भी रोगको दूर करनेके लिए रस प्रयोग करना हो, तो उस रोगके नाशक सहायक हो वैसी भस्म, वनौषधि और प्राणिज द्रव्योंकी सहायता ले ली जाय, तो वह अधिक हितावह माना जाता है।

क्वचित् ऐसे विष-उपविष मिलाये जाते हैं, जो रोगको नाश करनेमें सफल कार्य कर रहे हैं। किन्तु उसमें कुछ दोष भी अवस्थित हैं। ऐसी अवस्थामें दोष निवारणार्थ अन्य औषध द्रव्य उसके साथ मिला लिया जाता है। जैसे वत्सनाभ प्रदाह नाशक श्रेष्ठ द्रव्य है, इसी हेतुसे आशुकारी ज्वरोंके दमन कराने और शोधन करानेके लिए उसका आश्रय लिया जाता है। किन्तु वत्सनाभमें स्वाभाविक हृदयके बलको शिथिल करनेका दोष भी रहा है। इस हेतुसे आचार्य प्रयोग करनेसे पहले वत्सनाभका शोधन करा लेते हैं। जिससे अधिकांशमें दोष दूर हो जाता है। फिर भी निर्मूल नहीं होता। कुछ अंशमें रह जाता है अतः वत्सनाभ का प्रयोग अति मर्यादित मात्रामें करनेकी आज्ञा आचार्योंने की है। एवं साथ-साथ हृदयबलको बढाने वाली औषधि पिप्पली या अन्य मिलानेकी सूचना भी की जाती है।

रस और धातु उपधातु आदिकी भस्म बनानेके लिए अग्नि कितनी देनी चाहिए।

इस सम्बन्धमें आचार्योंने कहा है कि:—

स्वर्णरूप्यवधे ज्ञेयं पुट कुक्कुटकादिकम्।
ताम्रे काष्ठादिजो वह्नि र्लोहे गज पुटानि च ॥

स्वर्ण, रौप्य (नाग और वङ्ग), ये कोमल धातु हैं। उनको कुक्कुट पुट या उससे भी कम अग्नि देनी

चाहिए। ताम्रकी भस्म बनानी हो, तो उसे चूल्हेपर चढाकर काष्ठादिकी अग्नि (४ प्रहर तक) देनी चाहिए तथा लोह (अभ्रक सत्व धान्याभ्रक आदि) की भस्म बनानेके लिये गजपुट दिये जाते हैं। यह सब सामान्य नियम है। सबके लिये पृथक् पृथक् सूक्ष्म नियम भी आचार्योंने दर्शाये हैं।

कई आचार्य नाग, वङ्गको चूल्हेपर चढा विशेष औषध मिलाकर या औषधिके डण्डेसे चलाकर कड़ाई में अपक्व भस्म बना लेते हैं। फिर विशेष औषधियोंकी भावना देकर गजपुट या कपोत या कुक्कुट पुट देते हैं। फिर सहन करनेकी शक्ति जैसी जैसी बढती जाती है, वैसे वैसे अग्नि अधिक देते हैं।

रस और धातु-उपधातु आदि की भस्मका पाक हो गया है या नहीं ? कौन द्रव्य कितने पुटो तक या कितने दिनोंके मर्दन तक प्राप्त चेतना शक्ति प्रधान विद्युतको धारण कर सकेंगे। न्यूनाधिक पुट देनेपर पाकपर क्या असर होता ? सम्यक् पुटोंसे औषध द्रव्योंपर क्या प्रभाव पड़ता है ? इन सबके गुण धर्म, स्थिति आदिका अध्ययन, मनन प्राचीन भूतकालमें ही सुनिर्णीत हो गया है। पुटादिके सम्बन्धमें रसशास्त्रविद्वानोंने कहा है।

नेष्टो न्यूनाधिक. पाक' सुपाक हितमौषधम्।
पुटनान् स्याल्लघुत्व च शीघ्र व्याप्तिश्च दीपनम् ॥
जारितादपि सूतेन्द्राल्लोहानामधिको गुणः ॥

चेतना शक्ति और गुण धर्मका धारण हो सके, उसकी अपेक्षा न्यून पुट देनेपर गुणकारक होता है। अधिक पुट देनेपर सगृहीत शक्तिका क्षय होता है। अत. न्यूनाधिक पुट देना अनुचित माना जायगा। जिन भस्मोंका पाक योग्य हुआ है, वे ही क्षेत्रोंमें समझ पूर्वक प्रयोग करनेपर सफलतापूर्वक प्रभाव दर्शा सकती हैं। एवं हिततम कार्य करती है।

जिस पारदको संशोधितकर योग्य मात्रामें अभ्रक सत्व आदिका ग्रास देकर चारण, गर्भद्रुति और जारण कराया हो, वैसे रसेन्द्रके योगसे धातुओंकी भस्म बनायी हो, प्रयोगोंके समय रसेन्द्र मिलाया हो, तो अधिक लाभ मिलता है।

विशुद्ध पारदके साथ गन्धक, अभ्रक सत्त्व, सुवर्ण माक्षिक सत्त्व, सुवर्ण भस्म, रौप्य-भस्म, वैक्रान्त सत्त्व, आदि जारण कराये जाते हैं। इनके योगसे पारद पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित बनता है और इनको जितना अधिक जारण कराया जाता है, उतनी ही दिव्यता रसेन्द्रमें आती है।

अग्नि कितनी दी जाय, ये सब यथार्थ सद्गुरु देव शिष्योंको प्रयोगसे प्रत्यक्ष दिखला देते थे। वर्तमानमें भी सद्गुरुकी सन्निधिमें रहकर पारद और धातु उपधातुओंकी क्रियाका अनुभव करना चाहिए। अन्यथा भ्रम होनेकी सभावना है। शास्त्रपाठ जान लेनेपर या कण्ठ कर लेनेपर ही विद्याका अनुभव नहीं हो जाता है। इस बातको साधकोंने अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। आयुर्वेद चिकित्साशास्त्रके निष्णात नव शिक्षा दीक्षासे विभूषितोंके मनमें यह अभिमान आ जाय, कि हमें अब गुरुशरणकी क्या आवश्यकता है तो वे भूल कर रहे हैं।

जिस तरह अस्त्र चिकित्सा मात्र शब्दोंसे अनुभवमें नहीं आती। दीर्घ कालतक अध्यापकोंके समक्ष क्रिया करके हस्तगतकी जाती है, उसी तरह इस रसशास्त्र की क्रिया भी हाथोंसे परिश्रम करके प्राप्त की जाती है।

कई नव्य विद्वान् रस, भस्म, सत्त्व आदिके गुण-धर्मका अनुभव यन्त्रों द्वारा करना चाहते हैं। उनको सत्यकी झांकी नहीं हुई है। मिथ्या प्रयोग करके जनताको या छात्रोंको भ्रममें डालते हैं।

प्राचीन आचार्योंने पारद और धातुओंकी भस्मों को माध्यम बनाकर चेतना शक्ति (चैतन्यका आकर्षण करानेका मार्ग दर्शाया है। यह चेतना शक्ति मनवाणीसे अगोचर है। इन्द्रियातीत है। कदापि ज्ञानेन्द्रियोंसे या मनसे अनुभवमें नहीं आ सकती।

कार्यपरसे ही वह अनुभवमें आती है। इस सम्बन्धमें श्रुति भगवतीने कहा है कि—

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥केनश्रुति॥

मन जिसका मनन नहीं कर सकता, जो मनको करने की शक्ति प्रदान करता है, उसे तू ब्रह्म जान। जन समाज जिसकी उपासना करते है वह ब्रह्म नहीं है (प्राकृतिक स्थूल सूक्ष्म पदार्थ है)

मुण्डक श्रुतिने कहा कि:—

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध सत्वस्ततस्तु त पश्यते निष्कलं ध्यायमना।

ब्रह्म (चैतन्य) में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इनमेंसे एक भी गुण धर्म नहीं है। जिससे नेत्र उसे देख नहीं सकता है। वाणी शब्दो द्वारा परिचय नहीं करा सकती है। इसी तरह अन्य ज्ञानेन्द्रियोके देव भी नहीं जाने जा सकते कर्मेन्द्रियोंके या शरीरके तपसे या यन्त्र आदि द्वारा क्रिया करके भी वह विदित नहीं हो सकता है। गुण धर्म और कला रहित ब्रह्म चैतन्यका अनुभव विशुद्ध मन-हृदय वाले साधक ध्यानावस्थाका अभ्यास बढा वृत्तिका विलय करके बुद्धि द्वारा (धर्म मेघ समाधि अवस्थामें कर सकता है।

तैत्तिरीय श्रुतिने भी कहा है कि—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥

जिस चैतन्यको वाणी आदि इन्द्रियां प्राप्त न होकर मन सह वापस लौटी हैं। अर्थात् वह मनो गम्य और इन्द्रियातीत है।

वर्तमानमें यान्त्रिक सामग्री और अणु दर्शक यन्त्र की सहायतासे जो द्रव्य दृष्टि गोचर होता है अथवा अनुभवमें आता है वह प्रकृतिका कार्य है। उसे भ्रम वश अन्तिम तत्व मानकर न्याय (Judgement) नहीं देना चाहिए।

रस शास्त्रमें पारदकी भस्म बनाने की विधि दी है, यह भस्म विशेषत: रसायन सेवन रूपसे व्यवहृत होती थी। फिर भी कभी कभी रोग विनाशक प्रयोगोमें भी मिलाते थे। वह निम्न वचनसे आचार्योंने दर्शाया है।

मारितं देह सिद्ध्यर्थं मूर्च्छितं व्याधिनाशने।
रस भस्म क्वचिद्योगे देहार्थे मूर्च्छितं क्वचित् ॥

रससिन्दूरको कई स्थानोमें पारद भस्मके प्रतिनिधि रूपमें मिला लेते है यदि पारद भस्म बनाकर मिलानी है, तो कदापि बिना जारण किये और सबीज बिना बनाये भस्म न करें। अन्यथा वह निर्दोष नहीं बनती। पारद उड जाता है या अधमृत रह जाता है। जो घोर विष के समान हानि पहुँचाता है। इसलिए शिवागम का वचन आचार्योंने दर्शाया है कि —

अजीर्णमथ चा बीजं सूतक यस्तु घातयेत्।
ब्रह्महा स दुराचारी मम द्रोही महेश्वरि ॥

हे पार्वती देवी! अपूर्ण जारण होनेसे अजीर्ण युक्त पारद और जिस पारदको पक्षच्छिन्न और बुभुक्षित न बनाया हो और जिसमें सुवर्णादि बीजका रोपण न किया हो, ऐसे पारदकी जो भस्म बनानेका प्रयत्न करता है, वह वैद्य ब्रह्मघाती, दुराचारी और भगवान शंकरका भी द्रोह करने वाला है।

प्रयोगीके भीतर जो विशेष सम्हालने योग्य नियम है, वे संक्षेपमें यहां दर्शाये है। उन नियमोंका सुबोध साधक पालन करते हुए प्रयोग निर्माण करें और समझ पूर्वक रोगियोंको देकर आशीर्वाद प्राप्त करें यह मैं हृदयसे चाहता हूँ। इतिशम ॥

रस विषयक कुछ प्रश्न

लेखक—वैद्य अम्बालाल जोशी जोधपुर

गत मार्च मासकी २७, २८ तथा २९ तारीखको एक अनुकरणीय घटना समस्त भारतके आयुर्वेद जगत् में घटी। इस घटनाको अनुकरणीय इस लिये कहा जा रहा है कि ऐसी घटनाका आगे भी युग स्वागत करता रहेगा। यह घटना थी आयुर्वेद रस शास्त्रके मूल द्रव्य-पारद गंधकके विषयमें विचार विमर्श करने के लिये भारतके कोने कोनेसे रस वैद्योंका एक स्थानमें एकत्रित होना। विचारोंका निष्कपट आदान प्रदान ही इस आयोजनकी सफलताका दर्शक हो सकता था और वह भी एक ऐसे द्रव्य पर करना जिसके विषय में युगों युगो से 'गुह्य तमम् विद्या' कह कर गुप्त रखने का रिवाज सा चला आ रहा था।

यह सब स्वामी कृष्णानन्दजी महाराजके प्रभाव का ही चमत्कार था, जिनने एक छोटेसे गाव कालेडा-कृष्ण गोपालमें आयुर्वेदकी सहस्र धाराका अजस्र प्रवहण कर दिया। उन्होंने आदर्श रूपसे यह दिखा दिया कि एक व्यक्ति क्या कर सकता है एक तथा एक मिल कर ग्यारह बन कर आगे कितने ही ग्यारह एकत्रित कर सकते हैं। राज्य सुखा पेक्षी न रहते हुए भी एक वैद्य कितना कार्य कर सकता है। कर्मयोगियो को धन की कभी नहीं सताती आदि।

भारतके विभिन्न भागोसे एकत्रित २०० रस विद्या के प्रेमी तथा वैद्य भी प्रशंसाके पात्र हैं जिन्होने रेल मोटर आदिके यात्रा कष्टोको सहन करते हुए भी निवास सुविधाओ तथा अन्य स्वागत सत्कारोंका विशेष ध्यान न रखते हुए भी नित्य साधनामें लगे रहनेका दृढ़ निश्चय कर लिया था। वास्तवमें यदि रस वैद्योंमें यह धुन पक्की जमी रही तो एक न एक दिन वे परम लक्ष को प्राप्त कर ही सकेंगे।

पारदका विषय शास्त्रोमें अत्यन्त चमत्कारी रूप मे तथा अलंकारिक तथा तांत्रिक भाषामें लिखा गया है। इस भाषाका बोध सर्व साधारणके लिये सुगम नहीं है। आजके युगमें इस प्रकारके वर्णन वैज्ञानिक नहीं कहे जा सकते। अतः आजके युगमें इनका वैज्ञानिक परिशीलन आवश्यक है। पारदका वर्णन रस शास्त्रमें शिव वीर्य मान कर किया गया है साथ ही गंधकको गौरी बीज माना गया है। यदि आर्ष वाक्यों को प्रमाणिक मान कर इन्हें शिव वीर्य तथा गौरी बीज मान लिया जाय तो आधुनिक विज्ञानकी परिभाषामें शिव तथा पार्वतीकी व्याख्या क्या होगी? यदि शिव पार्वतीको प्रकृति पुरुष मान लिया जाय तो क्या सर्वत्र आयुर्वेद शास्त्रोंमें जहां शिव पार्वतीका उल्लेख आया है यही अर्थ लिया जाय या अन्य कुछ?

शिवका कल्याण कारी रूप भारतीय धार्मिक ग्रथोमें मिलता है। यदि इसीके अनुसार शिवको कल्याणकारी तत्व मान लिया जाय तो शिव वीर्यको (पारद) कल्याण मूलक द्रव्य माननेमें हमें कोई अड़चन नहीं होगी। औषधि रूपमें पारदका जो उपयोग भारतीय रस शास्त्रमें हुआ है वह कल्याण मूलक नहीं तो और क्या है। इसी प्रकार गौरी जो शिवकी अर्धांगिनी मानी गई है सहायक कल्याणकारी शक्तिके रूपमें पूजी जाती है। ठीक तदनुसार गौरी बीज (गधक, जिसका नाम करण एक विशेष प्रकारकी तद्गत गध के कारण हुआ है) एक सहायक कल्याण मूलक

औपधिके रूपमें पारदके साथ सदैवसे प्रयुक्त होता रहा है। संभवत' इसी तर्क पर आधारित इस कल्पनाके कारण ही पारदको शिव वीर्य तथा गंधकको गौरी बीजके नामसे सम्बोधित किया गया है। फिर दोनो के रगोंने इस नाम करणकी और पुष्टि की है। पारदका श्वेत वर्ण और घनत्व वीर्य तथा गधकका उष्ण श्रोतो मे निकलते हुए लाचा वर्णन रजके रूपमें उल्लिखित किया गया है।

आधुनिक विज्ञानके आधार पर पारदके श्रोत भूगर्भमें प्रवाहित होते रहते है तथा गंधक भी उसी प्रकार भूगर्भमें उष्ण श्रोतके रूपमें द्रवित होता रहता है। और मानव कृत प्रयत्नों द्वारा या प्रकृति प्रकोप द्वारा बाहर आता है। रस रत्न समुच्चयके पूर्व खण्ड अध्याय १ पृष्ठ ६ में पारदके उत्पत्ति विषयक जो श्लोक है वे पारद सम्बन्धी प्राचीन ज्ञानकी पुष्टि करेंगे ऐसी आशासे हम उन्हें यहां उद्धरित कर रहे हैं—

शैलेस्मिनव्हिवयो. प्रीत्या परस्पर जिगीपया।
स प्रवृत्ते च संभोगे त्रिलोकी-चोभ कारिणी॥
विनिवारयितु वह्नि सभोग प्रेषित सुरै.।
कपोतरूपिणं प्राप्त हिमवत्कन्दरेऽनलम्॥
अपचि भाव संक्षुब्ध स्मरलीला विलोकिनम्।
त दृष्ट्वा लज्जित. शम्भुर्विरतः सुरतात्तदा॥
प्रच्युतश्चरमोधातुर्गृहीत. शूलपाणिना।
प्रक्षिप्तो वदने वह्नेर्गगायामपि सोऽपतत्॥
वह्नि क्षिप्तस्तथा सोपि परिदह्यमानया।
संजाता स्तन्मलाधानाद्धातव सिद्धिदायका॥
यावदग्नि मुखाद्रेतो न्यपतद् भुवि सर्वत.।
शतयोजन निम्नास्ते जाता कूपा स्तु पच च॥
(रस रत्न समुच्चय पूर्वखण्ड अ० १ पृष्ठ ६)

उपरोक्त पद्यांशका शब्दार्थ उपस्थित न कर हम वैज्ञानिक भावार्थ पाठकोकी सेवामें उल्लिखित करना आवश्यक समझते हैं। हिमाचल ❀ में जब जड़ चेतन शक्तिके अन्दर सघर्षण होता है तब पृथ्वीके अन्तस्तल में से आग्नेय पदार्थ ज्वाला मुखीके रूपमें दृश्य होने लगते हैं। उस समय त्रिलोकी में क्षोभ उत्पन्न करने वाला भूकम्प होता है।

❀ स्फोट सदैव ससारके हिम प्रदेशोमें ही होते हैं।

भूकम्पके द्वारा ज्वाला मुखीके फूट पड़नेसे पृथ्वी शतधा विदीर्ण हो जाती है। उसमेंसे प्रथम धूसर वर्ण + की गैस निकलती है बादमें अग्निकी ज्वाला निकलने लगती है। %

जब ज्वाला मुखीका स्फोट होता है, कम्प बन्द हो जाता है ×। फिर धीरे धीरे ज्वाला मुखीके आग्नेय पाषाण क्रमश' शीतल होने लगते हैं तब उसके अन्तर तलके उड़न शील पदार्थ उष्ण जलके साथ मिलकर वाष्प रूपमें शीतल होकर धरा पर जम जाते हैं।

उपरोक्त भाव कविराज श्री प्रतापसिंह जी रसाय-नाचार्य द्वारा प्रस्तुत किये गये है जो उपयुक्त भी जॅचते हैं, इसीलिये हमने साभार यहां उद्धरित किये हैं।

आयुर्वेदीय आचार्योंके मतानुसार पारद दो प्रकार का माना गया है ★ प्रथम श्वेत तथा द्वितीय रक्त। श्वेत पारदकी उत्पत्ति ऊपर निर्दिष्टकी गई है परन्तु पारद भी कृष्ण रूपसे (हिंगल) भूगर्भसे ही उत्पन्न होते है। आजकल मिलने वाला हंसपाद हिंगलू या रूमी शिगरफ न तो रोम देशसे ही आता है न खनिज ही है-वह है कृत्रिम। पारदके कणोको एकत्रित कर गधकके योगसे रासायनिक प्रक्रियाके द्वारा हिंगलूका निर्माण किया जाता है। यह उत्पादन खनिजकी अपेक्षा अधिक शुद्ध होता है।

पारदके १८ सस्कार यदि हम केवल शुद्धिके लिये

+ कपोट रूपिणी—धूम्रवर्ण।

% अपचि भाव सक्षुब्धं।

× तं दृष्ट्वा लज्जित' शम्भुर्विरत. सुरतात्तदा।

★ मतान्तरसे ४ प्रकार हैं।

ही किया करते हों जैसा कि अनेक आयुर्वेदीय विद्वानों का मत है तो हमें चाहिये कि सर्क कम्पनीका नाइट्रिक ऐसिड पास (Pass) किया हुआ विशेष शुद्ध पारद (Extra Pure Mercury) जो कि एक दम विशुद्ध कचुको तथा मल दोष रहित होता है प्रयोगमें लाया करें। यदि सस्कार केवल शुद्धिके लिये ही करने हो तो परम विशुद्ध पारद मिल जानेके बाद इनकी आवश्यकता ही कहां रहती है।

पारदमें मलदोष तथा कंचुकी दोष यह दो प्रकार के प्रधान दोष माने गये हैं। मल दोष (Amalgam) में नाग वङ्ग, अन्य अशुद्धियां, आग्नेय दोष, द्रव दोष, तथा पाषाण दोष (पार्थिव दोष) आदि माने गये हैं। जो नैसर्गिक हैं तथा जिन्हें दूर करनेके साधन वैद्योंसे छुपे नहीं है-आधुनिक साधन भी उपयुक्त सिद्ध हो रहे हैं।

दूसरा दोष है कंचुकी दोष इसे (Alloy) मिश्रण कहा जा सकता है पारदके घनी भूत तथा अन्य धातुओं से अनुपाततः भारी अणुओंमें उन धातुओंके अणुओं का आन्तरिक प्रवेश नहीं हो पाता अत ये (Alloy) मिश्रण कन्चुकीके रूपमें पारदके घनीभूत अणुओंको आवृत किये हुए रहते है। इनको हटानेकी व्यवस्था भी उपयुक्त है-। परन्तु ये सब व्यवस्थायें उपरोक्त मत के अनुसार खनिज पारदके लिये है-शुद्ध पारदके लिये नहीं।

हिंगुलोत्थ पारद× भी दो बार उत्थापित हो जाया करता है। इस प्रकारके विशुद्ध पारदके हस्तगत हो जानेके बाद भी शुद्धिका क्या अर्थ है ?

इसके उत्तरमें हम दो मत उपस्थित कर रहे है। प्रथम मत श्री श्याम सुन्दराचार्यजीका है वह कहता है-'शुद्धस्य शोधनम् गुण वर्धनम्'' अर्थात शुद्धका शोधन गुणोंकी वृद्धि करता है। इसकी पुष्टि करनेके लिये हमें दोनो प्रकारके पारदके योगोको बनाकर प्रयोगमें लेना चाहिये तथा इस घोषणाकी पुष्टि करनी चाहिये।

दूसरा मत चरकका सर्वमान्य मत है कि 'संस्कारो हि गुणाधान मुच्यते'। इस सिद्धान्तके अनुसार गुणाधान ही संस्कार है यदि द्रव्यमें सस्कारोंके द्वारा गुण वृद्धि मान ली जाय तो निश्चित औषधियोंके गुणाधान से अधिक औषधियोके गुणाधान भी किये जा सकते हैं। ये गुणाधान महर्षि चरकके मतानुसार—

ते गुणाश्चतोयाऽग्नि सन्निकर्ष शौच मन्थन देश काल वशन भावनादिभि काल प्रकर्ष भाजनादिभिश्चाधीयन्ते॥ चरक विमान अ० १० ॥१८॥

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो सस्कारित पारद अपनी शक्ति तथा गुणोका प्रदर्शन कर दे सकता है। जिन जिन वनौषधियोंके सस्कार पारदपर हो चुके हैं उन सभी औषधियोके गुणोका उसमें समावेश हो जाय तो सस्कारोकी सफलता तथा सार्थकता मानी जा सकती है। यदि वे सफल घोषित हो जाय तो अन्य द्रव्योके गुणाधान भी पारदमें करनेका सफल प्रयास वैद्योको करना चाहिये। अन्यथा सदैवके लिये इनको व्यर्थ घोषित कर देना चाहिये जिससे आने वाली पीढी इस कार्यके लिये राहस्रो मुद्राये व्यर्थ व्यय न करे। आधुनिक विज्ञान तो पारदके कणोका इतना घनीकरण देख चुका है कि इसके बीच किसी भी अन्य औषधिके कणोका अवस्थित रहना मानता ही नहीं। फिर आयुर्वेदीय सिद्धान्तोके अनुसार यदि हम कुछ सिद्ध कर सके तो उपयुक्त होगा।

आजके युगमें जबकि प्राकृतिक पारद (Native Mercury) का मिलना ही कठिन है इधर गधक भी कृत्रिम मिलता है। तथा दोनोके योगसे रासायनिक क्रिया द्वारा एक यौगिककी उत्पत्ति होती है और वह हिंगल या शिंग्रफके नामसे प्रसिद्ध है, भारतमें यह कई

× गधकके योगसे पारदके सभी दोष दूर हो जाया करते हैं।

स्थानोपर कृत्रिम बनाया जा रहा है, तब इनकी विशेष शुद्धि अधिक महत्त्व रखती है। आज वैद्य आराम पसन्द बनता चलाजा रहा है तथा अष्ट संस्कारोकी महनत उससे होती नहीं एक लहसुनसे ही पारदकी शुद्धि करना चाहता है। इधर हिंगुलोत्थ पारद स्वयं संस्कार प्रधान पारद माना जा रहा है क्योंकि वह दो बार उत्थापित हो जाता है, उस समय ऐसी वैज्ञानिक मन्त्रणाओके द्वारा यह सिद्ध करना परमावश्यक है कि संस्कृत पारद अधिक प्रबल तथा शक्ति शाली है।

इसी प्रकार गंधककी उत्पत्ति भी एक भूगर्भ उत्पत्ति है। सर्व प्रथम यह उत्पत्ति एक द्रवके रूपमें तथा अनन्तरमें यह खनिज (ठोस) के रूपमे होती है। यह भी कृत्रिम बनाया जा रहा है ऐसी स्थितिमें डंडा गंधक तथा आंवलासार गधकमे क्या अन्तर है? दोनोके घटक भेद क्या है। अनेक वैद्य अपनी इच्छानुसार गंधकका प्रयोग कर रहे हैं। इसका उत्तर प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रथोमें मिलना कठिन है। अतः अब नये तौर पर हमें यह निश्चय करना होगा कि सामन्यतः गंधक शुद्धि केवल दूधमें या घीमें या पानीमें या किस प्रकार इसकी न्यूनतम शुद्धिकी जाय?

ऐलोपैथीके सल्फर सब्लीमेट तथा सल्फर प्रेसीपिटेट भी विशेष क्रिया द्वारा शुद्ध किये जाते हैं अतः ये भी हमारा ध्यान हठात अपनी ओर खींच लेते हैं? क्या आंवलासार के स्थान पर इनका प्रयोग किया जा सकता है? इन सब समस्याओंका सर्व मान्य तथा सर्व समादृत हल हमें निकालना होगा। जिससे औषधि निर्माणमें विभिन्नता न बढ़ सके।

उपरोक्त बातोंका स्पष्टीकरण आयुर्वेदज्ञोंके लिये परमावश्यक है। आज भी अनेकों वैद्य ऐसे हैं जो पारद गंधक जो रस शास्त्रके मूल द्रव्य हैं, की उत्पत्ति से अनभिज्ञ हैं। अपने आयुर्वेदीय ग्रंथोंमें जो पारद गंधक उत्पत्तिका वर्णन है उसे क्या सदैवके लिये यथावत् रहने दिया जाय और वर्तमानकी तरह विद्वानों की लम्बी लम्बी विभिन्न प्रकारकी व्याख्यायें 'मुण्डे मुण्डे मति भिन्ना' के सिद्धान्तानुसार स्वीकार की जाय? या आयुर्वेदीय ग्रथोकी इन पौराणिक आख्यायिकाओंको इन वैज्ञानिक ग्रन्थोंसे सदैवके लिये विदा कर दी जाय? जिससे आने वाले विद्यार्थियोंके लिये भविष्यका मार्ग स्पष्ट तथा निर्दिष्ट रहे। या पीढ़ी पीढ़ी इसी प्रकार भ्रममें पड़े रहना ही उचित है। विज्ञानमें मत भिन्नता तभी तक रह सकती है जब तक हम एक सत्य तक नहीं पहुंच जावें। सत्यको प्राप्त करनेके बाद वह मत भिन्नता समाप्त हो जाती है। अतः सत्यको प्राप्त करनेका प्रयत्न वैद्योका एक पवित्र कर्तव्य है।

एक वार्ता —

शरीर-रक्षण में औषध और-चेतना का स्थान

लेखिका—श्री माताजी श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी

लोग प्रायः ही मुझसे पूछते हैं कि इस आदर्श सिद्धान्तको मानते हुए कि अपने शरीरके साथ व्यवहार करते समय हमें यह ज्ञान होना चाहिये कि यह केवल विश्वकी सर्वोच्च सद्वस्तु तथा हमारी सत्ताके सत्यका एक परिणाम और यंत्रमात्र है और फिर यह सब सिखानेके बाद और यह बतानेके बाद कि हमें इसी सत्यको प्राप्त करना है, आश्रमके सगठनमें ये डाक्टर औषधालय आदि क्यो हैं ? क्यों यहां और जगहके प्रचलित आधुनिक तरीकोंसे शारीरिक शिक्षा पर इतना ध्यान दिया जा रहा है ? पानीको क्यो फिल्टर किया जाता है तथा फलोंको कीटाणु नाशक घोलोंसे क्यों धोया जाता है ?

ऊपरसे देखनेमें यह विरोध अवश्य प्रतीत होता है किन्तु यह केवल उपरितलीय है। मैं तुम्हें यह कई बार कह चुकी हूँ कि जब दो विचार या दो सिद्धांत परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं तब व्यक्तिको उन विचारों से जरा ऊपर उठकर उस बिन्दु को ढूंढ लेना चाहिए जहां यह विरोध एक व्यापक समन्वयमें समाप्त हो जाता है। यदि तुम यह बात स्मरण रखते हो कि शरीरके पोषण और उन्नतिके लिये तथा उसे सुरक्षित और स्वस्थ रखनेके लिये जो तरीका बरता जाता है वह पूर्णतया चेतना की उस अवस्थापर निर्भर करता है जिसमें तुम निवास करते हो, तो इस बातको समझना आसान हो जाता है। यह सच है कि शरीर चेतनाका एक यंत्र है और चेतना ही उसपर सीधा कार्य कर सकती है तथा उससे अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त कर सकती है।

इसलिये, यदि तुम साधारण भौतिक चेतनामें निवास करते हो, यदि तुम वस्तुओंको साधारण भौतिक चेतनाकी ही दृष्टिसे देखते हो, साधारण भौतिक चेतना से उनपर विचार करते हो तो तुम्हें अपने शरीरका कार्य करनेके लिये साधारण भौतिक साधनोंका ही प्रयोग करना पड़ेगा। ये साधारण भौतिक साधन हजारों वर्षोंके मानवी अस्तित्वमें संगृहीत हुई एक पूर्ण विद्या की उपज है। यह विद्या बड़ी जटिल है, इसकी क्रियाएं अनगिनत, जटिल एव अनिश्चित हैं और प्रायः ही परस्पर विरोधी होती हैं पर साथ ही ये सदा विकसन शील और पूर्णतया सापेक्ष भी है।

पर फिर भी परिणाम बड़े यथार्थ प्राप्त हुए है। क्योंकि मनुष्य शारीरिक शिक्षामें बड़ी गभीरता पूर्वक लगे हुए हैं, उन्होंने बहुत से अनुभव, अध्ययनकी प्रणालियां आदि इकट्ठी करली है और कई बाते उनके निरीक्षणमें आ गयी हैं। ये सब चीजें जीवनके बाह्य सगठनका अर्थात् भोजनका, जीवन सम्बन्धी क्रियाओं एव व्यायामोंका एक पर्याप्त रूपसे निश्चित आधार बन जाती है। इसका फल यह होता है कि जो लोग इनका अध्ययन करते हैं तथा इनका पूरा पूरा पालन करते हैं उन्हें अपने शरीरको स्वस्थ रखनेका ही नहीं वरन् उसके दोषोंको दूर करने तथा उसकी सामान्य अवस्था में सुधार करनेका अवसर भी मिल जाता है, इस प्रकार उन्हें कई बार आश्चर्य जनक परिणाम प्राप्त हो जाते हैं।

यहां मैं यह भी कह सकती हूँ कि यह बौद्धिक मानवी विज्ञान, जैसा कि यह आजकल है, सत्यको प्राप्त

करनेके अपने सच्चे प्रयत्नमें अधिकाधिक और बड़े आश्चर्यजनक रूपमें आध्यात्मिक दृष्टिके निकट पहुँच रहा है। और एक ऐसी अवस्थाकी कल्पना की जा सकती है जिसमें ये दोनों मिलकर एक ऐसा बोध प्राप्त कर लेंगे जो अत्यंत गंभीर और मूल सत्यके अत्यधिक निकट होगा।

अतएव, जो लोग भौतिक स्तरपर और भौतिक चेतनामें निवास करते हैं, उनके शरीरकी देख भाल या पोषणके लिये भौतिक साधनों और प्रणालियोंका ही प्रयोग किया जाना चाहिये। और क्योंकि अधिकतर मनुष्य, आश्रममें भी, एक ऐसी चेतनामें निवास करते हैं जो यदि पूर्णतया भौतिक नहीं तो प्रधान तया भौतिक अवश्य है, यह स्वाभाविक ही है कि व्यक्ति को उन सब नियमोंका पालन करना चाहिये जिन्हें भौतिक विज्ञानने हमें प्रदान किया है।

किंतु स्पष्टतया ही यह वह अंतिम उपलब्धि नहीं है जिसकी ओर हम बढ रहे हैं, न ही यह वह आदेश है जिस तक हम उठना चाहते हैं। इससे एक ऊंची अवस्था भी है जहा चेतना अपनी क्रिया प्रमुखत. या आंशिक रूपमें मानसिक होते हुए भी उच्चतर क्षेत्रो की ओर खुल गयी है, वह आध्यात्मिक जीवनके लिये अभीप्सा कर रही है तथा मानसिक प्रभावकी ओर उन्मुख हो रही है।

ज्यों ही तुम इस प्रभावके प्रति खुल जाते हो, त्यो ही तुम उस अवस्थासे जिसमें जीवन बिल्कुल भौतिक होता है आगे निकल जाते हो। भौतिक जीवनसे मेरा मतलब समस्त मानसिक और बौद्धिक जीवन तथा सब मानवी उपलब्धियोमे भी है, चाहे वे उपलब्धिया बहुत उच्चकोटिकी भी क्यों न हो, मैं उस भौतिक जीवन की बात कर रही हूँ जो मानवी क्षमताओंकी शिखर है. जो एक ऐसा पार्थिव और स्थूल जीवन है जहा मनुष्य उच्च प्रकारकी मानसिक और बौद्धिक वस्तुओंको व्यक्त कर सकता है। इसके बाद वह इस अवस्थाको भी पार करके एक ऐसे मध्यवर्ती क्षेत्रमें प्रवेश करता है जहांसे दो प्रभाव एक दूसरेसे मिल जाते है, जहां चेतना अपनी क्रियाओंमें अभी मानसिक एवं बौद्धिक होती है, पर फिर भी वह अति मानसिक शक्ति एवं सामर्थ्यसे इतनी भरपूर है कि वह उच्चतर सत्यका यंत्र बन सके।

वर्तमान समयमें पृथ्वीपर चेतनाकी यह स्थिति केवल उन्हींको प्राप्त हो सकती है जो अभिव्यक्त होती हुई अति मानसिक शक्तिको ग्रहण करनेको तैयार है। यदि यह प्राप्त हो जाय तो शरीर एक ऐसी अवस्थासे जो उस अवस्थासे बडी है जिसमें वह पहले निवास करता है लाभ उठा सकता है। वह अपनी सत्ताके मूल सत्य के साथ इस हद तक सीधा सपर्क प्राप्तकर सकता है कि वह एकदम और प्रतिक्षण एक आतरिक दृष्टिसे तथा एक सहज-स्वाभविक तरीकेसे यह जान ले कि उसे क्या कार्य करना है, और फिर अपने अंदर उसे करनेकी शक्ति पैदा करले। मैं फिर कहती हूँ कि जो लोग अतिमानसिक शक्तिको ग्रहण करने, उसे अपने अदर आत्मसात् करने तथा उसका आदेश माननेके लिये तयार हो सकते हैं तथा इसके लिये कष्ट उठा सकते हैं वे अब इस अवस्थाको प्राप्त कर सकते हैं।

स्वभावतया ही इससे भी ऊंची एक अवस्था है जिसे श्री अरविन्द चरितार्थ करने योग्य आदर्श मानते हैं, अर्थात् एक दिव्य शरीरमें दिव्य जीवन। किंतु वे स्वयं ही हमसे कहते हैं कि इसमें समय लगेगा। यह एक सर्वांगीण रूपातर है जो एक क्षणमें साधित नहीं हो सकता इसमें अभी बहुत समय लगेगा। किंतु एक बार जब यह हो गया और यह चेतना अतिमानसिक चेतना बन गयी तब कर्म किसी मानसिक चुनावसे निर्धारित नहीं होगा, न ही वह किसी भौतिक योग्यताके अधीन रहेगा। तब समग्र शरीर आंतरिक सत्यके एक सहज और सर्वांगीण रूपमे पूर्ण अभिव्यक्ति हो जायगा। यही, वह आदर्श है जिसे तुम्हें अपने सामने रखना चाहिये, इसीको प्राप्त करनेके लिये तुम्हें आगे बढ़ना है किंतु तुम्हें यह भ्रांति नहीं होनी चाहिये और न ही ऐसा सोचना चाहिये कि यह

(शेष पृष्ठ ५९८ पर देखें)

पारा या पारद

लेखक—हकीम अब्दुल हबीब "आयुर्वेद रत्न"

पारेके नाम:—इस धातुको आम बोल चालमें प्राय: पारा कहकर पुकारते हैं। जनसाधारणकी जिव्हा पर यही इसका प्रसिद्ध नाम चढ़ा हुआ है। परन्तु हमारा देश भारतवर्ष सभी भाषा भाषी व अनेक धर्मावलम्बियों का आदि कालसे केन्द्र रहा है। इस कारण यहां भिन्न भिन्न प्रान्तों, नगरो शहरो, कस्बों और ग्रामोंमें भिन्न प्रकारकी बोलिया बोली जाती हैं। इस कारण प्रत्येक नागरिक अपनी मातृ भाषामें इस धातुको भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारते हैं। जैसे—पारा, पारद, पारो, आदि।

वैद्यक शास्त्रोंमें इसको इस नाम की संज्ञा दी गई है। रस शास्त्रोंके आचार्योंने पारदको शक्ति सम्पन्न शरीरको अजर अमर करने वाला साक्षात् समर्थ स्वय परमात्माका स्वरूप कहा है। इन्हीं शक्तियोंके कारण पारेको शिव बीजकी संज्ञा दी जाती है। जैसे रजके मेलके बिना सृष्टि नहीं हो सकती उसी प्रकार पारदमें गन्धकका मेल हुए बिना रसशास्त्रका क्रिया कलाप नहीं होता। इसीलिए गन्धकको पार्वतीजीका रज माना जाता है। इसी कारण इसका "रस" नाम करण हुआ। यूनानी शास्त्रोंमें इसको सीम × आब अर्थात सीमाब कहा गया जिसके माने चांदीके पानीके होते हैं। या चांदी समान तरल पदार्थ। यूनानी कीमिया गर इसको अब्द, अत्तात, जीबक, फरार, शातिर, बेचैन, अय्यार, रुह, बेकरार, इसरार, तिलस्म, गुलाम बच्चा आदि नामोंसे पुकारते हैं।

प्राप्ति स्थान—हिमालय पर्वतके पश्चिममें गिरीद्र नामका (कैलाश) शिखर है उस पर्वती भागमें यत्र तत्र पारद कूप होना बतलाया जाता है। जिनको पारे की खानें भी कहते हैं।

निष्कासन विधि:—प्राचीन ग्रन्थोंमें पारेको खान से निकालनेकी अनेक किवदंतियां हैं, उनमेंसे एक यह है कि जब पारेको खानसे निकालने की आवश्यकता होती है तो, एक तेज दौड़ने वाले घोड़े पर नवयौवना बालिकाको रत्ना भूषणोंसे अलंकृत कर लाल वस्त्र पहिना कर बिठला दिया जाता है। और उस घोड़ेको खानके निकट ले जाकर खड़ा कर देते हैं। तब युवती स्त्रीको देख पारद उसके ऊपर दौड़ता है ज्योंही पारा धाराके रूपमें बाहर आता है कन्या घोड़ा दुड़ा देती है। और पारा आस पास की भूमिपर गड्ढोंमें गिर कर रह जाता है। उसका सग्रह कर लिया जाता है।

यह तो हुई कपोल कल्पित इसकी कथा परन्तु असलियत यह है कि हिमालयके पर्वती भागोंमें जो स्वर्ण आदि रत्नोंकी खाने हैं उन्हीं खानोंमें रक्त वर्ण मिट्टीके रूपमें पारद प्राप्त होता है जिसको हिंगुल, हींगलू, सिगरफ कहते है। इसी मिट्टीसे पारा डमरू यन्त्रके द्वारा निकाला जाता है जो उत्तम पारा होता है और मनो की तादादमें मार्केटमें मिलता है। इस समय विदेशोंसे ही पारा भारतवर्षमें आ रहा है।

गुण-दोष—अशुद्ध तथा कच्चा पारद सेवनसे शरीर में विषैला गुण पैदा करता है। इसकी भस्म बनाकर या समभाग गन्धक जारण कर सेवन शारीरिक व्याधियोंमें औषधि रूपमें सेवन करना हितकर है।

पारदके द्वारा औषध निर्माण:—पारदके द्वारा किसी प्रकारकी भस्म, रस रसायन, गुटिका, पुष्प, कूपीपक्व रसायन आदिके निर्माणसे पूर्व उसको नीबू के रस, हल्दी या ईंटके खोरसे शुद्ध कर लेना चाहिये।

पारद शोधन विधि—सबसे उत्तम विधि तो हिंगुल अर्थात् शिगरफसे पारा निकाल कर काममें लाने की है और यह पारा विशेष गुणकारी और शुद्ध होता है। बढिया किस्मका रूमी शिंगरफ जिसकी पीपर मेन्टकी तरह कोमल कुछ श्यामवर्ण रक्त शलाखे हों, एक सेर लेकर नीबूके रससे खूब घोटें। नीबूके रसमें जितना अधिक घोटा जाएगा पारद उतना ही उत्तम निकलेगा। घुटाईके पश्चात चवन्नी प्रमाण टिकियां बना सुखाले। बादको एक कोरे मिट्टीके पात्र

में टिकियां भर ऊपर वैसा ही दूसरा पात्र मुहसे मुंह मिलाकर मुलतानी मिट्टीसे भली भांति मुख बंद कर धूपमें सुखादे। सूख जानेपर चूल्हेपर चढा मंद मंद अग्नि दे। ऊपरके पात्रपर गीला कपडा बराबर तर रखें। पारा उड़ उड़ कर ऊपर पात्रमें लग जायगा तीन पहरकी अग्नि दे देनेसे एक सेरमें तीन पावके लगभग पारद निकल आता है। अग्नि शांत होनेपर सावधानीसे ऊपरी पात्रको उतारना चाहिये अन्यथा बहुतसा पारद शिंगरफकी जली हुई भस्ममें मिल जाता है। यदि अग्निकी कमीके कारण पारद अधिक न उड़ा हो तो पूर्ववत् क्रिया करे।

द्वितीय विधि—बाजारु पारदके समभाग ईंट बारीक पीसकर तीन दिवस मर्दन करें, पश्चात शनै शनै फूंकदे देकर ईंट खोरको उड़ा शुद्ध पारद निकाल ले।

पारद भस्मके गुण—उत्तम प्रकारकी पारद भस्म जो अग्निपर डालनेपर धूंआ न दे और वर्षा ऋतुमें उत्पन्न होने वाली "पदभेड नामक बूंटी" जो गढ़ोंमें उगती है उससे मिलाकर मर्दन करनेसे जीवित न हो वह सेवन योग्य है। और निम्नांकित रोगोंको दूर करती है।

असाध्य रोग जैसे आतशक, गलित कुष्ठ, श्वेत कुष्ठ, नामर्दी (नपुंसकता) रक्त दोष, अर्धांगवात, कम्पवात आदि रोगोंको समूल नष्ट करती है।

पारद भस्म एक विधि—शुद्ध पारद २ तोलाको ढाई पाव पिसी हुई हल्दीके पानीमे गूंधकर गोला बनाले उसमें एक छिद्र ऐसा बनाए जिसमें २ तोला पारद समा जाए भर कर गोलेके छिद्रको बन्द करदें। और ऊपर ढाई सेर कपड़ेकी चिन्दियां लपेट बन्द मकानमें आंच दे। आठ पहरके पश्चात अग्नि शात होनेपर पारदकी श्वेत वर्ण भस्म निकाल लें।

— शरीर-रक्षण में औषध और चेतना का स्थान —

(पृष्ठ ५९६ का शेष)

तत्काल ही बिना प्रयत्न और परिश्रमके एक द्रुत, चमत्कार पूर्ण और अद्‌भुत रूपांतरकी भांति सिद्ध हो जायगा।

किंतु फिर भी यह एक संभावना मात्र नहीं है, यह केवल एक सुदूर भविष्यके लिये आश्वासन भी नहीं है। यह एक ऐसी चीज जिसे चरितार्थ किया जा रहा है और इस हद तक किया जा रहा है कि तुम अभी उस समयको पहलेसे केवल देख ही नहीं सकते बल्कि अनुभव भी कर सकते हो जब कि शरीर सत्ताके सर्वाधिक आध्यात्मिक भावकी उस पूर्ण अनुभूतिको प्राप्त कर लेगा जिसे आंतरिक आत्मा पहले ही प्राप्त कर चुकी है। वह अपने आपको अपनी शारीरिक चेतनामें, सर्वोच्च सद्‌वस्तुके सामने खड़ा अनुभव करेगा. उसकी ओर पूर्णतया उन्मुख होकर पूरी सच्चाईके साथ तथा अपने सब कोषाणुमें पूर्ण आत्म-समर्पणका भाव लाकर कह उठेगा।

'मैं 'तू' बन जाऊं' अनन्य भावसे, पूर्ण भावसे 'तू' बन जाऊं. असीम रूपमें, सनातन और सहज रूपमें 'तू' बन जाऊं।"

रसशास्त्रकी पद्धतिके अनुसार पारदके अष्ट संस्कार होनेपर ग्रासमान, चारण, गर्भद्रुति और जारण संस्कार किये जाते हैं। यह जारण संस्कार महत्वका है। मनगढंत रीतिसे क्रिया करनेसे सफलता नहीं मिलती। सद्गुरुसे प्राप्त विधि अनुसार ही क्रिया करनी चाहिए। रसायनवाद और धातुवाद प्रवेशार्थ यह मुख्य द्वार है। इस सम्बन्धमें रसार्णवकारने कहा है कि—

सर्वपापक्षये जाते प्राप्यते रसजारणा।
तत्प्राप्तौ प्राप्तमेव स्याद् विज्ञानं मुक्तिलक्षणम्॥

जारण संस्कारमें सबसे पहले गन्धक जारण कराया जाता है। इस सम्बन्धमें आयुर्वेद प्रकाशकारने कहा है कि—

"अथ यदि रसायन गुणेच्छा चेद् गन्धक जारणोत्तरं हेमाभ्रसत्वादि यथाविधि गन्धकजारणोत्थिते रसे प्रोक्तविधिना संमाध्य जारयित्वा मारणविधिना हत्वा मात्रया क्षेत्रीकरणपूर्वक पथ्ययोगेन मण्डलावधि षण्मासं वर्षैकं द्विवर्षं त्रिवर्षं वा संसेव्यः।"

सामान्यतः गन्धक षड्गुण जीर्ण कराया जाता है। शुद्धी करणार्थ इसकी आवश्यकता मानी है। कम जारणसे योग्य फलकी प्राप्ति नहीं होती। अधिक फल प्राप्तिके निमित्त अन्तर्धूम विधिसे अधिक बार (१६ बार, शतबार या इससे भी अधिक बार) जारण कराया जाता है।

प्राचीन विधि रसार्णव और रसहृदयतन्त्रमें दर्शायी हुई और नूतन विधि नागार्जुन की है। दोनोकी क्रियामें कुछ कुछ भेद आता है। कापालिकोंकी क्रिया इन दोनो से पृथक् हो जाती है। ऐसी अवस्थामें किसी एक मार्गकी क्रियाको बिना समझे दूसरेके साथ नहीं मिला लेना चाहिए।

बहुधा शुद्ध पारदको ही ग्रास देकर चारण कराया जाता है। क्वचित् खोटबद्ध बनाये हुए पारदके साथ सुवर्ण आदि मिलाकर जारण कराया जाता है। विशेषतः जारण संस्कार होनेपर रञ्जन, सारण, क्रामण, वेधन आदि संस्कार यथा नियम क्रमशः कराते है। क्वचित् जारणके साथ रञ्जन हो जाता है। ऐसे ही क्रामण संस्कारकी भी सिद्धि इसी तरह करके वेध किया जाता है। ये सब क्रियाये सद्गुरुकी शरणमें रहकर प्राप्त करनी चाहिए। शास्त्रका अध्ययन, मनन करके क्रियाका आरम्भ करनेमें भूल होकर हानि होनेका भय अत्यधिक है।

बहुधा गन्धकका शोधनकर फिर प्याज, लसोन आदिके रसमें बुझावा दिया जाता है। यह क्रिया अति सावधानीसे की जाती है। गन्धक जल न जाय, यह सम्हालना पड़ता है। इस तरह २१, ५१ या १०० बार बुझावा देनेसे गन्धक विशेष गुणवान बनता है। इस गन्धकके योगसे अन्तर्धूम विधिसे गन्धकका जारण कराया जाता है। इस सम्बन्धमें आनन्दकन्द चतुर्थ उल्लासमें कहा है कि—

इष्टिकामध्यभागे तु गम्भीरं वर्तुलं समम्।
गर्तं कृत्वा तत्र सूतं प्रक्षिपेदनुवासितम्॥

निरुन्ध्यात् स्वच्छवस्त्रेण रसस्य दशमांशकम् ।
गन्धं तदूर्ध्वं निक्षिप्य शरावेण निरोधयेत् ॥
तत्पृष्ठेऽल्प पुटं दद्यात् गन्धे जीर्णे पुनः पुनः ।
क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा शतगुणं चारयेत् पातयेदिति ॥

आयुर्वेद प्रकाशकारने कच्छपयन्त्रमें जारण करने का विधान किया है । इस सम्बन्धमें कहा है कि—

आकण्ठं कलशं भूमौ निधाय जलसंभृतम् ।
शरावस्तन्मुखे स्थाप्यो मध्ये छिद्रसमन्वितः ॥
नीरावियोगिनी तत्र छिद्रे काचविलेपिताम् ।
मृण्मूषा स्थापयेत्तस्या मूर्ध्नाधस्तुल्यगन्धकम् ॥
रसं निक्षिप्य तस्योर्ध्वं शरावेण विमुद्रयेत् ।
वन्योपलाग्निं तस्योर्ध्वं ज्वालयेद् गुरुमार्गतः ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पुनस्तुर्यांशं गन्धकम् ।
दत्वा पूर्वं क्रमेणैव जारयेत् षड्गुणं बलिम् ॥

अति सरल बहिर्धूम विधि दर्शाने के लिए कहा है कि—

सूतप्रमाणसिकताख्ययन्त्रेदत्त्वाबलिमृद्घटितेऽल्पभाण्डे।
तैलावशेष च रसनिरुध्यान् मगनार्धकाय प्रविलोक्य भूय ॥
आषड्गुणं गन्धकमल्पमल्पं क्षिपेद्रसो जीर्णबलिर्बलीयान्।
रसेषु सर्वेषु नियोजितोऽयमसंशयं हन्ति गदं जवेन ॥

वालुका यन्त्रके भीतर मिट्टीका सकोरा रखें । उसमें १० तोले शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धककी कज्जली रखे । उसे चूल्हेपर चढाकर अग्नि देवें । गन्धकका रस होता जायगा और उड़ता जायगा । उसके भीतर १-१ छिमटी गन्धक डालते जायें। इसतरह षडगुण गन्धकका जारण करें । यह पारद निःसंदेह सब रोगोंको नष्ट करने वाला बन जाता है ।

इन विधियोंके अनुरूप कई आचार्य गन्धकका जारण करते हैं । गन्धक जारण होनेपर रसायनवाद और धातुवाद दोनोंमें प्रवेश करनेके लक्ष्यसे अभ्रक-सत्त्वका जारण कराते हैं । कई आचार्य सुवर्णका जारण पहले कराते हैं । इस सम्बन्धमें आयुर्वेदप्रकाश कारने कहा है कि—

गन्धक जारणमादौ कुर्यादथ जारणं सुवर्णस्य ।
जलधरसत्त्वस्य ततो जारणमथ सर्वलोहानाम् ॥

सुवर्ण जारण कराना हो तो उसके लिए ४-६ पुट वाली अर्धमृत सुवर्ण भस्मका ग्रास दिया जाता है । अभ्रक जारण कराना हो तो अभ्रकसत्व-भस्मका ग्रास दिया जाता है । इसके लिए ग्रासमान, चारण-विधि, गर्भद्रुति, जारण ये सब क्रमशः शास्त्रदर्शित विधि अनुसार कराया जाता है ।

सुवर्ण ग्रास दोलायन्त्रमें दिया जाता है । इस सम्बन्धमें आयुर्वेद प्रकाशकारने लिखा है कि —

सग्रासं पञ्चषड्भागैर्यवक्षारैर्विमर्दयेत् ।
सूतात्षोडशांशेन गन्धेनाष्टांशकेन वा ॥
ततो विमर्द्य जम्बीररसे वा काञ्जिकेऽथवा ।
दोलापाको विधातव्यो दोलायन्त्रमिदं स्मृतम् ॥

षोडशांशका सुवर्ण ग्रास पारदके साथ मिलावे । फिर षोडशांश या अष्टमांश गन्धक मिलाकर कज्जली करे । फिर ५-६ गुना यवक्षार मिलावे । पश्चात् नींबूके रस या खट्टी कांजीके साथ ३ दिन तक मर्दन करें । फिर भोजपत्रपर लगा थैलीमें रख दोलायन्त्रमें लटकावे। नीचे काञ्जी भरें घडेको चूल्हेपर चढाकर अग्नि देवें और बाष्पसे ग्रासका जारण करावे । इस तरह ३ दिन तक या ग्रास जीर्ण हो तब तक पाक करे ।

कई आचार्य कच्छपयन्त्रमे बिड और नौसादर मिलाकर सुवर्णका जारण कराते है ।

सुवर्ण जारणके समय सुवर्णसे दूना सुवर्ण माक्षिक सत्त्व मिला लिया जाता है । जिससे यथोचित जारण हो जाता है ।

सुवर्ण जारणके पश्चात् अभ्रक जारण किया जाता है । इसके लिए अभ्रक सत्त्व भस्मके ग्रासके साथ सम-भाग सुवर्ण माक्षिक सत्त्व मिलानेपर ग्रास ग्रहण सत्वर होता है । अन्यथा अति श्रम लेना पड़ता है और बहुत कम मात्रामें ग्रहण होता है । इस सम्बन्धमें रसहृदय-तन्त्रमें कहा है कि:—

माक्षिक सहितं गगन ध्मातं सत्वं सुखप्रदं भवति ।
तदनु च नागैर्वङ्गैः सहित च सुखप्रद सत्वम् ॥

पारदके अष्ट संस्कार करनेपर षड्गुण गन्धक जारण करनेके पहले कई आचार्य मुख करणार्थ निम्न संस्कार भी करते हैं। यह आयुर्वेद प्रकाशमें अन्य आचार्यका मत मानकर दर्शाया है।

सार्यो रसः स्यात्पटु शिग्रुतुर्थैः ।
सराजिकैः सौपणकैस्त्रिरात्रम् ॥

पिष्ट स्ततः स्त्विन्नतनु. सुवर्ण,
मुखानयं खादति सर्वधातून् ॥

मुख करणार्थ सैंधानमक, सुहिजनेके बीज, नीला-थोथा सत्त्व, छिलका दूर की हुई राई, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, इन सबके साथ अष्टसंस्कारित पारदको ३ अहोरात्र अम्ल कांजी मिला मिलाकर मर्दन करें। फिर डमरू यन्त्रसे उड़ाकर पारद निकाल लेनेपर (तथा निवायी काञ्जीसे धो लेनेपर) सुवर्ण, अभ्रक सत्त्व, रजत, ताम्र आदि सब धातुओंको खानेमें समर्थ बन जाता है।

रसरत्नाकर कारने वादिखण्ड द्वादशोपदेशमें कहा है कि–

अम्लवेतस जम्बीरबीजपूरकभूखगैः ।
त्रिदिनं मर्दयेन् सूतं भूनागैश्च दिनत्रयम् ॥
तप्त खल्वे दिनं मर्द्य सूतस्येरथ मुखं कृतम् ।

अम्लवेत, नीबूका रस, बिजौरेका रस और कासीस, इनके साथ पारदको मिलाकर ३ दिन तक मर्दन करें। फिर तप्त खरलमें पारदको भूनागके साथ ३ दिन तक घोटनेसे बुभुक्षित हो जाता है।

आधुनिक कई आचार्य पारदके साथ नीलाथोथा सत्त्व, सेंधानमक, नौसादर, कसीस, तालसत्त्व और रसोत मिलाते हैं। फिर तीव्र अम्ल बनी हो वैसी कांजीके साथ एक सप्ताह तक मर्दन करते हैं। इस तरह प्रबल बुभुक्षित बन जाता है। फिर षड्गुणगन्धक अन्तर्धूम विधिसे जीर्ण अभ्रक सत्व, सुवर्ण माक्षिक सत्त्व, सुवर्ण आदिका ग्रास देते हैं।

माक्षिक सत्वे योगाद् घन सत्व चरति सूतको निखिलम्।
नियत गर्भद्रावी स रज्यते बध्यते चैवम् ॥

यहांपर नाग-वङ्ग मिलानेका विधान किया है, वह मात्र धातुवादके निमित्त है। देहवादके उपयोगके लिए नहीं है।

जो सत्व ग्रहण होता है, वह बिड़की सहायतासे। अभ्रक सत्व, सुवर्ण आदि जारणार्थ बिड पृथक् पृथक् जातिके बनते है। एवं सबपर सफलतापूर्वक कार्य करे, वैसा बिड़ निर्माण करानेकी विधि भी आचार्यों ने दी है।

रसायन वाद और धातुवाद दोनोके लिए उप-धातुओंके सत्वऔर बिड़ आवश्यक द्रव्य हैं। ये नहो तो कार्य अधिक परिश्रमसे होता है और संतोष भी पूरा नहीं मिलता। अत साधकोकी सुविधाके लिए अनुभूत सत्वपातन विधि और बिड़ निर्माण विधि इस लेखमें दी जाती है। इस सम्बन्धमें रसहृदयतन्त्र प्रमाणभूत ग्रन्थ है। रसेन्द्र चिन्तामणि, आयुर्वेद प्रकाश आदि ग्रन्थकारोंने रसहृदयतन्त्रका ही अनुगमन किया है।

सुवर्णमाक्षिक सत्त्व पातन विधि—

कदलीरसशत भावित मध्वैरण्डतैल परिपक्वम् ।
ताप्यं मुञ्चति सत्वं रसकं चैवं त्रिसंतापै ॥
रसहृदय-१०-१३ ॥

शुद्ध सुवर्ण माक्षिकको केलेके खम्भेके रसकी १०० भावना देवें। बार बार सूर्यके तापमें सुखावें। पश्चात् शहद और एरण्डतैल मिलाकर उसे १०० बार पाचन करावें। फिर सत्वपातन करानेपर सुवर्ण माक्षिक सत्व छोड़ता है। इसी तरह खर्परका सत्त्व भी तीन बार पातन करानेपर मिल जाता है।

रसरत्नाकर वादिखण्ड ऋद्धि खण्डमें निम्नानुसार सरल मार्ग दर्शाया है, उस विधिसे भी सुवर्ण माक्षिक सत्व पातन हो जाता है।

स्नुही क्षीरैर्गवांक्षीरैर्भाव्यमेरण्डतैलकैः ।
माक्षिक पञ्चमित्राक्तं सप्ताहांते वटीकृतम् ।
पूर्व बद्ध मनेनैवं सत्व लाक्षानिभं भवेत् ॥

सुवर्ण माक्षिक भस्मको पहले स्नुही क्षीर और गो मूत्रकी २१ भावना दी जाती है। फिर एरण्ड तैलकी भावना देकर, पञ्चमित्र मिलाकर छोटी छोटी टिकिया बना ली जाती हैं। पश्चात् मूषामें भरकर सत्व निकाला जाता है। यह सत्व लाक्षाके वर्णके सदृश आसता है।

अभ्रक सत्व पातन विधिः—

चूर्णितसत्वसमानं त्रिंशत् पलमादरेण संगृह्य।
टङ्कणपल सप्तयुत गुञ्जापल त्रितय योजितं चैव ॥
तिल चूर्णकद्विट्ट पलैर्मत्स्यैरालोड्य दिरंशयुक्तैश्च।
गोधूम बद्ध पिण्डी गोपञ्चक भाविता बहुशः ॥
कोष्ठक धमन विधिना तीव्रं भस्त्रानलेन तत्पतति।
संद्रवति गाभ्रसत्वं तथैव सर्वाणि सत्वानि ॥
रसहृदय १०-१५-१७ ॥

धान्याभ्रककी ५-७ पुटी भस्म ३० पल, सोहागा ८ पल, गुंजा ३ पल, तिलकी खलीका चूर्ण २ पल और छोटी मछली २ पल लेवें। कई आचार्य गोपञ्चक(दूध, दही, घृत,मूत्र और गोबर की ७ ७ भावना देते हैं फिर गेहूँका आटा मिलाकर छोटी छोटी वाटी बना लेवें। अच्छी तरह सूख जानेपर मूषमें भरकर सत्व पातन कराते हैं।

प्राचीन कालमें खदिरके कोयले लेते थे। वर्तमानमें हार्डकोक (कोयले) लेना विशेष अनुकूल है। पहले भस्त्रा का उपयोग होता है। अब पखेका उपयोग अधिक सुविधा जनक है। १-१ फीटके पखे मिलते हैं। इले-क्ट्रिककी सुविधा हो तो विद्युच्चालित पखा लगानेसे वायु बहुत तेज मिलती है। यह सुविधा न हो तो पंखे हाथसे चलाने की योजना करें।

रस होकर सत्व पातन हो जाय, तब तुरन्त मूष नीचे उतार कर रख लेनेसे सत्वके कण पृथक् हो जाते हैं। इन बड़े कणोंको और चूर्णको लोह चुम्बक से आकर्षित कर लेवें। फिर सत्वके साथ मित्र पञ्चक मिलाकर पुनः सत्व पातन कराने पर सुन्दर सत्व मिल जाता है। बड़ी बड़ी डली बनानी हो तो तीसरी बार रस करके बनाई जाती है। भस्म बनानेके लिए पुनः२ सत्व निकालनेकी आवश्यकता नहीं है। घी कुंवारके रसकी भावना देकर पुट दे देवें। फिर विशुद्ध पारदको ग्रास देनेके लिए उपयोगमें लेवें।

अभ्रक सत्व पातन कराना हो तो अग्नि बहुत तेज देनी पड़ती है। कान्त पत्थरके सत्वके लिए अपेक्षा कृत कम अग्नि दी जाती है। इससे कम अग्नि सुवर्ण माक्षिकको देनी पड़ती है।

तुत्थसत्व पातनार्थ आयुर्वेद प्रकाशमें लिखा है कि—
तुत्थं टङ्कण संयुक्त निम्बु द्रवविमर्दितम्।
अन्धमूषागतं ध्मातं सत्वं मुञ्चति ताम्रकम् ॥

नीलाथोथा और सोहागा समभाग मिला नीबूके रसमें ७ दिनतक मर्दन करके छोटी छोटी टिकिया बनावें। फिर मूषमें भर ढक्कन ढककर सत्व पातन करानेसे ताम्र सदृश सत्व मिलता है।

ताल सत्व पातनके लिए आयुर्वेद प्रकाश कारने कहा है कि:—

लाक्षाराजी तिला. शिग्रुटङ्कणं लवणं गुडम्।
तालकार्धेन संमिश्य छिद्रमूषानिरोधितम् ॥
पुटेत् पाताल यन्त्रेण सत्वं पतति निश्चितम् ॥

लाख, राई, तिल, सुहिजना, टङ्कण, सेंधानमक और गुड़. ये सब समभाग मिलावें। फिर शुद्ध हरताल से आधे परिमाणमें मिला छिद्र वाली मूषामें भरकर यथा विधि सत्व पातन करा लिया जाता है।

मन. शिलाका भी तालके समान सत्व पातन कराया जाता है। मल्ल, ताल और शिला, तीनोंमें श्वेत शिखा प्रतीत होनेपर अधिक अग्नि नहीं दी जाती है।

इसी विधिसे तुत्थ, मल्ल, ताल, शिला आदिका सत्व निकाला जाता है। सत्व निकालनेकी क्रिया विशेषत. रात्रिमें की जाती है। जिससे द्रव्यमेंसे शिखा कैसी निकलती है. वह सरलतासे विदित हो जाता है। श्वेत शिखा प्रतीत होनेपर सत्व निकल आता है, ऐसा मानकर मूष नीचे उतार ली जाती है।

इनके अतिरिक्त वैक्रान्त, रौप्य माक्षिक, शूलग आदिका सत्व भी पातन कराया जाता है। सत्व पातन

होनेपर पारद उसे सरलतासे ग्रहण करता है। रसायन वादके निमित्त पारदके गुणाधान संस्कार करने वाले को इन सब द्रव्योंको पहलेसे तैयार कर लेना पड़ता है।

धातुवादके निमित्त कई आचार्य अभ्रकसत्त्व निकालनेके स्थानमें वङ्ग या नाग मिलाकर वङ्गाभ्र और नागाभ्र सत्व पातन कराते हैं। नाग और वङ्गका समिश्रण अभ्रकके साथ कितना हुआ, यह विदित नहीं होता तथापि पारद उसे अति सरलतासे ग्रहण करलेता है। कापालिक सम्प्रदाय वाले अभ्रक, सुवर्ण माक्षिक, वंग (या नाग) हेम, भूनाग, ताम्र, शिला ये सब मिलाकरके भी सत्वपातन कराते हैं। उससे बहुत कम समयमें चारण, गर्भद्रुति, और जारण क्रिया हो जाती है। एवं रंजन क्रिया भी सम्पन्न हो जाती है। यथार्थमें यह सब विधि रसायनवाद वालोंके लिए विशेष उपयोगी नहीं है।

जिस तरह सत्वकी योजना पहलेसे करली जाती है। उसी तरह विविध प्रकारके बिड भी तैयार कर लेना पड़ता है। बिड मिलानेपर जारण सरलतासे हो जाती है। इन बिड़ोंका वर्णन रसहृदयतन्त्रकारने किया है, वे विशेष महत्व पूर्ण हैं। अतः वे ही यहां दर्शाता हूँ।

ताम्र जारणार्थ बिड़—

सौवर्चल-कटुकत्रय-कांक्षी-कासीस-गन्धकैश्च बिडैः।
शिग्रो रसशत भाव्यस्ताम्रदलान्यपि च जारयति॥

कालानमक, त्रिकटु, फिटकरी, कासीस और गन्धक, इन सबको समभाग मिलावे। फिर स्वरस-यन्त्रमे निकाले हुए सुहिजनेकी छालके रसकी १०० भावना देनेसे बिड़ तैयार होता है। यह पारदको ताम्र पत्र या ताम्र भस्मका ग्रास देनेपर जारण करा देता है। यदि साथमें अभ्रक सत्व भस्म और सुवर्ण माक्षिक सत्व भस्म मिलाई जाय, तो उनको भी जीर्ण करा देता है।

हेम जारणार्थ बिड़—

सर्वाङ्ग-दग्ध मूलकभस्म प्रतिगालित सुरभि मूत्रेण।
शतभाव्यं वलिवसया तत्क्षणतो जार्यते हेम॥

मूलीके पञ्चाङ्गको जलाकर भस्म करे। उसे चौगुने गोमूत्रमें घोल देवे। नितर जानेपर सम्हाल पूर्वक ऊपरसे जल लेकर छान लेवें। उस क्षार जलकी शुद्ध गन्धकको १०० भावना देनेपर बिड तैयार हो जाता है।

वडवानल बिड—प्राचीन आचार्य कथित यह बिड सब धातु और उपधातुके जारणमें उपयोगी है। इसका वर्णन आयुर्वेद प्रकाश कारने निम्नानुसार किया है:—

शङ्ख चूर्णं रविक्षीरैरातपे भावयेद्दिनम्।
तद्वज्जम्बीरजद्रावैर्दिनैकं धूमसारकम्॥
सौवर्चलमजामूत्रैर्भाव्यं यामचतुष्टयम्।
कण्टकारी च संक्वाथ्य दिनैकं नरमूत्रके॥
स्वर्जीक्षार च कासीसं तिन्तिडीकं शिलाजतु।
जम्बीरोत्थद्रवैर्भाव्यं पृथग्यामचतुष्टयम्॥
निस्तुषं जयपाल च मूलकानां द्रवैर्दिनम्।
सैन्धवं टङ्कणं गुञ्जां दिनं शिग्रुजटाम्भसा॥
एतत्सर्वं समांशं तु मर्द्य जम्बीरजद्रवे।
तद्गोलं रक्षयेद्यत्नाद्बिडोऽयं वडवानलः॥
अनेन मर्दितः सूतः संस्थितस्तप्तखल्वके।
स्वर्णादि सर्व लोहानि सत्वानि ग्रसते क्षणात्॥

समुद्रमें मिलने वाले छोटे छोटे शंखोंकी नाभिका चूर्ण करके आकके दूधकी भावना देवें। इस तरह १०० भावना देवें। बार बार सूर्यके तापमें सुखावें। इस तरह रसोई घरके धुएंको जम्बीरके रसमें एक अहोरात्रि मर्दन करे। काले नमकको बकरीके मूत्रमें ४ प्रहर तक घोटें। फिर छोटी कटेलीका क्वाथ करें। उसकी भावना देवे। पश्चात् मनुष्यके मूत्रमें १ दिन तक खरल करे। एवं सज्जीक्षार, कासीस, इमली, शिलाजतु (सोग), इन सबको मिला जम्बीरके रसमें ४ प्रहर तक मर्दन करें। छिलके दूर किये हुए जयपालको मूलीके रसमें १ अहो रात्र तक घोटे। सैंधानमक, टङ्कण और छिलके रहित गुञ्जा, इन तीनोंको मिला सुहिजनेके मूल (और छाल) के स्वरस यन्त्रसे निकाले

हुए रस या क्वाथके साथ एक अहोरात्र तक खरल करें। फिर सबको समभाग मिलाकर जम्बीरके रसमें २१ दिन खरल कर गोले (टिकिया) बना लेवें। उसे अमृत बानमें सम्हाल पूर्वक भर लेव। यह बिड़ अति उग्र है। स्वर्ण आदि सब धातु तथा सब सत्वोंको अति जल्दी ग्रस लेता है।

इस प्रकारके कई बिड़ शास्त्रकारोने दर्शाये है।

सामान्यत. बिड़ यथोचित बना हो, 'तो पारदके साथ नीचे ऊपर अष्टमांश अष्टमांश रखा जाता है। तेज न हो तो बिड़की मात्रा बढ़ानी पड़ती है। जारण करनेके समय क्रमशः अग्नि बढ़ाई जाती है। अभ्रक सत्वादिकी अपेक्षा बीज जारणमें बिड़की आवश्यकता पूर्णांशमें रहती है।

बीज जारण करने पर फिर गन्धकका १०० बार जारण करा लिया जाता है जिससे वह पारद शास्त्रके दर्शाये हुए फलको दर्शा सकता है। विविध सत्व पातन हो जाने और बिड़ तैयार हो जाने पर चारण, गर्भद्रुति, जारण ये सब क्रियाये सरलता पूर्वक शीघ्र होती हैं।

अभ्रक सत्वके ५ ग्रास दिये जाते हैं। इनका परिमाण पारदके वजनसे १/६४, १/४०, १/३०, १/२०, और १/१६ माना है। इनमें पहले ४ ग्रासका दौलायन्त्रमे करानेका विधान किया है। ५ वां ग्रास तथा आगे द्विगुण पर्यन्त जितने ग्रास देने हों, वे सब कच्छप यन्त्रमें जारण करानेका आदेश किया है।

दोला यन्त्रमें अभ्रक सत्व और माक्षिक सत्व मिले हुए पारदके नीचे ऊपर बिड रखा जाता है। उसे यथाविधि थैलीमें भरकर यन्त्रमें लटकावे। नीचे तीव्र अम्ल बनी हुई काञ्जी भरे। चूल्हेपर यन्त्र चढाकर पारदको बाष्प देवें। ग्रास पचन करावे।

कच्छप यन्त्रमें ग्रासको पाचन कराना हो, वहांपर नीचे ऊपर बिड़ रखा जाता है। ५ वा और ६ ठवां ग्रास होनेपर पारद मक्खनके पिण्डके सदृश बन जाता है, और पक्षच्छिन्न हो जाता है।

यदि पहले सुवर्ण ग्रास दिया हो तो अभ्रक सत्व का जारण हो जानेपर पारद बुभुक्षित और पक्षच्छिन्न हो जाता है। सुवर्ण ग्रास न दिया हो तो सम्यक् प्रकार से बुभुक्षित नहीं होता।

अभ्रक सत्वका चारण कराना हो, तब समभाग सुवर्ण माक्षिक सत्व मिलाया जाता है। यह रसार्णव कारके निम्न वचनसे स्पष्ट विदित होता है।

व्योमसत्वं समांशेन ताप्य सत्वेन संयुतम।

साकल्येन चरेद्देवी गर्भद्रावी भवेद्रस' ॥

यदि सुवर्ण या रौप्यका ग्रास देना हो, तो सुवर्ण माक्षिक सत्वकी भस्म दूनी मिलाई जाती है। यह रस हृदयतन्त्रके निम्न वचनसे जाना जाता है।

न बिडै-र्नापि क्षारैर्न स्नेहैर्द्रवति हेम तारं वा।

माक्षिक सत्वेन बिना त्रिदिनं निहितेन रक्तेन ॥

॥अव ५-७॥

बिड़ या अन्य क्षार अथवा स्नेह द्रव्यके योगसे सुवर्ण और रजत आदि धातुका (बीजका) द्रावण पारदके गर्भमें नहीं होता। इसके लिए सुवर्ण माक्षिक सत्व मिलाया जाता है। इस माक्षिक सत्वको भी रक्तवर्गके रस या क्वाथमे ३ अहोरात्र तक मर्दन कराया जाता है। फिर उस माक्षिक सत्वको सुवर्ण या रौप्य भस्मके साथ मिलावें। पश्चात् बिड़ और कांजी, जम्बीर रस आदि मिलाकर ग्रास देनेपर गर्भद्रुति सरलतासे हो जाती है।

चारण संस्कार सम्पन्न होनेपर गर्भद्रुति और फिर जारण संस्कार कराया जाता है। ग्रासका चारण होने पर गर्भद्रुति करानेके लिए सैंधानमक, सज्जीखार, शंखभस्म और शुक्ति भस्म मिला नींबूके रसके साथ ३ दिन तक खरल करें। फिर गोमूत्रमें मर्दन करें। पश्चात् भोजपत्रपर लेपकरके थैलीमें रखकर दौलायन्त्र में बाष्प स्वेदन करावे। घड़ेमें नीचे कांजी या क्षार मिश्रित गोमूत्र या गौ, बकरी, हाथी, घोड़ा और स्त्री,

(शेष पृष्ठ ६१४ पर देखे)

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन पारद-अनुसंधानशालामें किये गये

पारद संस्कार

लेखक—वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा

आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति तीन प्रकारकी मानी गई है। दैवी, मानवी तथा आसुरी। विशुद्ध पारद गंधकके योगसे निर्मित औषधियोगोंसे जो चिकित्सा की जाती है वह अल्पमात्रामें शीघ्र ही उत्तम फल देने वाली होती है। यह रस-रसायन चिकित्सा दैवी चिकित्सा कहलाती है। काष्ठौषधियोंसे जो चिकित्सा की जाती है,वह मानवी और शस्त्रादि द्वारा जो चिकित्सा की जाये,वह आसुरी चिकित्सा मानी जाती है। यथा हि

सा दैवी प्रथमा सुसंस्कृतरसैर्या निर्मिता सद्रसै-
श्चूर्णस्नेहकषायलेहरचिता स्यान्मानवी मध्यमा ॥
शस्त्रच्छेदनलास्यलक्षणकृताऽऽवाराऽधमा साऽऽ
सुरीत्यायुर्वेद रहस्यमेतदखिलं तिस्रश्चिकित्सा मता ॥

इन्हींके आधारपर भारतीय वैद्योंकी भी तीन श्रेणियां हैं–१. रसवैद्य, २. वैद्य एवं ३. शल्यचिकित्सक जब कि अन्य पद्धतियोंमें रसचिकित्सक नहीं होते, शेष दो (१) औषधि चिकित्सक (Physician) (२) शल्य चिकित्सक (Surgeon) ही होते हैं। क्योंकि अन्य पद्धतियोंमें पारदके सम्मिश्रणसे निर्मित औषधियों को मुख द्वारा देनेका रिवाज कम होनेसे तथा पारदको दिव्य बनानेकी विद्या न होनेसे वह सामान्य औषधि सदृश गुण दर्शाता है। अतः सामान्य औषधियोंके साथ उसे मान लिया है। हमारे यहां सहस्त्राब्दियोंसे यह चिकित्सा चली आ रही है।

पारद संसारके सब पदार्थोंमें अमूल्य एवं सर्वोपरि अचिन्त्य शक्ति वाला है। इसको अधिकसे अधिक गुणवान बनानेमें जितना भी परिश्रम किया जाता है उतना ही अधिक वह शक्ति सम्पन्न बनता है। इसके योगसे २०००० से भी अधिक सिद्ध रस रसायन हमारे यहां बने हैं। उनकी कई प्रकारकी निर्माण विधियां हैं। इन विधियोंमें कूपीपक्व रसायन अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शीशी या बोतलमें औषधि मिश्रण डालकर जो भट्टीपर विशेष यन्त्रोंसे अग्निपर पकाया जावे, वह रसायन कूपीपक्व कहलाता है।

कूपीपक्व रसायनकी क्रिया अन्य औषधि क्रियाओं की अपेक्षा जटिल व अधिकश्रमसाध्य होती हैं जबकी वे उतनी ही अधिक श्रेष्ठ व आशुफलप्रद होती हैं। कूपीपक्व रसायनोंमें पारद व गन्धककी प्रधानता है। एवं अन्य औषधियां गौणरूपमें होती हैं। ये पारद व गन्धक जितने अधिक विशुद्ध व जारित, भावित तथा सारित होंगे, उतने ही अधिक कार्यकर भी होंगे। पारद गन्धक दोनों ही खनिज हैं। इनमें कई प्रकार के दोष व कञ्चुकियां (अन्य खनिज द्रव्योंके आवरण व भूमिदोष होते हैं उनको दूर करने और विशेष गुणाधान करनेके लिये पारदके संस्कारोंका विधान किया है। हमारे ऋषिमुनियोंने जिस प्रकार परमश्रेयः प्राप्ति के लिये मानवके जीवनमें षोडश संस्कारोंका विधान किया है वैसे ही पारदको दिव्य बनानेके लिये विशेष संस्कारोंका आदेश दिया।

पारदके मिश्रणसे जिन औषधियोंका निर्माण प्रायः खरलमें होता है और रोग निवारणार्थ व्यवहृत किया जाता है, उन सबको रस संज्ञा दी गई है। ये रस कई प्रकारके पारदसे बनाये जाते हैं। जिनमें हिंगुलोत्थ शुद्ध पारद अष्ट संस्कारित पारद, बुभुक्षित पारद, अग्निस्थायी पारद या षड्गुण गन्धक जारित पारद

मिलाये जाते हैं। जितना पारद विशेष संस्कृत और सबल होगा, उतना ही प्रयोग अधिक सबल बनेगा। यह रसविदोने परीक्षण करके निर्णीत किया है।

रसायन औषधियोकी उसे संज्ञा दी है, जो देहकी जरावस्था निर्बलताको दूरकर युवावस्थाकी पुनः प्राप्ति कराती है। विशेषतः इस प्रकारकी औषधिया वालुकायन्त्रमें बनती है। कुछ औषधियां खरलमें भी मर्दन करके बनायी है। वालुकायन्त्रमें विशेषतः औषधि कूपीके भीतर बनायी जाती है।

रसायनगुणके निमित्त जो पारद लिया जाता है, वह पक्षच्छिन्न, पञ्चच्छिन्न सुवर्ण जारित, एव षड्गुण गन्धकसे लेकर षोडश, शत, सहस्रगुण बलि जारित पारद द्वारा तथा स्वर्णाभ्रक ग्रसित एव सबीज, षोडश वेध करे वैसा शतगुण वेधी, सहस्रगुणवेधी आदि दिव्य पारद द्वारा भिन्न भिन्न रसायन बनती हैं। जोकि उत्तरोत्तर गुणातिशय शक्ति संयुक्त होती है।

सामान्यतः रोग निवारणार्थ पारद न्यूनशक्ति युक्त भी चल सकता है। रोगोमें भी दो प्रकार हैं। आशुकारी शिथिल मूल वाले। अन्य चिरकारी सुदृढ मूल वाले। आशुकारीपर औषध सेवन कम समय करायी जाती है। एव सबल पारदकी आवश्यकता बहुधा नही रहती। चिरकारी रोगोंमें कई रोग अति जटिल दारुण दुखदायी दीर्घकाल स्थायी तथा जीवनको कष्टमय बनाने वाले हैं। कई रोग असाध्य अवस्थाको प्राप्त हो गये हैं। इन सबके लिए जितना शक्तिशाली रस होगा, उतना ही अधिक प्रभाव दर्शा सकेगा।

कुछ औषधियोको रस संज्ञा देनेपर भी पर्पटी कल्परूप बनायी है। जैसे सुवर्ण पर्पटी, रस पर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी आदि आदि। कुछ औषधियां कूपीपक्व होनेपर भी रोग निवारणार्थ मानी गयी है। जैसे रसकर्पूर, सुवर्णराजवगेश्वर, व्याधिहरण, अष्टमूर्तिरस समीरपन्नग आदि आदि। और असाधारण शक्ति सम्पन्न रसायन नामसे पुकारे जाते है जैसाकि शास्त्रों में वर्णित है —

यज्जरा व्याधि विध्वसी भेषजं तद्रसायनम्॥

शुद्ध पारद—शुद्धकमीसिंगरफको डमरूयंत्रमें रखकर उड़ाकर जो पारद निकाला जाता है। सामान्यतया वही प्राय. वर्तमानमें रस निर्माणमें प्रयुक्त होता है। विशेष शुद्धिके लिये पारेको घृतकुमारी रस-त्रिफला के क्वाथ और चित्रकमूलके क्वाथमें तथा अन्य औषधियोके रसमें खरल किया जाता है।

अष्टसंस्कारित पारद—स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियमन तथा दीपन इन ८ संस्कारोंसे संस्कृत पारदको अष्टसंस्कारित संज्ञा दी है। इनकी क्रिया विधि भिन्न भिन्न रस ग्रन्थोमें स्थान भेद, काल भेद, शिक्षाभेद, अनुभव भेद आदि कारणोंसे अलग अलग प्रकारसे प्रदर्शितकी हुई है। मैंने जो संस्कार जैसे किये हैं उन विधियोंका वर्णन यहांपर अनुभवके आधारपर करता हूँ।

(१) ×स्वेदन—जवाखार, सज्जीक्षार, अम्लवेंत, पञ्चलवण, त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, हीराकसीस तथा कच्ची फिटकरी, इन १७ द्रव्योको बराबर लेकर बांट लें। पारा (जर्मनी की मर्क कम्पनी वाला या हिंगुलाकृष्ट) ४०० तोला तथा ऊपरकी वस्तुओका मिश्रण चूर्ण ५० तोला लें। इसमें नीबूका रस या खट्टी कांजी डाल डालकर एक सप्ताह पर्यन्त घोंटलें। और इस घुटे हुये द्रव्य सहित पारेको उड़दकी दाल, राई आदि द्रव्योसे बनाई हुई अन्धमूपामें बन्द करके उसे चौलड़े कपड़ेमें बांधें। फिर भोजपत्र

×स्वेदनम्

सूतस्य स्वेदनं कार्यं दोलायन्त्रेण वार्तिकैः।
क्षारौ चाम्लेन सहितौ तथा च पटुपञ्चकम्॥
त्रिकटु त्रिफला चैव चित्रकेण समन्विता।
पुष्पकासीससौराष्ट्र्यौ सर्वैरेव तु मर्दयेत॥
औषधानि समांशानि रसादष्टम भागत।
कृत्वाऽन्धमूषां तु तन्मध्ये पारद क्षिपेत्॥
त्रिगुणेन सवस्त्रेण भूर्जपत्रेण वेष्टयेत्।
गुणेन खण्डे काष्ठस्य बध्वा तु रसपोटलीम्॥
लम्बायमानां भाण्डे तु तुषवारिप्रपूरिते।
त्रिदिनं स्वेदयेत् सम्यक स्वेदनं तदुदीरितम्॥

को ऊपर लपेट देवे। या भोजपत्रपर लेपकर उसे कपड़ेकी थैलीमें बन्द करावे और पुनः भोजपत्र लपेटकर धागे से बांधदें। फिर एक घड़ेके आधे भागमें कांजी भरकर चूल्हेपर चढाकर तीन दिन तक स्वेदन करें। पारदकी पोटली कांजीको लगना नहीं चाहिये। एवं कांजी कम होनेपर गरमकी हुई अन्य कांजी सम्हालकर घड़ेमें और मिलादे भूल करके ठण्डी कांजी नहीं मिलानी चाहिए।

(२) + मर्दन संस्कार—ऊपर वाले पारदको सम्हाल पूर्वक निकालकर गर्म कांजीसे धोडालें। काजीको सम्हालपूर्वक थोड़ा समय रहने देवे। पारदका वजन करें। कांजीमें मिल गया हो उसे निकालकर पारदमें मिला देवें: फिर एक बड़ी खरलमें ४०-४० तोला (खरल छोटी हो, तो २०-तोले) पारद और २५ तोले और ऊपर वाला यवक्षारादि चूर्ण मिश्रण डालकर कांजी डालते हुए घोटें। ३ दिन घोटनेपर पारदको निकालकर गर्म कांजीसे धोलें।

सूचना—

(१) कांजी ३-३ घन्टेमें वदलते रहना चाहिए।

(२) चूर्ण मिश्रण प्रतिदिन नया लेना चाहिये।

(३) एक साथ इकट्ठा ४०० तोला पारद मर्दनके लिये न लेकर १० बारमें पूरा मर्दन संस्कार करना चाहिये।

(४) प्रत्येक संस्कारके बाद पारेका वजन करके दैनिक नोंध वही (डायरी) में लिखते रहना चाहिये।

(५) प्रत्येक संस्कारके पश्चात् पारदको गर्म कांजी से धो लेना चाहिये।

(६) हर संस्कार हो जानेके बाद पारेको मोलड़े कपड़े या फलालेनके कपड़ेसे छानकर ५ तो. या कम ज्यादा पारद एक स्वच्छ श्वेत शीशी में भरकर प्रति संस्कारका नाम लिखकर निर्णयार्थ पृथक रख लेना चाहिए।

(३) ❀मूर्च्छन संस्कार—सज्जीक्षार, जवाखार तथा पांचो लवण, प्रत्येक (८ द्रव्य) पारदसे आठवां भाग लें (पारद ४०० तोला तो प्रत्येकका चूर्ण ५०-५० तोला लें।)

इनको खरलमें एकत्र पारदके सहित डाल कर मिलावें। फिर नींबू, जम्भीरीका रस और बिजोरे नींबू का रस डाल डाल कर ३ दिन तक घोटे। रस कम हो जाने पर और रस डालते रहें। जब तक पारद की प्रतीति (गोलियां बनना और पृथक् होना) नष्ट न हो जाय, तब तक मर्दन करते रहें। इसे मूर्च्छन संस्कार संज्ञा दी है।

(४) + उत्थापन संस्कार:—उक्त संस्कारित पारद को पहले ३ दिन (अहोरात्र) कांजी भरकर दोलायन्त्र से वाष्प स्वेदित करनेके उपरांत १ दिन पत्थरकी खरल मे सूर्यकी तेज धूपमें घुटवाना चाहिये। इसके करने से पारदकी मूर्च्छावस्था दूर होती है। पारदका विशेषांश पृथक हो जाता है। जो क्षारादिके साथ रहा हो, उसे डमरूयन्त्रसे उड़ा लेवें।

पातन संस्कार—१. ऊर्ध्व पातन, २. अधःपातन तथा तिर्यक्पातन।

+ मर्दनम्—

स्वेदनोद्दिष्टभैषज्यैर्मर्दयेत् काञ्जिकैस्त्र्यहम्।
वह्निर्मलविनाशाय रसराजं तु निश्चितम्।
उष्णकाञ्जिकतोयेन क्षालयेत्तदनन्तरम्॥

❀ मूर्च्छनम्—

स्वर्जिका यावशूकश्च तथा च पटुपञ्चकम्।
अम्लौषधानि सर्वाणि सूतेन सह मर्दयेत्॥
खल्वे दिनत्रयं तावद्यावन्नष्टत्वमाप्नुयात्॥

+ उत्थापनम्—

दोलायन्त्रे ततः स्वेद्यः पूर्ववद् दिवसत्रयम्।
सूर्यातपे मर्दितोऽसौ दिनमेकं शिलातले।
उत्थापनं भवेत् सम्यक् मूर्च्छा दोष विनाशनम्॥

† ऊर्ध्वपातन—पारदमें तिहाई भाग शुद्ध ताम्रका चूर्ण मिला (पारदसे १६ वां या २० वां हिस्सा नौसादर या सैंधानमक मिला) लोहकी खरलमें डालकर १-२ घन्टे नीबूका रस मिला मिलाकर खरलकर, गोला बनावें। फिर १ सप्ताह घड़ेमें रखदें पश्चात् डमरूयन्त्रसे उड़ालें। नीचे ताम्र भस्मके साथ कुछ पारद रह जाता है। अतः दूसरी बार भी उड़ा लेनेका प्रयत्न करें।

॥ अधःपातन—त्रिफला, चित्रकमूल, नमक, सिंजुड़की हुई राई और सुहिंजनेके बीज (या सुहिंजनकी छाल) इन ७ द्रव्योंको समभाग मिलाकर पारेसे समान (किसीके मतमें आधा) लें। इनके सहित पारेको अम्ल कांजी, नीबू या घी गंवारके रसमें घोटकर, मिट्टीके घड़ोंसे बने हुये डमरूयन्त्रके ऊपरके घड़ेके भीतर लेप करदें। फिर सन्धिलेप दृढ करदें। लेप वाले घड़ेको ऊपर रखें और खाली घड़ेको जमीनमें दबावें। ऊपर वाले घड़ेका भी करीब ½ हिस्सा जमीनमें दबादें। नीचेके घड़ेके भीतर जल भरें एवं घड़ेके नीचे जमीनमें शीतल जल पहुँचता रहे तथा उष्णजल बाहर निकलता रहे इसके लिये २ बांसकी २ हाथकी नली लें। पहले नलीका मुख नीचेके घड़ेके नीचे जल पहुँचता रहेगा। दूसरी नली द्वारा गरम गरम जल जमीनके निम्न और गढ़ेमें गिरता रहेगा ऐसी योजना करें। फिर डमरूयन्त्रपर कड़ाही आंच लगावें। १२ घन्टे तक मध्यमाग्नि देनेसे पारद नीचे आ जाता है।

ऊपर अधःपातन संस्कार दिया है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद प्रकाश कारने मतान्तरकी दूसरी विधि निम्नानुसार दी है, वह विशेष सरलकी है। अतः यहां उसे भी दी है.—

नवनीताभ्रकं सूतं घृष्ट्वा जम्भाम्भसा दिनम्।
वानरी शिग्रु चित्रैश्च लवणासुरिका चूर्ण. ॥
(नष्ट पिष्टं रसं कृत्वा० इत्यादि पूर्ववत्.)

धान्याभ्रककी अर्थमुक्त भस्म बनाकर (या धान्याभ्रकको ही लेना हो, तो कच्ची इमलीके फलोंके रसकी २१ भावना देकर) उसके साथ पारदको खरल करें। भस्म लेवें, चतुर्थांश या अष्टमांश लें। धान्याभ्रक लेवें तो समान लें। फिर उसमें कौंचबीज, सहेंजनाके बीज, चित्रकमूल, सैंधानमक और छिलके दूरकी हुई राई, इन सबको अष्टमांश मिला नीबूके रसके साथ या अम्ल कांजीके साथ ३ दिन तक खरल करें। फिर डमरू यन्त्रके ऊपरके घड़ेके भीतर लेप कर, निम्न घड़ेके भीतर जल भर उपर्युक्त विधि अनुसार पारदका अधःपातन संस्कार करें।

पहले ऊर्ध्वपातन संस्कार करनेके समय ताम्रके साथ पारद मिला गोली बनाकर सप्ताह तक पड़ा रखनेसे ताम्रमेंसे विद्युच्छक्ति आकर्षित होती है। फिर अभ्रक भस्मके साथ मर्दन कर पिण्ड बना एक सप्ताह रख देनेपर अभ्रकस्थ विद्युच्छक्ति और लोह द्रव्य पारदमें आकर्षित होकर मिल जाते हैं। फिर अधःपातन संस्कार करें। तत्पश्चात् पारदका शोधन संस्कार और नियमन संस्कार करनेपर पारदकी चञ्चलताका ह्रास हो गया है, यह सब कोई जान सकते हैं।

तिर्यक् पातन—

घटे रसं विनिक्षिप्य सजलं घटमन्यकम्।
तिर्यङ्मुखं द्वयो कृत्वा समुख रोधयेत् सुधी ॥
चुल्ल्या तथैव संस्थाप्य घरनतस्तु ततो भिषक्।
रसाधो ज्वालयेदग्निं यावत् सूतो जलं विशेत् ॥

---

† ऊर्ध्वपातनम्—

भागास्त्रयो रसस्याऽर्कचूर्णस्यैकोऽथ निम्बुके।
एतत्संमर्दयेत्तावद्यावदायाति पिण्डताम् ॥
तत्पिण्डं तलभाण्डस्थमूर्ध्वभाण्डे जलं क्षिपेत्।
कृत्वाऽऽलवालं केनापि दत्वा चार्द्र हि लोतकम् ॥
समुद्भूयाग्निमधस्तस्य चतुर्यामं प्रबाधयेत्।
युक्त्योर्ध्वे भाण्डसंलग्नं गृह्णीयात् पारदं ततः ॥

॥ अधःपातनम्—

त्रिफला शिग्रुचित्रैश्च लवणासुरिकायुतं।
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्ध्वभाण्डके ॥
ऊर्ध्वभाण्डोदरं लिप्त्वा ह्यधोभाण्डे जलं क्षिपेत्।
सन्धिलेपं द्वयोः कृत्वा तद्यन्त्रं भुवि पूरयेत् ॥
उपरिष्टात्पुटे दत्ते जले पतति पारदः।
अधः पातनमित्युक्तं सिद्धाद्यैः सूतकर्मणि ॥

इमरू यन्त्रमें नीचे संधि बन्द होती है। तिर्यक् पातनमें घड़ेके ऊर्ध्व भागमें मनुष्योंके उदर और शिर के समान २ घड़े बनावे। शिरका भाग ऊपरसे बन्द रखावें। पार्श्व भागको कुछ लम्बे रखे और दोनोंके शिरपर आर्द्रवस्त्र रखनेकी योजना हो सकेगी। ऐसे एक घड़ेमें विशुद्ध पारदको नीबूके रसमें १२ घण्टे खरल करके सुखाकर भर देवे फिर दृढ संधि बन्धन करे। बाजूके गड्ढेके भीतर जल भरे। एवं जल पूरित बाल्टीमें रखें। बाल्टीको किसी पाटेपर रखे। बाल्टी में शीतल जल आता जाय और उष्ण जल निकलता रहे। इस तरह योजना करें।

पारद वाला घडा चूल्हेपर रहेगा। चुल्हेकी अग्नि उस तरह की होगी कि ठीक घड़ेके नीचे मध्यम प्रमाण में लगती रहे। घड़ेके पार्श्व भागोंमें चारों और बाहर न निकले। योजना ठीक होगी, तो मात्र ३-४ घण्टेमें सब पारद दूसरे जल भरे हुए घडेमें आजायगा। फिर अग्नि बन्द करे। यन्त्र स्वाङ्ग शीतल होनेपर खोले।

पारद शेष रह गया हो, तो पुन: उसी तरह पातन करा लें।

द्वितीय तिर्यक् पातन विधि—+ रस प्रकाश सुधाकरमें एक अति विशेष विधि तिर्यक क्रियार्थ दी है उसे भी यहां देते हैं। जो रसविद् उसका प्रयोग करना चाहें, सुखसे कर सकेंगे। इस प्रकारकी विधिमें पारदमें गुणाधान अधिकतर होता है। पारद नष्ट भी अधिक हो जानेके हेतुसे हमने उसे प्रधानता नहीं दी है।

यवक्षार, सज्जीखार, हींग (कनिष्ठ जातिकी कम गिरिज़ल) तथा पञ्चलवणक ये ८ द्रव्य समभाग मिला-कर मर्दन करे। इन द्रव्योंका संमिलित वजन पारदसे

+ क्षारद्वयं रामठं च तथा हि पटुपञ्चकम्।
अम्लवर्गेण संयुक्तं सूतं तैस्तु विमर्दयेत्॥
तिर्यक् घटे रसं क्षिप्त्वा तन्मुखे ह्यपरो घटः।
कनीयानुदरे छिद्रं छिद्रे चायसनालिकाम्॥
नालिका जलपात्रस्थां कारयेच्च भिषग्वरः।
अधस्ताद् रसयन्त्रस्य तीव्राग्निं ज्वालयेद् बुधः॥
यामत्रितय पर्यन्तं तिर्यक् पातो भवेद् रसः॥

आधा लेवे। फिर नीबूका रस डालकर पारदके साथ मर्दन करके एक जीव करके बनाकर एक घड़ेके पेटेम भीतरकी और ठीक बीचमें लेप कर देवे। फिर उसे सूर्यके तापमें सुखा देवे।

ऊपरका घडा उस तरहका रखें कि जो ऊपर शिर रहे वह बन्द हो, यह ढक्कन लगा बन्द करे। जिस तरह नलिका यन्त्रके ऊपर ढक्कन होता है, उस तरहके शिरके भीतर एक गोल नलिकाके सम परिमाणका छिद्र रखें। फिर उस छिद्र (शिर) के भीतर एक लोहेकी नलिका दृढ बैठावे। यह सम्हाले कि नलिका मिट्टीकी दीवारके भीतर बाहर निकलती न रहें। ठीक दीवार तक ही सीमित रहे। उस छिद्र पर नलिका के चारो ओर दृढ मुख मुद्रा करे। फिर उस घडेको चूल्हे पर चढ़ावें।

उस नलिकाका दूसरा सिरा दूसरे शिर स्थानमें सम छिद्र वाले घड़ेकी दीवारमें सम्हाल पूर्वक बैठावें, इस घड़ेमें जल भरे। लोह नलिका दीवारसे कुछ एकाध अंगुल बाहर निकली हुई रखें। नलिकाका यह मुख कुछ मुडा हुआ भी रखें। जिससे पारदकी बाष्पको निम्न ओर गति करनेका स्वाभाविक वेग मिल जाय। इस तरह बाष्प जलमें गिरती रहेगी।

यह घड़ा एक जल भरी हुई बड़ी बाल्टीके भीतर रखे। बाल्टीमें शीतल जल आता रहे और उष्ण जल नियमित निकलता रहे, वैसा नल लगाकर यथोचित योजना करें। यह बाल्टी भी पाटेपर रखें।

योजना यन्त्र रखनेका ठीक प्रबन्ध हो जानेपर चुल्हे के भीतर अग्नि जलावे। अग्निकी ज्वाला घड़ेके पार्श्व भागमें निकल कर न लगती रहे, यह सम्हालना चाहिए। अन्यथा दूसरे घड़ेके पार्श्वभागको अग्निकी उष्णता कुछ कुछ पहुँचती रहेगी जो अन्तराय करेगी।

अग्नि ३ प्रहर सामान्यतः तीव्र देनी पड़ती है। हींग दृढ रूपसे पारदको पकड़ती है। अतः शीघ्र उड़ने नहीं देती। अग्नि कम न हो, यह सम्हालें। ९ १० घण्टे हो जानेपर अग्नि बन्द करें। यन्त्रको स्वाङ्ग शीतल होने देवें।

यन्त्रके भीतर अधिक पारद हो और हींगादि चूर्ण रूप न हो गये हो तो पुनः पातन करा लेवें। हींगादि चूर्ण भस्म सदृश हो गया हो और पारद रह गया हो, तो गोबर मिला सुखा फिर नलिका यन्त्रमें भर कर पारद उड़ा लेवें।

इस प्रकारसे संस्कार करनेमें गुणाधान अधिक होता है। पारद अधिक उड़ जाता है ऐसा जानकर आधुनिक विद्वानोंने लोहेका यन्त्र बनाया है। पारद की बोतलें जो विदेशसे आती हैं वैसी २ बोतल लेकर ऊपर लम्बी लोह नलिका लगाकर यन्त्र बनाते हैं दूसरी बोतल निम्न ओर रहती है। नलिका ठीक तिर्यक् रखते है। इसमें पारद बिलकुल बरबाद नहीं होता। लगभग पूरा पूरा मिल जाता है; चेतना शक्ति जो वनौषध और प्राणिज द्रव्यसे मिली है, वह लोहे की बोतल आकर्षित करके अग्निको दे देता है। एवं खनिज द्रव्योंकी विद्युच्छक्ति जो मिली है, वह भी इसी तरह नष्ट हो जाती है। इसी हेतुसे यह नव्य विद्वानोंकी विधि हमें अरुचिकर भासती है। जिनका ध्येय पारद संरक्षण करना ही मुख्य है, गुणाधानको गौण मानते हो, उनके लिए यह विधि अनुकरणीय मानी जायगी।

(६) रोधन :—उपर्युक्त यन्त्र स्वाङ्ग शीतल होने पर पारदको निकाल गर्म कांजीसे धो डाले। × फिर ३ सेर (१९२ तोले) जल (या कांजी) में ४० तोले सैंधानमक मिलाकर घड़ेमें भरें। उसमें पारा डाल, ढक्कन लगा, मुख मुद्राकर निर्वात स्थानमें एकांतमें (या भूगर्भमें) ३ दिन (या ७ दिन) तक पड़ा रहने देवें फिर पारदको निकाल गरम कांजीसे धो लेने पर पारद का रोधन संस्कार हो जाता है अर्थात् उसका बोधन होता है।

(७) नियमन—* उपर्युक्त पारदको पुनः ४० तोले सैंधानमकके साथ १ दिन तक कांजी मिलाकर मर्दन करावें। फिर चौलड़ कपड़ेकी थैलीमें भर देवें। उसे दौलायन्त्रके भीतर लटकाकर ३ अहोरात्र तक वाष्प स्वेदन करानेसे वह वीर्यवान बनता है। एवं चपलताका ह्रास होता है। फिर यन्त्र स्वाङ्ग शीतल होने पर निकाल उष्ण कांजीसे धो डाले।

(८) सदीपन ×—उपर्युक्त पारदके साथ कासीस, छिलके रहित राई, पञ्च लवण, काली मिर्च, ये ८ औषधियां एक एक भाग तथा सुहिंजनेके बीज २ भाग या जंगल और बागके दोनों प्रकारके सहिंजनेके बीज १-१ भाग तथा टंकण १ भाग मिलाकर पारदसे आधा वजन में (या सब पारदके १६-१६ वां हिस्सा) मिलाकर खरल में मर्दन करें। उसके साथ नीबूका रस मिलाकर ३ दिन घोटें। फिर चौलड़ कपड़ेकी थैलीमें भर दौलायन्त्रके भीतर लटकाकर ३ अहोरात्र तक बाष्प स्वेदन करावें कांजी जैसे जैसे कम होती जाय, वैसे वैसे बार बार गर्म कांजी मिलाते जाय। थैलीको कांजी न लगे, यह सम्हालें। ३ दिन बाद अग्नि देना बन्द करें। यन्त्र स्वाङ्ग शीतल होनेपर पारदको निकालकर गर्म कांजी से सम्हाल पूर्वक धो डालें।

सदीपन संस्कार पूरा होनेपर किये हुए संशोधनके साथ संमिलित गुणाधान संस्कारोंको पारदके अणु-अणुमें पहुँचानेके लिए अनुवासन संस्कार कई आचार्योंने करनेका विधान किया है। जो पारदको सबल बनानेमें अत्युपयोगी है। इस हेतुसे उसेभी यहां दिया जाता है—

× सिन्धूद्भव दशपलं जलप्रस्थत्रयं तथा।
धारयेद् घटमध्ये च पारदं दोषवर्जितम्॥
विधानेन यथा सम्यक् मुद्रित मृत्स्नया खलु॥
निवाते निर्जने देशे धारयेद्दिवसत्रयम्।
अनेनैव प्रकारेण रोधनं कुरु वैद्यराट्॥

* जलसैन्धवसंयुक्तो घटस्थो हि रसोत्तमः।
दिनत्रयं स्वेदितश्च वीर्यवानपि जायते॥

× संदीपनम्—
कासीस राजिका पञ्च लवणं मरिचानि च।
द्विशिग्रु बीजसंयुक्त टङ्कणेन समन्वितम्॥
आलोड्य काञ्जिके दौलायन्त्रे पाच्यो दिनैस्त्रिभिः।
दीपनं जायते तस्य रसराजस्य चोत्तमम्॥

गुणाधानसंस्काराः ।

उपर्युक्त शोधन सह गुणाधान संस्कार सब पूर्ण होनेपर पारदमें दिव्य शक्ति लानेके लिए आगे गुणाधान संस्कार करनेका विधान आचार्योंने किया है। गुणाधान संस्कार प्रारम्भ करनेके पहले प्राचीन आचार्य कथित पद्धति अनुसार पहले गन्धक जारण कराते थे।

षड्गुण या अधिकगुण गन्धकका यथा विधि जारण किये विना धातुजारण करनेका आचार्योंने निषेध कियाहै। इस सम्बन्धमें स्पष्ट लिखा है कि—

विना गन्धेन ये मर्त्याः कुरुते धातु जारणाः।
न क्षुधा जायते सूते जारयन्ति न धातवः॥

गन्धकका जारण किये विना जो मनुष्य धातुओं का जारण करने लगते हैं। उनको सफलता नहीं मिलती। कारण पारदको क्षुधा नहीं लगती। अन्य धातुओंके सत्वांशको, आकर्षित नहीं कर सकता न पचन कर सकता है।

‡ अनुवासन—उपर्युक्त पारदके साथ कालीमिर्च, छिलके रहित राई, सैंधानमक, चित्रकमूल और हिंगु, इन ५ औषधियोंको समभाग मिला कूट चूर्णकर पारद से चतुर्थांश मिला नींबूका रस डाल डालकर २० दिन (२१ दिन) तक फिर उसे गर्म काञ्जीसे धो देनेपर शोधन संस्कार सब पूरे होते हैं और अग्निके सदृश धातुओंको खानेकी शक्तिवाला बुभुक्षित बन जाता है।

गन्धक जारण करनेके पहले उसे विशुद्ध और तेजस्वी बना लिया जाता है। इसलिए गन्धकको पहले घीके साथ मिला रमकर तुरन्त दूधमें डालदिया जाता है। इस तरह ७ बार बुझाया जाता है। फिर घीके साथ मिला पिघला पिघलाकर २१ या ५१ या १०० बार प्याजके रसमें बुझाया जाता है।

सूचना—A. गन्धक रस होते ही जल्दी दूध या रसमेंडाल देवे। देर होनेपर गन्धकका सत्वांश जलने लगता है अतः सम्हाल पूर्वक संस्कृत करें।

B. गन्धक जलकर लाल होने लगे तो आगे बुझावा बन्द करें।

C. घी, दूध प्याजका रस बार बार नया लिया जाय तो अच्छा।

D. गन्धक १०० तोलेका रस किया जाता है। तो १५ तोले घीसे कार्य चल सकेगा। ४० तोले या कम गन्धक हो तो चतुर्थांश घृत लिया जाता है।

E. दूध और प्याजका रस अच्छी तरह गन्धक डूब जाय, ऊपर दो अंगुल दूध या प्याजका रस रहे उतना भरें।

F. रस करनेकी कढाही मोटी लें, पतली होनेपर जलनेका भय अधिक रहता है।

G. गन्धकको बुझानेका पात्र कम चौड़ा और अधिक ऊंचा रखें। पतला रखें जिससे जल्दी शीतल होने लगें।

H. बुझावा देनेके १५-२० मिनट बाद दूध या प्याजका रस निकालें। जिससे गन्धक स्निग्धता या उग्रताका यथोचित आकर्षण कर सके।

I. बुझावा देना बन्द करनेपर गन्धकको खरलमें घोंट [illegible]उबलते जलसे या काञ्जीसे धो देवें। ४-६ बार धोनेसे गन्धकको लगा हुआ घृतका अंश निकल जायगा।

गन्धकका जारण बहिर्धूम, अन्तर्धूम और निर्धूम (गन्धकके तैलके साथ या बाष्प द्वारा) भेदसे विविध प्रकारका है। बहिर्धूमसे अन्तर्धूम जारणसे विशेष लाभ मिलता और निर्धूम विधिसे विशेषतर लाभ मिलता है।

१. बहिर्धूम जारण विधि—बाहर धुआ निकले

---

‡ अनुवासनम्—

सद्व्यनिम्बूफलतोयघृष्टो रसो भवेद् वह्निसमप्रभावः।
सव्योष राजीलवणः सचित्रः सरामठो विंशति वासराणि॥

इस तरह नलिका डमरू यन्त्र कपड़ मिट्टीकी हुई अग्नि स्थायी कांच कूपी (Flask) द्वारा वालुका यन्त्रमें और मिट्टीके सराव आदिमें कराया जाता है।

१. अन्तर्धूम जारण विधि-यन्त्रका मुंह बन्द रखकर जारण करना यह जारण गौरीयन्त्र तथा कपड़ मिट्टीकी हुई कांच कूपी, कच्छप यन्त्र आदिमें अति मंद-मंद अग्नि देकर कराया जाता है। धुआं बाहर न निकले, यन्त्र अधिक उष्ण न हो जाय इस तरह सम्हालपूर्वक संस्कार करें। गौरीयन्त्र और कच्छपयन्त्रमें जारण करावें, तो पारद और गन्धक मात्र १०-१० तोला लिया जाता है। कांच कूपी या डमरू यन्त्रमें करना हो तो ४०-४० तोले तक लिया जाता है।

२. निर्धूम जारण विधि—जिसमें गन्धकके धुएं की उत्पत्ति ही न हो। यह जारण विशेषतः गन्धक तैलके साथ किया है अथवा बाष्प देकर किया जाता है। बाष्प देनेकी विधिमें नौसादर सैंधानमक या बिड़ यथा विधि मिलाना पड़ता है।

इनमेंसे आवश्यकता अनुसार और अनुकूल हो उस तरह गन्धकका जारण एक गुण, द्विगुण, षड्गुण षोडश गुण करें। तत्पश्चात् मुख करणार्थ (समुख बनानेके लिए) सुवर्णके ग्रास देकर या निर्मुख पारद को अभ्रक सत्वके ६ ग्रास देनेके पश्चात् सुवर्ण जारण करावें। आवश्यकता भेदसे ये २ मार्ग हुए हैं।

निर्मुख चारणके लिए रसहृदयतन्त्रमें कहा है कि—
अभ्रक जारण मादौ गर्भद्रुति चारणं च हे[illegible]ते।
यो जानाति न वादी वृथैव सोऽर्थक्षयं कुरुते ॥

प्रारम्भमें अभ्रकका यथा विधि चारण कराया है, फिर गर्भ द्रुति और जारण करा। (पञ्चषट्ग्रास देकर अन्तमें सुवर्णका जारण कराया जाता है।

समुख जारणार्थ आचार्योंने कहा है कि—
गन्धक जारणमादौ कुर्यादथ जारणं सुवर्णस्य।
जलधरसत्वस्य ततो जारणमथ सर्वलोहानाम् ॥

पहले गन्धकका जारण करें। फिर सुवर्ण का तत्पश्चात् अभ्रक सत्व और अन्य धातुओंका यथा विधि जारण करे। रसायनवाद और धातुवाद दोनोंमें यह प्रकार अनुकूल रहता है। अतः इसका पहले वर्णन किया जाता है।

सुवर्ण जारण:—यदि सुवर्णका जारण कराना हो, तो सुवर्णकी भस्म अर्ध मृत बनायी जाती है, यह भस्म सुवर्ण माक्षिक सत्वके योगसे बनानेकी आज्ञा की है। अथवा बार बार सुवर्ण भस्मके साथ समभाग सुवर्ण माक्षिक सत्व मिला यथा विधि चारण, गर्भद्रुति और जारण कराया जाता है। जारणार्थ विशेष प्रकारके बिड़ भी मिलाना ही पड़ता है। बार बार गन्धक जारण भी किया जाता है। इस तरह जो रसेन्द्र तैयार होता है, वह रसायन कार्यके लिए व्यवहृत होनेके अतिरिक्त धातुवादके लिए तारारिष्टके पत्रोंपर लेप करनेमें भी उपयोगी होता है। इसके लिए रसहृदय-तन्त्रके पञ्चम अवबोधका मनन करें।

कई आचार्य पहले सुवर्णका ग्रास पारदको अठारवें हिस्सेका देते हैं। साथमें सुवर्ण माक्षिक सत्व मिलाते हैं। नीचे ऊपर अष्टमांश अष्टमांश हेम जारण योग्य बिड रखते है। फिर यथाविधि दोलायन्त्रमें काञ्जी भर कर बाष्प स्वेदन कराते हैं। ये दो ग्रास देनेपर ही पारद बुभुक्षित हो जानेका लिखते हैं। सुवर्णके २ ग्रास देकर पुनः गन्धकके षट्गुण या १० गुण जारण करा लिया जाय, तो आगे अभ्रक जारण आदि क्रिया सरल तर हो जाती है।

अभ्रक चारण और जारण:—तत्पश्चात् अभ्रक के ५-६ ग्रास देकर चारण, गर्भद्रुति, जारण कराते हैं। ग्रास उतना ही देना चाहिए कि जो पचन हो सके। अधिक ग्रास देनेपर अपचन हो जानेकी भीति है। इस सम्बन्धमें पहला ग्रास ६४ वें हिस्सेका दिया जाता है। अभ्रक सत्वको भी भस्म रूप बना ली जाती है तथा सुवर्ण माक्षिक सत्व भस्मको साथमें मिलाई जाती है। फिर अम्ल काञ्जीमें या निम्बूके रसमें या कच्ची इमली के रसमें क्षार मिलाकर ३ दिनतक मर्दन कराया जाता है।

फिर नीचे ऊपर अभ्रक जारण करा सके वैसा बिड नीचे ऊपर अष्टमांश अष्टमांश सब यथा विधि दौला-यन्त्रमें पाचन कराया जाता है।

दूसरा ग्रास महर्षि गोविन्द पादाचार्यजीने ४० वें हिस्सेका, तीसरा ३० वें हिस्सेका चौथा २० वें हिस्सेका और पाञ्चवा सोलवें हिस्सेका देनेका विधान किया है। अन्य आचार्योंने ३२ वां, १६ वां और अष्टमांश, इस तरह ४ ग्रास तक विधान किया है।

पहले ४ ग्रास दौलायन्त्रमें ही जारण कराया जाता है। तत्पश्चात् कच्छप यन्त्रका आश्रय लिया जाता है। इस सम्बन्धमें रसार्णवकारने कहा है कि:—

क्रमेणानेन दोलायां चार्यं ग्रास चतुष्टयम्।
ततः कच्छप यन्त्रेण ज्वालनं बन्धनं क्रमात ॥

ऊपर जो ग्रासदर्शाया तथा विधि कही उस तरह बिड़ मिला मिला कर ४ ग्रासका चारण करावें। फिर जार-णादि क्रियार्थ कच्छप यन्त्र की सहायता लें। इससे गर्भद्रुति हुआ ग्रास जारण होगा और पारद बद्ध होता जायगा अभ्रक जारणके पश्चात भी गन्धक जारण किया जाय, तो अधिक हितावह है। पारद अधिक तेजस्वी होता जाता है।

अभ्रक सत्व ग्रास दान नव्य विधिः—षड्गुण या अधिक गुण गन्धक जीर्ण पारदको एक लोहेकी खरलमें डाल उसके साथ अभ्रक सत्व भस्म चतुर्थांश तथा सुवर्ण माक्षिक सत्व भस्म चतुर्थांश मिलाकर मर्दन करें। एक जीव होनेपर अग्निपर चढावें। खरल में काञ्जी मिला मिलाकर घोटते रहें। इस तरह ४ प्रहर तक रोज घोटे। इस तरह २१ दिनतक खरल करें। रोज सैंधा नमक और नौसादर १६-१६ वां हिस्सा *मिलाते जायें। ३ सप्ताह हो जानेपर अग्नि देना बन्द* करें। फिर पारदको खरल कर शुष्क बना लेवें। फिर उसमें गरम काञ्जी मिलाकर धो लेवें। काञ्जीके भीतर रह जाय, उसे भी सम्हालकर निकाल लेवे। पश्चात् गन्धक जारण करा लेवें।

ततपश्चात् पुनः अभ्रक सत्व भस्म और सुवर्ण माक्षिक सत्व भस्म मिलाकर उपर्युक्त विधिसे ग्रास देकर जीर्ण करावें। इस तरह पारदपर अभ्रक सत्वका जारण ३.४ बार करनेपर पारद मक्खन सदृश बद्ध हो जाता है। जो तीव्राग्नि देनेपर भी नहीं उड़ सकता।

इसके आगेके संस्कार कल्याण रसायन शालामें नहीं कराये गये हैं। अतः उनका वर्णन यहांपर नहीं किया गया है। इतिशम् ॥

(शेष पृष्ठ ६०४ का)

इनमेंसे जितने मूत्र, मिलें उतने भरकर स्वेदन करावे। इस विधिसे क्रमश ३-३ दिनसे ग्रास जीर्ण करावे। ग्रास जीर्ण हुआ है या नहीं यह निम्न रीतिसे परीक्षा करनेपर विदित हो जायगा।

३ दिन होजानेपर भोजपत्र परसे मिट्टीके पात्रमें डाले। उसे निवायी कांजीसे धोकर साफ करें। फिर शेष मलको दूर करनेके लिए कण्डेसे छान लेवें। पारदको फिर निवाये मिट्टीके पात्रमें डालकर थोड़ा मर्दन करे। जिससे आर्द्रता दूर हो जायगी फिर चौलड़ वस्त्रमे छानकर पारदको शुद्ध करे। वस्त्रपर कुछ भी शेष न रहे, तो समझना चाहिए कि ग्रास जीर्ण हो गया है।

ग्रास जीर्ण हो गया हो, तो पुन' और ग्रास देवें। जीर्ण न हुआ हो, तो उसमें बिड़ मिला कर अम्ल द्रव्यके साथ मर्दन करावें। फिर दौलायन्त्रमें रखें। एव गोमूत्रको ५ बाष्प एक अहोरात्र देकर पचन करावें। इस तरह ग्रास जीर्ण हो जानेपर नूतन ग्रास देवे। दौलायन्त्रमें ही चार ग्रास जीर्ण हो जाते हैं। फिर आगे कच्छप यन्त्रका उपयोग करें। यह ऊपर कह दिया है।

खोट जारणार्थ बिड बटी:—क्वचित् यह जारण क्रिया पारदका खोट बनानेके पश्चात् की जाती है। तब उसके लिए बिड़ उपर्युक्त सफल कार्य नहीं करता। निम्न बिड़ वटीका उपयोग करनेका आयुर्वेद प्रकाशकारने दर्शाया है।

खोटकं स्वर्णमंतुल्यं समावर्त्यं तु कारयेत्।
माक्षिक कान्तपाषाण शिला गन्ध सम समम्॥
भूनागैर्मर्दयेद्यामं वल्लमात्र वटी कृतम्।
एषा बिड़वटी ख्याता योज्या सर्वत्र जारणे॥

खोट (रस) के समान सुवर्ण बीजको मिश्रित करें। फिर सुवर्ण माक्षिक सत्व, कान्त पाषाण सत्व शिला सत्व, गन्धक, इन सबको समभाग मिला भूनाग के साथ ७ घण्टे तक मर्दन करके एक एक वालकी गोलियां बनावें। यह गोली एक एक करके बार बार जब तक सुवर्णका ग्रास जीर्ण न हो जाय तब तक डाले जो पारद वनौषधि या खनिज आदिके साथ विशेष क्रिया द्वारा बांधा गया हो, भस्म, पिष्टी (चूर्ण-रूप या गोली रूप बना लिया हो किन्तु मूषमें डालकर तीव्राग्निपर रखनेपर जिसका क्षय होता हो, उड़ जाता हो, उसे खोट बद्ध पारद संज्ञा दी है। ऐसे कई प्रकार के खोट बनानेके लिए आचार्योंने दर्शाया है। आचार्य कथित विधि अनुसार खोट बनाया हो, उसके लिए ऊपर कही हुई बिड़वटी जारण क्रियामें सहायक होती है।

बिड विधान—रसशास्त्र कथित बीज सामान्यत: २ प्रकारके हैं। पीत और सित, पीत बीज सुवर्ण निर्माणार्थ और सित बीज रौप्य निर्माणार्थ। बीज निर्माण करनेके लिए जो धातु उपधातु व्यवहृत होती है, सबका आचार्य कथित विधिसे आग्रह, पूर्वक शोधन करना पड़ता है। इसका विशेष विवेचन रस-हृदयतन्त्रके नवम अवबोधमें किया है।

जिस तरह परिपक्व वनस्पतिके बीजसे वनस्पति की उत्पत्ति होती है। पशुओसे पशुओंकी, मनुष्योंसे मनुष्यकी, उसी तरह योग्य भूमि तैयार करके परिपक्व बनाते हुए सुवर्ण आदि बीज डाला जायगा, तो सुवर्ण आदि निर्माण हो जायेंगे।

शुद्ध सुवर्णमें १०० बार रसक या कान्त पाषाण सत्व और सस्यक सत्वका निर्वाहण करनेपर सुवर्ण बीज निर्मित होता है। धातुवादके लिए नागाभ्र सत्व १२ समय सुवर्णमें जीर्ण करनेपर प्रतिबीज (हेमबीज) बन जाता है। इसी तरह कई संकर बीज भी शास्त्रमें दर्शाये हैं। फिर उनकी रोपण विधि भी आचार्योंने कही है। इन सब क्रियाओका शब्दोंसे यथोचित बोध नहीं मिल सकेगा, गुरु समक्ष क्रिया करके प्राप्त करना चाहिए।

शास्त्रका अध्ययन किया हो, विधिका परिचय मिल गया हो तो सद्गुरु समक्ष क्रिया करनेपर ज्ञान दृढ़ होता है। फिर संदेह नहीं होता है। अन्यथा क्रिया कालमें कई तर्क उपस्थित होते हैं। इसलिए सामान्य परिचय देनेके लिए इस लेख द्वारा समझानेका प्रयत्न किया है।

इतिशम्

विविध रसायन परिचय—
—और निर्माण विधि

(वक्ता—राजवैद्य शांतिलालजी जोशी)

परमपूज्य श्री स्वामीजी महाराज, परमादरणीय श्री अध्यक्ष महोदय, वैद्य बन्धु और बहने।

जान्हवीकी धवल तरल तरंगके समान जिसकी विचार धाराएं बह रही हैं; आयुर्वेदकी ऋचाएं जिनकी जिह्वापर नृत्य कर रही हैं; गूढ़ ज्ञानकी रेखाएं जिनके कपोल प्रदेशपर स्पष्ट भास रही हैं; उपकार करना यह जिनका कर्तव्य बन रहा है; संसारकी मानसिक और शारीरिक व्याधियोंसे संतप्त मनुष्योंका जो शान्ति स्थान है, वैसे प्रेमकी प्रतिमाके समान हृदयवान्, आर्ष-दृष्टि रखने वाले अनुभवी महानुभाव चिकित्सकोंके समक्ष मैं "रसायन परिचय"का विषय आज सादर सेवामें रखते हुए मेरा थोड़ासा मंतव्य उपस्थित करता हूँ।

विशुद्ध पारदके योगसे रसशास्त्र दर्शित प्रयोग बनाये जाते हैं। शुद्ध पारद हिंगुलोत्थके स्थानपर हिंगुलोत्थ पारदको अष्टसंस्कारित करनेके पश्चात् व्यवहृत किया जायगा तो वह योग विशेषतर फलदायी होता है। यदि अष्ट संस्कारित पारदको षड्गुण गंधक जीर्ण कर लिया जाय तो आशुफल प्रदान करनेकी शक्तिका अनुभव होता है। इस तरह सुवर्ण आदिका जारण किया हुआ पारद लिया जायगा, तो उसमें जारणके अनुरूप उत्तरोत्तर शक्ति बढ जायगी।

कई प्रयोग, नूतन शिथिल मूल वाले आशुकारी रोगहर होते है एवं कई प्रयोग, जीर्ण दृढ मूल वाले रोगोंको दूर करनेके निमित्त कहे हुए हैं। नूतन शिथिल मूल वाले रोगोंपर सामान्य शोधन वाला पारा चल सकता है. किन्तु दृढ मूल वाली जीर्ण व्याधियोंको नष्ट करनेके लिए जितना अधिक शक्तिशाली पारा लिया जायगा उतना ही अधिक यश चिकित्सकको मिल सकेगा।

भारतीय रसशास्त्रके आचार्योंने पारद प्रधान अनेक रस तैयार किये हैं। विभिन्न रोगोके भिन्नभिन्न लक्षण अनुरोधसे, प्रकृति भेदसे, वातादि दोष प्रकोप भेदसे, देशभेदसे, कालभेदसे आदि आदि पृथक् पृथक् दृष्टिसे विचार करके सफल प्रयोगोंकी रचनाकी है। वर्षों तक अनुभव करके ग्रन्थोंके भीतर संकलित करके समाजकी सेवामें समर्पित किये हैं। स्वर्गत आचार्य हरिप्रपन्नजीने प्राप्त रस ग्रन्थोंमेंसे प्रयोगोंका संग्रह करके विशालकाय रसयोग सागर ग्रन्थ दो भाग में प्रकाशित कराया है। उक्त ग्रन्थमें करीब ५००० रस प्रयोग सगृहीत हुए हैं। वह भी यथार्थमें अपूर्ण है। कई प्रयोग उसमें नहीं आये प्राचीन कई पुस्तके अब प्राप्त हुई हैं। कई पुस्तकोंके नाम उपलब्ध हैं तथापि पुस्तक नहीं मिलती। कदाच कालान्तरमें उनमेंसे कुछ ग्रन्थ मिल भी जायं। जो संग्रह वैद्य समाजको मिला है, वह भी काफी है, मननीय है। महदुप-कारक है, मार्गदर्शक है। वह रसशास्त्रके कीर्तिध्वज को संसारके नाश होने तक अचल और उन्नत रखने वाला है।

जितना विशालकाय सग्रह सफल सिद्ध रसप्रयोगो का मिला है, उतने योग (Prisciptions) अन्य किसी चिकित्सामें प्रतीत नहीं होते। वर्तमानके रस चिकि-त्सकोंको जिस प्रकारके जिस गुण धर्मको दर्शाने वाले योग चाहिए उसी प्रकारके कई योग मिल जाते हैं। रईस, धनिक, मध्यमश्रेणी, निर्धन सबके निमित्त योग पृथक् चाहिए, वे भी तैयार हैं। वैरागी, योगी, त्यागी

भोगो, वृद्ध, युवा, कुमार, शिशु, कुमारी, सगर्भा, प्रसूता, छोटी संतानकी माता, सबके निमित्त पहले ही प्राचीन आचार्योंने दया करके अनुभूत श्रेष्ठ संग्रह कर रखा है। वर्तमान वाले चिकित्सकोंको चाहिए, कि उस सम्पत्ति का सदुपयोग करे। यश और धनकी प्राप्ति करे तथा जीवन सुखमय, शान्तिपूर्ण और सदाचारी बनावे।

प्राचीन और अर्वाचीन परीक्षा पद्धति—पाश्चात्य संस्कृतिसे प्रभावित इस युगमें नव्य पद्धतिकी सराहना हो रही है। सर्वत्र उनके अनुयायियोंमें (नास्तिक जड़वादियोंमें) कीर्ति फैल रही है। उसके चमक दमक वाले साधन, नव्य लक्ष्यके अनुरूप परिभाषा और विदेशी भाषा, जिसमें यौगिक शब्दोंकी कमी है, रूढ शब्द नये नये निर्माण करना ही पड़ता है, उसकी शैलीसे भारतीय प्राचीन विज्ञानशास्त्र वर्णित नहीं किया गया है। इसी हेतुसे नव्य कई विचारक भारतीय विज्ञान शास्त्रको नहीं समझ सकते, उचित न्याय नहीं दे सकते। वे सब भारतीय पद्धति को समझनेका प्रयत्न ही नहीं करते। जिस तरह पूरा तत्त्वशोधन ऐतिहासिक दृष्टिसे उस युगकी भाषा सामाजिक स्थिति नीति आदिको लक्ष्यमे रखकर अनुसधान करते हैं, उस तरह पूर्वात्य विज्ञानको समझनेके लिए उनके ध्येय, सेवा भावना, विचारसरणी और परिणामको समझकर, उसमें प्रवेश करे, तो भारतीय विज्ञानकी दिव्यता विदित हो सकेगी।

नव्यविज्ञान प्रकृतिके आश्रित है। प्राचीन विज्ञान चैतन्यके आश्रित है। नव्य विज्ञानविद् भोग विलासके निमित्त और संसारपर अपनी प्रभुताके स्थापनार्थ विनाशके साधनोंकी नूतन उत्पत्तिकी चाहनासे अनुसधान करते हैं। प्राचीन विज्ञान विद् विश्व कल्याणके निमित्त और मुक्तिकी प्राप्तिके लिए अनुसधान करते थे। आधुनिकोंको आधिभौतिक वादी एव प्राचीनोको आधिदैविकवादी कह सकेंगे।

पाश्चात्य विज्ञानविद् अपनी नव्य निर्मित औषधियोंकी परीक्षा छोटे मोटे पशु पक्षी, आदि क्षुद्र जीवों पर करते हैं; भारतीय रसवैज्ञानिक अपने रस द्रव्यों की परीक्षा जडद्रव्य धातु उपधातुओंपर करते थे, फिर मानवदेहपर उपयोग करते थे। किसी जीवकी हिंसा करना नहीं चाहते थे। इसी हेतुसे उनने लिखा है कि "यथा लोहे तथा देहे" जो जड़ कनिष्ठ धातुका रूपान्तर करके उसे सुवर्ण या रत्न रूप बना सके, वह प्रयोग मानव देहको भी दिव्य बना सकती है। औषधि योग्य न बननेपर जड़ अधम धातुको उत्तम नहीं बना सकेगा। इतनेसे परिणाम विदित हो जायगा।

आज समय तेजीसे पलट रहा है। साथ साथ नव्य विज्ञानके इन्द्रियगम्य नूतन आकर्षक चकाचौंध करने वाले अनुसंधानका अधिकाधिक परिचय होता जा रहा है। इसी हेतुसे उनका विवेक चक्षु बन्द हो गया है। उसके साथ भारतीय विज्ञानको कदम मिलाना यह अपने शिरपर कर्तव्य भार आ गया है। किन्तु भारतीय संस्कृतिके आधिदैविक विज्ञानको अपन आधिभौतिक वादके अनुरूप पतित नहीं बना सकेंगे। यथार्थमें भारतीय संस्कृति उत्कर्षको समझाती है। ईश्वरकी ओर ले जाती है, विश्वको शान्तिप्रदान करती है, पूर्व जन्मोके कर्मके फलकी प्राप्ति होनेको मानती है। ईश्वर आत्मा पुनर्जन्मको स्वीकार करता है; आधिभौतिकवाद निरीश्वरवादी है, आत्माको विनाशी मानने वाला, जीव हिंसामें या स्वार्थसिद्धिमें पाप न मानने वाला है। अपने देशके हितके निमित्त दूसरे देशको अन्याय देनेमें अनीति या अधर्म नहीं मानते। इस तरह पौर्वात्य और अनीश्वरवादरूप महत्त्व का अन्तर रहा है।

भारतीय संस्कृति अन्तरके दिव्य अनुभवके आधार से निश्चित हुई है, वह अति उन्नत है। सांस्कृतिक ज्ञान-विज्ञानपूर्ण विचार विनिमय करने और श्रद्धासह मनन, ध्यान आदिका अभ्यास दीर्घकाल पर्यन्त करने के पश्चात् प्राप्त होती है, बाह्य प्रयोगों द्वारा यह विदित नहीं हो सकती। उस ज्ञानको लेकर हमें आगे बढना है, उस भावनाको हम न भूलें या न त्याग देवें।

भूतकालमें मुक्तिकी जिज्ञासा वाले योगीजन दीर्घायु, निरोगी, यौवनपूर्ण, सुदृढ देह, स्फूर्ति, मनकी

अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसधान, सम्मेलनके
संयोजक मंत्रीः—
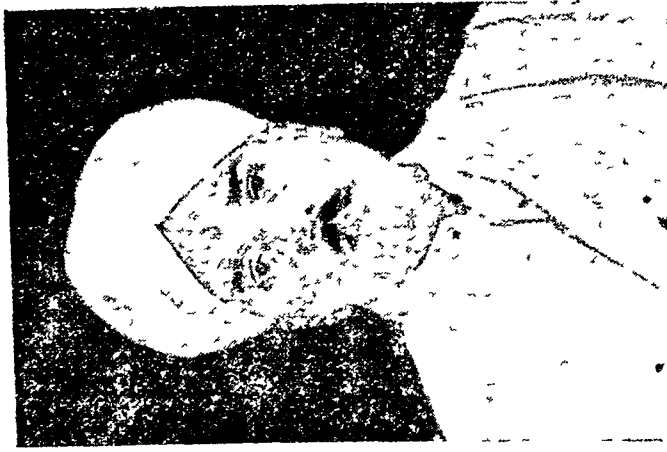
राजवैद्य श्री शांतिलालजी प्राणजीवनजी जोशी,
रसायनाचार्य, कालेड़ा

कृष्ण गोपाल धर्मार्थ चिकित्सालय कालेडाके
प्रधान चिकित्सकः—
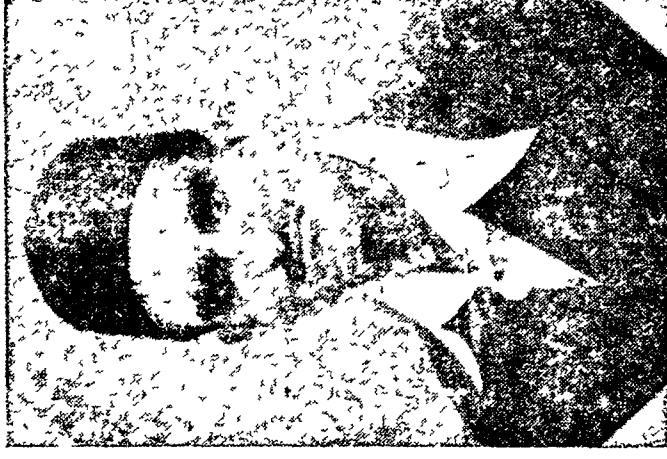
वैद्य बद्रीनारायणजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य,
काव्यतीर्थ, आयुर्वेदरत्न.

--अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसंधान सम्मेलन में--

कार्यकर्ताओ के द्वारा खेले गये "आजका वैद्य" नामक नाटक का दृश्य

बाये मे डॉ० (पुरुषोत्तम), वृद्ध वैद्य (कृष्णकुमार), मत्री (प्यारेलाल) (अन्य बैठे हुये वद्य सभा मण्डल)

--अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन में--

कार्यकर्त्ताओ के द्वारा खेले गये "आजका वैद्य" नाटक मे मनोरंजन दृश्य

एकाग्रता और विरोध करनेपर अधिकार आदि चाहते थे, वैसे ही मुमुक्षुजन इस युगमें भी चाहते हैं। रोग जरावस्था, मानसिक व्यग्रता आदिको दूर करने और दीर्घायु प्रदान करनेकी पूर्ण शक्ति सामान्य वनौषधि, नाग, वङ्ग, लोह, ताम्र, रौप्य और सुवर्ण आदिमें नहीं है। उन सबमें मर्यादित शक्ति हैं। वे उत्तरोत्तर एक दूसरेसे अधिक शक्ति सम्पन्न हैं। सुवर्ण अन्य द्रव्यों की अपेक्षा विशेष काल पर्यन्त शक्तिको स्थिरकर सकता है। फिर भी वह शक्ति भी शनैः शनैः ह्रास होकर नष्ट होती जाती है। इन सबपर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारों भूतोंके विरोधी प्रयोग होनेपर वे क्षीण होकर अदृश्य हो जाती हैं। उनके आश्रयसे रहनेपर देहके भीतर अपकर्ष आता है, पूतिभाव उत्पन्न होता है, देह सड़ने लगता है या जीर्णता पाने लगता है, अन्तमें विनाशको प्राप्त हो जाता है। वे औषध द्रव्य देहस्थ जठराग्नि और विविध धात्वग्नियो की स्थिर भावसे रक्षा नहीं कर सकते। अतः वे सब अजर अमरत्व प्रदान करनेमें असमर्थ हैं। मात्र पारद एक ही दिव्य द्रव्य है, शेष सब उनके समक्ष विलय भावको प्राप्त होने योग्य है। इन सब द्रव्योंके भीतर अवस्थित चेतना शक्तियुक्त विद्युत्का आकर्षण अधिक सरलमें करा लेनेका अन्वेषण करके रसहृदयतन्त्रकार ने लिखा है कि—

काष्ठौषध्यो नागे नागो वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्वे।
शुल्वं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते॥

काष्ठौषधियोंकी जीवनी शक्तिका विलय नाग, वङ्ग आदि सब धातुओंमें हो सकता है। नाग और काष्ठौषधियोंकी जीवनी शक्ति, प्रधान विद्युत् का लय वङ्गमें होता है, वङ्गकी शक्ति ताम्रमें विलीन हो जाती है; ताम्रकी शक्ति रजतमें तथा रजतकी शक्ति और अन्य परम्परागत प्राप्त सबकी शक्ति कनक में विलीन हो जाती है। फिर सुवर्ण उन सबकी संमिलित शक्ति पारदको प्रदान कर देता है। पारद इन सब शक्तियोंको सुरक्षित रखता है। अग्निमें जलने नहीं देता जलसे विनाश नहीं होने देता, वायु उसका शोषण नहीं कर सकता। फिर मानव देह पर प्रयोग होनेपर अपनी शक्ति और सुरक्षित शक्तिका विलय देहके सब अणु अणुमें पारद कर देता है।

प्राचीन आचार्योंने पारदको रस रूप-ब्रह्मरूप माना था। उसमे अचिन्त्य शक्ति निहित है, ऐसा उनने अनुभव किया था। फिर देह पर उसका प्रयोग किस तरह किया जाय, यह दीर्घकाल तक परिश्रम करके निश्चित किया था, फिर इस विद्याका उद्घोष किया। देहको स्थिर अजरामर, और सुदृढ बनाने, मनको निरुद्ध करने, बुद्धिको अधिक तेजस्वी बनाने तथा स्मरण शक्तिको दिव्य बनानेकी विधि विश्वको दी।

प्रारम्भमें पारदको अष्ट संस्कार करके विशुद्ध और विशेष गुण प्रद बनाना पड़ता है। फिर विशेषतर गुण प्रद बनाने वाले बलि (गन्धक) का जारण कराया जाता है। जिस तरह पारदको विशुद्ध बनाया जाता है, उस तरह बलिका शोधन करके उसे भी विशेष संस्कारित बनाया जाता है। इस लिए बलिको घृतमें पिघला कर गोदुग्धमें कई बार बुझानेका विधान रस विदोंने किया है। इस तरह बलिको शुद्ध, स्निग्ध बनाने के पश्चात् विशेष गुणवर्द्धनार्थ कई अनुकूल वनौषधियों की भावना दी जाती है। इस तरह विशुद्ध पारदके साथ यथा विधि विशुद्ध गन्धक मिला मिला षड्गुण या अधिक गुण पर्यन्त जारण कराया जाता है। तत्पश्चात् उस पारदके साथ धातु-उपधातु, तथा काष्ठौषधियों आदिका रासायनिक संयोजन कराकर उपयोग में लिया जाता है। इस तरह पारदमें धातु, उपधातु, प्राणिज द्रव्य और काष्ठौषधियां आदिकी चेतना शक्ति और विद्युत्का ग्रहण और धारण कराया जाता है।

शुद्ध पारदमें शुद्ध बलि मिलाकर खरलीय रस, पर्पटी या कूपीपक्व रसायन बनाया जाता है। यथा विधि रसायनिक योग निर्माण कराया जायगा, तो ही वह योग सहायक औषध द्रव्योंके गुणधर्मके अनुरूप रोगहर और देह सिद्धिके लिए निर्दोष बन सकेगा। फिर मनुष्यकी प्रकृति, वात-पित्त-कफ दोषो की विकृति आदिको जानकर अनुपान भेदसे सेवन कराया जायगा, तो वह निःसंदेह लाभ पहुँचायगा।

रस, रसायन सेवनके हेतु '—मनुष्योंको रोगके शमनार्थ, बल-बुद्धिकी वृद्धि करानेके लिए तथा शरीर के स्वास्थ्यके संरक्षणार्थ रस, रसायन सेवन करनेकी आवश्यकता है। रस प्रयोगके सेवनसे मनुष्य इहलोक में सुकर्म करके अपने जीवनको सफल बना सकता है, पारमार्थिक अर्चन, पूजन, ध्यान आदि कर्म करते हुए जीवन मुक्त हो सकता है। रसौषधियोंका उपयोग विशेषत. रोग विनाशार्थ होता है तथा रसायन सेवन का उपयोग बहुधा स्वास्थ्यको सुदृढ बनाकर पारमार्थिक कल्याणकी प्राप्ति करनेके निमित्त है।

रसायन सेवनके अधिकारी —

निर्लोभी सत्यवक्तारो देवब्राह्मणपूजकाः ।
नमित. पथ्यभोक्तारो योजनीया रसायने ॥

जो मनुष्य लोभ माया विवर्जित हैं, नि.स्वार्थी हैं, सत्यवक्ता और सदाचारी हैं; देव, ब्राह्मण और पूज्यों का अर्चन पूजन करते हैं; यम-नियमोंका पालन करते हैं; पथ्यके अनुकूल भोजन करनेमें ही सतोष मानते हैं, उनकी रसायन सेवनमें योजना करनी चाहिए।

धन लोभी, स्वार्थ परायण, वासना पीड़ित, मिथ्या भाषी, नास्तिक, ब्राह्मण आदिकी निंदा करने वाले, भोग विलासमें रत रहने वाले, संयमहीन, अनीतिमय जीवन व्यतीत करने वाले हों, उनको कदापि रसायन सेवन नहीं कराया जाता, ये सब अनधिकारी हैं।

रसायन प्रकार :—जीवनका कल्याण करनेके लिए रसायनके मुख्य ३ प्रकार हैं। १. सदाचार रसायन; २. योग रसायन; ३. औषध रसायन।

सदाचार रसायन—शास्त्रकारोंने कहा है कि—

आचाराज्जायते धर्मो धर्मादर्थश्च वर्धते ।
तस्मात्प्रवर्तते कामस्तेन स्वर्ग फलं लभेत् ॥
आचारादपनाशस्स्यादायुर्बुद्धिर्दिने दिने ।
अधीता निगमास्सर्वे मन्त्रा शास्त्राणि जातय. ।
तपस्या देवतास्सर्वास्ता चारफलदा. शुभाः ।
आचारहीना सर्वे ते न फलन्ति न संशय. ॥

— + + +

सर्वागमानामाचार' प्रथमं परिकल्पते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥

सदाचार पालनसे धर्मकी प्राप्ति होती है। उस धर्मसे धन और काम (धनका सदुपयोगकी शक्ति) तथा पारमार्थिक कल्याणकी प्राप्ति होती है। सदाचारके पालनसे पूर्वार्जित पाप और दुष्ट वासनाओंका नाश होता है। दिन-प्रति-दिन बुद्धि विशुद्ध होती जाती है। सदाचारके पालन करने वालोंको वेद, उपनिषदें, पुराण मन्त्र शास्त्र, देवता, पितरोंकी कृपा सब फल प्रद होते हैं। आचार हीन बनने वालोंको शास्त्र आदिका मनन, मन्त्रजप, देवोंके पूजन, अर्चन, सब निष्फल होते हैं।

सब वेद, वेदांतोंमें तप, जप, पठन, मनन, ध्यान आदिकी अपेक्षा सदाचारको मुख्य माना है। सदाचार के पालनसे ही धर्मकीप्राप्ति होती है और धर्मके पालन से ही अच्युत महा प्रभुकी कृपा संपादन होती है।

२ योग रसायन :—जीवन मुक्त होनेके लिए सुदृढ देह वाले जिज्ञासुको योग रसायनके पथ्यका अनुसरण करनेकी आज्ञाकी है। उसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है। इस राजयोगके मार्गमें प्रवेशार्थ प्रारम्भमें कई अधिकारियोंको हठयोगकी क्रिया करनेकी आज्ञा की जाती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम मुद्रा, नादानुसधान, ये ६ अंग माने है। फिर राजयोग में प्रवेश कराया जाता है। उन साधनोंका आश्रय लेकर जीवन व्यतीत करते हुए अधिकारी लब अपना आरोग्य बढते हैं और इष्ट देवका स्मरण, पूजन, ध्यान आदि करते हैं; तब दीर्घकाल परिश्रम करनेके पश्चात् प्रगाढ समाधिका आश्रय लेकर विदेह मुक्तिकी प्राप्ति कर लेते है।

औषधि रसायन'—साधकोंके हितकी दृष्टिसे इसके कुछ विभाग किये गये है। अ. उष पान रसायन आ. घृत तैल रसायन, इ. वनौषध रसायन, तथा ई. रसौषध रसायन। इनका विशेष विचार क्रमशः आगे करते हैं।

उष पान रसायन—रात्रिको ताम्र पात्रमें भरे हुए विशुद्ध जलको ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठने पर गण्डूष

करके पान करना उसे उषःपान सेवन कहते हैं। उषःपानमें जलकी मात्राका प्रमाण, प्रकृति और ऋतुके अनुरूप न्यूनाधिक किया जाता है। शक्तिसे अधिक जल पान कर लेने पर योग्य लाभ नहीं मिलता। आवश्यकतासे न्यून जल पान होगा, तो पूरा लाभ नहीं मिल सकेगा।

जिस तरह मोरी-गटर आदि जल प्रवाहित करके शुद्ध किये जाते हैं, उस तरह पचन संस्थान तथा रक्त मार्गको उषःपानसे विशुद्ध बना लिया जाता है। उषःपानका अभ्यास रखने पर शौच शुद्धि हो जाती है, मल विसर्जनमें यह अधिक सहायक होता है। मल शुद्धि होने पर देह और मन, दोनो प्रसन्न रहते हैं, स्फूर्ति बनी रहती है, अनेक व्याधियोंकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकती। वात, पित्त, कफ तीनों दोष बहुधा सम रहते हैं, अग्नि बल बना रहता है। उसमें विकृति नहीं आती। इसी हेतुसे स्वास्थ्यकी रक्षा सरलता पूर्वक होती रहती है।

वर्तमानके पाश्चात्य प्रथाका अनुसरण करने वाले विलासी मनुष्य प्रातः काल उठते ही पहले शौच शुद्धि कर चाय (Bed Tea) लेनेके अभ्यासी या व्यसनी बने हुए हैं, वे सब उषःपानके लाभसे कोसों दूरी पर रहे हैं।

घृत, तैल रसायन—आयुर्वेद शास्त्रमें दर्शाये हुए विविध प्रकारके घृत तैलोंको यथा विधि निर्माण करके रसायन रूपसे सेवन कराये जाते हैं। अधिकारी भेदसे प्रकार भेद हो जाते है। घृतोंका उपयोग बहुधा उदर सेवनार्थ ही होता है तथा तैलोंका उपयोग उदर सेवन, मर्दन, नस्य, कर्ण पूरण, वस्ति, मस्तिष्क वातशमनार्थ शिर पूरण, भेदसे कई प्रकारके होते हैं। रोग विनाश, स्फूर्ति प्रदान, देहको सुदृढ बनाने आदि हेतुसे तैल उपयोगी हैं, अनेक रोगियोंके लिए सद्य.फलदायी है। उपयोग विशेषत आयु वृद्धि और देहकी सुदृढताकी रक्षाके निमित्त होता है।

सिद्ध घृत और सिद्ध तैलका निर्माण करानेके लिए रोग हर या रसायन औषधियोंके स्वरस, कल्क, क्वाथ आदिका यथा विधि पाचन करा कर निर्माण कराया जाता है। घृत निर्माणार्थ जीवनीय गणकी औषधियां और रसायन रूपमे वर्णित औषधियोंका व्यवहार किया जाता है। तैल सिद्ध करनेके लिए बला, प्रसारणी, वत्सनाभ, आंवले आदिका उपयोग होता है। विविध रोगोंपर उपयोगी कई प्रकारके तैलोंकी योजना चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टाङ्ग संग्रह आदि ग्रन्थोंमें है। वर्तमानमें मलाबार प्रान्त आदि द्राविड़ भाषा प्रधान देशमें अधिक होता है। वहांपर इस चिकित्सा का संरक्षण प्राचीन कालसे अद्यापि पर्यन्त हो रहा है।

यकृत् निर्बल हो, वैसे मनुष्योंको घृत या तैलका सेवन नहीं कराया जाता। एवं वृक्क पीड़ित हों तो भी सम्हालना पड़ता है। इनके अतिरिक्त भी नियमको जान लेनेकी आवश्यकता है, आंख मूंद कर उपचार नहीं किये जाते।

वनौषधि रसायन—काष्ठौषधियोंमें कई अति दिव्य है, जिनका सेवन कल्प रूपसे करनेका आयुर्वेद और रस शास्त्रमें दर्शाया गया है। त्रिफला, आमलकी रसायन, पिप्पली रसायन, च्यवनप्राशावलेह, ब्राह्म रसायन, नाग बला रसायन आदि आदि कई रसायन चरक संहिता आदि ग्रन्थोंमें कहा है।

इनके अतिरिक्त पृथक् कल्प ग्रन्थ और रस ग्रन्थो में रोग विनाश और रसायन गुणके निमित्त विविध रोग पीड़ितोंके लिए ब्रह्मवृक्ष, मुण्डी, देवदाली, श्वेतार्क हस्तीकर्णी, रुदन्ती, निर्गुण्डी, शुनकशाल्मली, भृंगराज धात्री, शुण्डी, चित्रक, भल्लातक, भूकदंब, पुनर्नवा, कुमारी, नीली, मुसली, इन्द्रवल्ली, ज्योतिर्द्रुम, अश्वगंधा, ज्योतिष्मति, तुबरक, सोमराजी, गुग्गुलु, विजया, कञ्चुकी, कुक्कुटी, सोमलता, ब्राह्मी, मण्डूक पर्णी, गुडूची, वृद्धदारु, वज्रवल्ली, तिलक्षीरिणि आदि आदि दिव्यौषधियोंके कल्प दर्शाये गये हैं। इनमेंसे किसका सेवन करना, किस विधिसे सेवन करना; किस ऋतुमें करना, किस कल्पमें किन किन रोगोंको दूर करनेकी शक्ति है? साथमें पथ्य क्या पालन करना, किस मन्त्र का जप-ध्यान करते रहना, किस स्थान पर रह कर

रसायन सेवन करना, ये सब आचार्योंने कहा है। इनको समझ कर रसायन सेवन किया जायगा, तो अधिकारी मनुष्य पूरा पूरा लाभ उठा सकता है। देश काल, ऋतु, शारीरिक बल, रोग, वात, पित्त, कफ प्रकोप, प्रकृति बल आदिका विचार करने वालेके, सब विकार दूर हो जाते हैं। रस, रक्त, मांस आदि सप्त धातुओंकी शुद्धि और वृद्धि हो जाती है, देह सुदृढ और सबल बन जाती है। मानसिक स्फूर्ति और प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

उपर्युक्त कल्पोंमेंसे कई कल्प अनुपान भेदसे कई रोगोंको निःसंदेह दूर करते हैं। वनौषध कल्प बहुधा निर्भय होते हैं। हानि होनेका भय बहुधा नहीं है, प्रकृति बलसे मात्रा न्यून हो तो बढा सकते हैं, अधिक मात्रा हुई तो कम कर सकते हैं, अनुकूल न रहनेपर छोड़ सकते हैं, छोड़ देनेपर भी विघ्न नहीं आता। इस तरह ये सब अति सौम्य हैं। इन कल्पोंकी स्थिरता रसौषधि रसायनकी अपेक्षा कम मानी गई है। इस हेतुसे दीर्घ कालतक यौवनको स्थिर रखने, स्वास्थ्यको सुदृढ रखने, मन-बुद्धिको लाभ पहुँचानेके लिए अधिकारी जनोंको रसौषधियोंके सेवनकी आज्ञा रसविदोंने की है।

रसौषधि रसायनः—रसौषधियां तैयार करानेके लिए विशेषतः पारदका आश्रय लिया जाता है। क्वचित् आचार्योंने मात्र धातु-उपधातुओंकी भस्मका यथा विधि सेवन करनेका भी विधान किया है। भस्म सेवन करनी हो, तो रोग विनाशक विशेष पुट-भावना देकर तैयार की हुई योग्य अनुपानसे ली जाती है। इन भस्मोंकी अपेक्षा पारद विशेष शक्तिशाली है। अतः अधिकतर रस प्रधान औषधियोंके सेवनका विधान किया गया है।

पारदको रसायन रूपसे या रोग विनाशार्थ सेवन करनेके पहले उसे विशुद्ध और विशेष गुणाधान युक्त बनानेकी आवश्यकता है। रोग विनाशमें मुख्य २ विभाग हैं। नूतन, आशुकारी उत्तान मूल युक्त, दूसरा जीर्ण, चिरकारी धातु उपधातुओंके भीतर अवस्थित गंभीर मूल युक्त। नूतन रोग हो तो हिंगुलोत्थ पारद या अष्ट संस्कारित लेकर रसौषधि तैयार की जाती है। दृढ मूलको उखाड़कर फेंक देनेके लिए पारदको अधिक सबल बनाना पड़ता है। एवं रसायन गुणके लिए सबलतर और सबलतम करना पड़ता है।

रसौषधके निर्माणमें मुख्य ४ प्रकार हैं। १. खरलीय रस; २. पर्पटी रस; ३; कूपीपक्व रसायन; ४. रस भस्म रसायन। इनका बल उत्तरोत्तर अधिक माना गया है।

खरलीय रस सामान्यतः रोगविनाशार्थ प्रयोजित होते हैं। कुछ प्रयोग रसायन रूपसे भी आचार्योंने दर्शाये हैं, जैसे लक्ष्मीविलास, खेचरी गुटी, अमृतार्णव रस, तरुणानन्द रस, वसंतकुसुमाकर आदि कुछ प्रयोग रोगविनाशके अतिरिक्त रसायन रूपसे भी लाभ पहुंचाते हैं।

पर्पटी कल्पके भीतर रस पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी, रत्नपर्पटी, आदि अनेक प्रयोग हैं। विशेषतः इनका निर्माण पचन संस्थानके रोगोंका नाश करके उसे सबल बनानेके निमित्त है। कुछ विशेष कल्प-अभ्रपर्पटी, मल्ल पर्पटी, श्वेत पर्पटी आदि अन्य संस्थानोंके रोग विनाशार्थ भी कहे हैं।

कूपीपक्व रसायनका उपयोगः— विशेषतः रसायन रूपसे किया है। फिर भी कुछ प्रयोग रोगविनाशार्थ कहे हैं। एवं कुछ प्रयोग रोग विनाश और रसायन गुण प्रधान, दोनों उद्देश्योंके निमित्त भी दर्शाये हैं।

जो रसायन प्रयोग केवल रोगविनाशार्थ हैं, उनमें अष्ट संस्कारित और षड्गुण जीर्ण पारद लिया जाता है। मल्ल चन्द्रोदय, ताल चन्द्रोदय, शिला चन्द्रोदय, समीरपन्नग, अष्टमूर्ति रसायन, व्याधिहरण रसायन, स्वर्णवङ्ग, लोकनाथ, मृगाङ्क, महा मृगांक, रस कर्पूर आदि आदिका प्रयोग रोगविनाशके हेतुसे विशेषतः किया है।

स्वर्ण भूपति, चन्द्रोदय, स्वर्ण सिंदूर आदि कुछ प्रयोग रोग विनाश और देह सिद्धि दोनों उद्देश्यसे कहे

हैं। जब रसायनका उद्देश्य हो, तब पारद जितना अधिक दिव्य लिया जायगा, उतना गुण अधिक मिलता है। आचार्योंने विशेषतः समुख पक्षच्छिन्न रसेन्द्र लेनेका विधान किया है। वर्तमानमें इस ओर वैद्य समाजका लक्ष्य बहुत कम है।

कूपीपक्व रसायनके कृतिभेदसे तीन प्रकार हैं। १. वालुकाके भीतर सम्पुट रखकर रसायन निर्माण कराना, जैसे विविध मृगाङ्क आदि। २ कूपीके भीतर कण्ठस्थ; ३. कूपीके भीतर तलस्थ। कण्ठस्थ और तलस्थ भेद पारद भेदसे और अग्नि भेदसे भी हो सकता है। पारद पक्षच्छिन्न न हो और अग्नि तीव्र दी जायगी, तो रसायन कण्ठस्थ ही होगा। पारद पक्षच्छिन्न न होनेपर भी अग्नि मंद मंद देकर रसायन पाक किया जायगा, तो रसायन तलस्थ होगा। यदि पारद पक्षच्छिन्न लिया हो तो अग्नि चाहे उतनी तीव्र दी जायगी, तथापि रसायन तलस्थ रहेगा। इन दोनो प्रकारोंको तलस्थ करनेपर भी गुणमें महदन्तर है।

कण्ठस्थ रसायनमें पारद बाष्प रूप बनकर कण्ठमें संगृहीत होना है। तलस्थ रसायनमें पारद पक्षच्छिन्न लिया हो, तो पारदका बाष्पी भवन नहीं हो सकता। कारण, पारदको अभ्रक और लौह आदि धातुके सत्व की शक्तिका अणु अणुमें प्रवेश हो जानेसे वह उसे उड़ने नहीं देती। वर्तमानमें रससिंदूर, चन्द्रोदय, मल्ल सिंदूर, तालसिंदूर आदिको कण्ठस्थ बनानेका विशेषतर प्रचार हो गया है।

औषध भेदसे भी रसायनके ३ विभाग हो जाते हैं। मौलिक द्रव्यों का रासायनिक संमिलन मौलिक द्रव्य और यौगिक द्रव्योंका संमिलन; ३. कई यौगिक पदार्थोंका पुनः संमिलन।

मौलिक पदार्थके रासायनिक संमिलनार्थ पहले धातु-उपधातुओंके योगको खरलमें मिला मर्दन कर अच्छी तरह मिला वालुका यन्त्रस्थ कूपीमें भरकर यथा विधि मंद, मध्यम और तीव्राग्नि देकर यौगिक पदार्थ निर्माण कराया जाता है। उदा० मल्लसिंदूर आदि पारद, बलि और मल्ल मिला यथा विधि कज्जली कर कूपीमें भर कर, अग्नि देकर पाक कराया जाता है। वह तलस्थ रखा जाता है अथवा कण्ठस्थ भी बना लिया जाता है।

मौलिक और यौगिक पदार्थोंके संमिलनार्थ पारद के साथ कुछ धातुओंकी भस्म, उपधातु, गन्धक, आदि इतर खनिज द्रव्य, क्वचित् भूनाग आदि प्राणिज द्रव्य या क्षार आदि मिला खरलमें मर्दन कर यथाविधि संयोजन कराया जाता है। कुछ औषधि मूल रूपमें और कुछ यौगिक बनी हुई ली जाती हैं। बलि, मल्ल, उपधातु आदि मौलिक हैं। धातुओंकी भस्म, हिंगुल, ताल आदि यौगिक द्रव्य हैं, इनके यथा विधि मिश्रण करें। कूपीमें पकानेपर परस्पर यौगिक विनिमय होकर नूतन रासायनिक योग निर्मित होता है।

क्वचित् इस प्रकारके योगोंका पाक मात्र गन्धक के भीतर भी यथाविधि कराया जाता है। उदा० हेमगर्भ पोटली, रत्नगर्भ पोटली आदि।

दो, तीन या अधिक यौगिक औषधियोंका पुनः रासायनिक योग निर्माण करानेके लिए पहले वनौषध द्रव्यके रस, क्वाथ आदिके साथ खरलमें मर्दन कराया जाता है, फिर कूपीमें भर यथाविधि मन्द, मध्यम अग्नि देकर नूतन विशेष गुण युक्त रसायन निर्माण करा लिया जाता है।

इस सम्बन्धमें कई शङ्का करेंगे, कि मात्र खरल में मिश्रण करके क्यों प्रयोग न बना लेवें? यह संशय निर्मूल है मनगढत कल्पना है। शास्त्राध्ययन न होनेसे भ्रम होता है। अग्निपर जो विभिन्न अणु परमाणुओ का परस्पर आदान प्रदान होता है, वह अग्निकी सहायताके बिना नहीं होता। अग्नि भी योग्य आवश्यक चाहिए, न्यूनाधिक अग्नि देनेपर विशेष गुण प्रद रासायनिक योग नहीं बन सकेगा।

उक्त विभागके अतिरिक्त कुछ औषधियोंके रसायन पाक तलके कुछ ऊपर तथा प्रायः कण्ठके नीचे कराया जाता है। जैसे हिंगुल, रससिन्दूर, रसकर्पूर और दार चिकना आदि यौगिक द्रव्योंको पारद, खनिज द्रव्य गन्धक, कासीस आदिके साथ मिलाकर यथा-

विधि पाक करा कूपीके मध्य भागमें संगृहीत कराया जाता है।

रासायनिक योग करानेमें कई द्रव्य ऐसे हैं, जो वाष्प शील होनेपर भी उनके योगिकोंमें परस्पर विनिमय नहीं हो सकता है। कुछ प्रयोगोके संमिलनमें विपरीत प्रभाव उत्पन्न होता है। कुछ विनिमय अनुकूल गुणवर्द्धक होता है। इन सबका निर्णय विज्ञान शास्त्र की अनुकूल क्रिया करके करना चाहिए।

कूपीक्व रसायन निर्माण करानेके द्रव्योंका समिश्रण कराकर पहले विविध गुणवर्द्धक औषधियोंकी, भावना देनी पड़ती हैं। कई बार पेड़ा, टिकियां, गोली या गोला बनाकर स्वेदन आदि क्रिया द्वारा पहले सामान्य पाक कराया जाता है। कईयोंको तैल आदि स्नेहकी भावना दी जाती है। विज्ञान शास्त्रकी मर्यादा के अनुरूप इन सबकी निर्माण क्रिया आचार्योंने करायी है, वह दी जाती है। विज्ञान शास्त्रकी मर्यादाके के अनुरूप इनकी निर्माण क्रिया आचार्योंने करायी है।

सबसे श्रेष्ठ रसायन पारद भस्म है। उसके लिए आचार्योंने समुख, पक्षच्छिन्न, सबीज पारदकी भस्म बनानेका विधान किया है। यदि पारद पक्षच्छिन्न नहीं होगा, तो पारद भस्म अपक्व रहेगी। सुवर्ण जारण और सबीज नहीं बनाया जायगा, तो रसायन गुण दीर्घकाल पर्यन्त नहीं टिक सकेगा। सारण, प्रतिसारण, अनुसारण, क्रिया जितनी बार अधिक करके रसेन्द्रको दिव्य बनाया होगा, उतनी ही भस्म दिव्य बनती है। पारद भी षोडशगुण वेधक, शत गुण वेधक, सहस्र गुण वेधक, जैसा रसेन्द्र होगा, उतनी ही भस्म अधिकतर शक्तिशाली बनेगी।

आचार्योंने सूचनाकी है प्रारम्भमें क्षेत्री करणार्थ। अभ्रक आदि भस्म सेवनकी आज्ञाकी है। फिर रस भस्मका सेवन हो सकेगा। इनमें भी पहले कम बल युक्त भस्म ली जाती है पश्चात् क्रमशः अधिक शक्ति शाली। प्रारम्भमें ही अत्यन्त शक्तिशाली भस्म ली जायगी, तो लाभ नहीं मिलेगा, जीवनका नाश हो जायगा।

रसायन सेवन करनेवालोंके लिए नियम पालन करनेका आग्रह है, एवं ध्यान परायणता रखनेकी आज्ञाकी है। यदि आचार्योंके कथनको समान नहीं दिया जायगा, तो अधिकारी जन लाभ नहीं उठा सकेंगे। रसेश्वर पूजन, अर्चन, ध्यान, जप आदिका आश्रय लेनेको अधिक महत्व दिया है। इस नियम का निरादर करने वाले नास्तिकोंको रसायन सेवनार्थ रस भस्मके सेवनका आग्रह छोड देनेका मैं सविनय निवेदन करता हूँ।

विशेष प्रकारके और सामान्य रस-रसायनके सम्बन्धमें सामान्य विधिका वर्णन आप सबके समक्ष रखा है। उन सबका उपयोग कैसे क्या? यह सद्गुरु सेवा शास्त्रमनन और स्वानुभवपर अवलम्बित है। विशुद्ध पारदसे निर्मित और रसेन्द्र मिलाकर बनाये रस-रसायन बाह्य दृष्टिसे समान भासते हैं। किन्तु दोनोंके गुणमें महदतर हो जाता है। इन सबका व्यवहार कैसे करना चाहिए, यह विचारपूर्वक निर्णय करें। अनुभवहीन अविवेकी मनुष्य दोनोंको समान जान लेगा, वैसी भूल चिकित्सक बन्धु न करे, इस विस्तारसे मैंने उपरोक्त विचार दर्शाये हैं। चिकित्सक बन्धु पहले योग्य निदान कर लेगा तथा औषध कृति और औषधबलको समझकर प्रयोग करेगा, तो उनको निःसंदेह सफलता, धन और यश मिलेगें। इस सम्बन्धमें पुनः अनुकूल समयपर स्वास्थ्यमें विशेष दर्शाया जायगा। इतिशम्

रसशास्त्रकी अमोघ शक्ति
सुवर्ण चन्द्रोदय (तलस्थ)

लेखक—वैद्य पं० बद्रीनारायण शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य कालेड़ा

श्रियं स दद्याद्भवतां पुरारिर्यदङ्गतेजःप्रसरे भवानी।
विराजते निर्मल चन्द्रिकायां महौषधीव ज्वलिताहिमाद्रौ॥

मैंने—पारदके संस्कार–शीर्षक मेरे लेखमें पाठको के सम्मुख निवेदन द्वारा यह समझानेका प्रयत्न किया है कि कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवनकी रसायन शालामें पारेके किस किस प्रकारसे स्वेदनसे जारण पर्यन्त सस्कार हुये, वे किस किस तरह किये गये है ? उनका आद्योपान्त वर्णन किया है। हमने जारणा तक सफलता प्राप्ति कर ली है और आगेकी क्रिया जारी है। जिस तरह गत पारद अनुसंधान सम्मेलनकी भव्य प्रदर्शनीमें हमने हृदय खोलकर ८ सस्कार वाले पारे रखे, उसी प्रकार उनकी ब्योरेवार क्रिया विधि 'पारदके संस्कार' शीर्षक लेखमें स्पष्ट तया रख दी है।

जैसा कि संस्थाका उद्देश्य किसी प्रयोगको गुप्त न रखनेका है, उसीका बराबर पालन हम करते आ रहे हैं। अब संस्थामें स्वर्ण चन्द्रोदय तलस्थका निर्माण किस प्रकार किया गया उसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन यहा किया जा रहा है।

गत लेखमे वर्णित स्वेदनादिसे दीपनान्त विशुद्ध एवं बुभुक्षित व छिन्न पक्ष पारदमे शु० गधक स्वर्णमक्षिक सत्व, अभ्रक सत्व तथा सुवर्णका ग्रास देकर ८ तोल परिमाणमें लिया गया इसमें १ तोला सुवर्ण के वर्क मिलाकर खरलमें नींबूका रस डालकर ३ दिन तक घोटा गया, प्रतिदिन प्रात काल १-१ तोला सैंधानमक साथमें मिला दिया जाता है।

चोथे दिन पारदको ३-४ समय जलसे धोकर क्षार लवण अलग कर दिया गया फिर इसमें विशुद्ध गंधक १६ तोले डालकर कज्जली करली गई। पश्चात् अति पुराने वर्षोंके लाल, कपासके फूलोंके रस और गवार पाठेके रसकी ३ दिन तक भावना देकर सुखा लिया गया।

फिर छ सात कपड़ मिट्टीकी हुई पक्की आतशी शीशीमें भरकर वालुकायन्त्रपर १५ दिन मन्दाग्नि १५ दिन मध्यमाग्नि और १५ दिन तीव्र आंचपर पाक किया गया (इस प्रकार कुल १॥ महिने तक पकाया। इतने दिनोंतक आच देनेपर भी पारद उड़ा नहीं किन्तु शीशेके तलभागमें स्वर्णके साथ ही रहा सुवर्ण पारद के अणु अणुमें मिल गया था, और गन्धकका जारण भी पूर्ण रूपमें हो गया अतः गंधकका कोई वजन नहीं आया। ८ तोले पारद व १ तोले स्वर्णमेंसे ८॥ तोले चन्द्रोदय (तल भागमें) और कुछ कृष्णवर्ण भस्म लगभग ४ माशे हमें प्राप्त हुई। अब मै यहांपर अतिसंक्षेपमें कूपीपक्क रसायन निर्माणार्थ भट्टी या चूल्हा, कोयलेकी भट्टीसे लाभ, बालुका यंत्र, आतशी शीशी, आंच देनेके लिये लकड़ी व कोयले आदि के विषयमें अति संक्षेपमें प्रकाश डालता हूँ—

१ भट्टी या चूल्हा—भूतकालमें सामान्य चूल्हे पर कूपीपक रस तैयार कर लिया करते थे और न कोक या पत्थरके कोयले ही जलाते थे और न आज कल सरीखी भट्टियां या विद्युच्चालित चूल्होंपर रसायन बनाते थे। वैसे साधारण तया पहले चूल्होंका

उपयोग ही विशेष होता था। क्योंकि, यन्त्रोंके प्रकरण में कहींपर भी सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री या सिद्ध भ्राष्ट्रीका उल्लेख देखनेको नहीं मिलता।

हमारे यहां संस्थामें कई वर्षोंसे सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री का उपयोग होता चला आरहा है, जिसकी विशेष जानकारी एवं चित्र भी यहां दिया जा रहा है —

यह भट्टी बाहर से चोकौनी और भीतरसे गोल होती है। अग्निकी ज्वालाये अच्छी तरह लगे इससे गोलाई कम रखे। प्रथम २८ इञ्च चोकोर जमीनमें ८ इञ्चका गहरा गड्ढा खोदकर गोबर मिट्टीका लेप करदें। बीचमें गोलाई रहे इस तरह की दिवाल बनावे। ऊपरका चोकोर भाग २५ इञ्च तकका बनवावें। जमीनके बराबर दिवार हो किन्तु बराबर बीच में १ मुंह ७ इञ्च चौड़ा व ८ इञ्च ऊँचा रखें। मुह के उपर भी दिवार बनावें। जिसकी ऊँचाई गड्ढेसे २४ इंच और जमीनसे १६ इंच रहेगी, ऊपरके भागमे ४ दिवारोंकी मोटाई ६ इञ्च रहे यह सावधानी रखना चाहिये किन्तु नीचेकी मोटाइ ७॥ इञ्च होगी। बीच में १२ इञ्च गोलाकार जगह वालुका यंत्र रखनेके लिये खाली रहेगी।

मुंह वाली दिवार छोड़कर शेष तीनों दिवारोंमें जमीनसे १० इंच ऊंचाईपर–१ इंच मोटी और ९–९ इंच लंबी लोहेकी छडें लगानी चाहिये। इन छड़ोंका ३-३ इंच भाग भट्टीमें रहेगा और ६-६ इंच भाग दिवालोंमे दब जायगा। दिखने वाली ३-३ छड़ोंपर ही बालुका यंत्र रहेगा। छड़ोंके ऊपर दिवाल ६ इंच होना चाहिये, जिससे बालुका यंत्रकी थोडी किनार भट्टीसे बाहर दिखती रहे। इस भट्टीके बाहर मिट्टीका प्लास्टर कर देनेसे यह बहुत समयके लिये टिकाऊ हो जाती है। यह प्रमाण २४ औंसकी काली शीशी के लिये है। यदि विलायती आतशी शीशीके लिये भट्टी बनानी हो तो इससे कुछ बड़ी बनानी पड़ेगी। इस भट्टीपर कूपीपक्व रसायन भी तैयार होता है और जमीनमें जो आठ इंच गहरा गड्ढा है उसमें किसी किसी धातुकी भस्म बनानेके लिये थोड़ी गोबरी डालकर संपुट रख दिया जाता है। जब गोबरी जल जाती है तो भट्टीके कोयलोका उपयोग हो जाता है और उससे ३ गजपुट जितनी आंच एक समयमें लग जाती है। यदि कभी बीचमें ही संपुट निकालना हो तो दूसरी दिवालमें १ मुह बना लेना पड़ता है। इस तरह भस्म बनानेका भी कार्य हो जाता है।
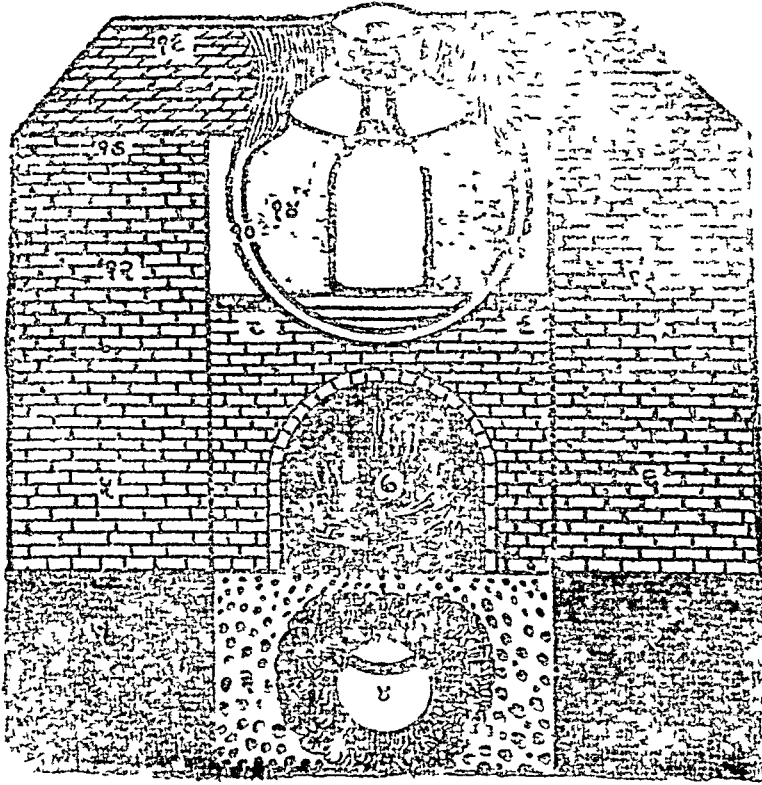
यदि मन्द मध्यम अग्नि देकर पाक कराना इष्ट हो. तो लकड़ीकी अग्नि देनी चाहिए किन्तु, कई रस (कूपीपक विधिसे बने हुए) रोग विनाशक रूपमे व्यवहृत होते हैं उनको पत्थरके कोयले (सोफ्ट कोक) की भट्टीपर यथाविधि बना लिया जाता है।

योगोंका वर्णन यहां पर विद्यार्थियोंको उपयोगी हो, इसलिए समझा-समझाकर लिखा है।

कोयलेकी भट्टीसे लाभ—इस भट्टीमें ३ दिन आंच लगनेपर भी ज्यादा कोयला इकट्ठा नहीं होनेसे काम करने वालोंको त्रास नहीं होता। एक साथ २ कार्य हो जाते हैं एवं अकस्मात् शीशी फूट जानेपर भी भट्टीके भीतर होनेसे कार्य कर्त्ताओंको हानि नहीं पहुँचती।

भट्टीको खुले मैदानमें न बना कर ऐसे मकानमें जिसमें अधिक खिड़कियां और दरवाजा ऊँचा हो जिससे धूआ आसानीसे निकलता रहे और गर्मी या धूंयेसे कार्य कर्त्ताओंको हानि न पहुँचे ऐसी बनवानी चाहिये।

वालुका यन्त्र—मिट्टी या लोहेकी ऐसी हाडी जो उक्त भट्टीके भीतर आजाये और चारों ओर १-१ अंगुल जगह खाली रहे ऐसी लेना चाहिये। यह १२इंच ऊंची और शीशी भीतर रखनेपर चारो ओर २-२ इंच खाली रह जाये ऐसी चौड़ी ले। मिट्टीके बर्त्तन, के मुहपर लोहेका तार बांधे। बर्त्तनके पैंदेमें ।॥ इंच गोल छेद हो उसपर ३ इंच गोल अभ्रकका पत्रा रखे। इसपर औषधि (कज्जली) से भरी शीशी रखकर चारो ओर गले तक नदीकी छनी हुई बालू रेत भर दें। समुद्रतट की रेत हो,तो जलसे भिगो धोकर लवणाचार दूर करे।

आतशी शीशी—शीशी पतकी समतल वाली तथा नीचेसे फूली हुई लेना चाहिये जिसपर १-१ कपड़ मिट्टी सूखनेके बाद ७ कपड़ मिट्टीकी हुई हो। एक साथ १ से अधिक कपड़ मिट्टी न करे। शीशी पतली हो तो १० कपड़मिट्टी भी कर सकते है।

आंच देनेके लिए लकड़ी—आंच देनेके लिये बबूलकी सूखी लकड़ी या धोकड़ेके गोले जो कि हाथ जैसे मोटे हो लेने चाहिये। लकड़ी पहले ही से खूब इकट्ठी कर लेना चाहिये। मर्यादानुसार मन्द मध्य व तेज अग्नि दे। तथा वैसी ही भट्टी-शीशी तथा यंत्र और अग्निकी कल्पना करना चाहिये। मन गढन्त रीतिसे काम करनेमें लकडी भी अधिक जलेगी रसायन कच्चा रह जायगा या खरपाक हो जायगा अथवा पारद नष्ट हो जायगा।

कोयले—आंचके लिये आजकल कोकके कोयलो का भी प्रयोग लोहेकी सलाका वाली भट्टियोपर किया जाता है। इनमें आंच कम करनेके भी साधन रखते हैं। इन कोयलोंपर रसायन जल्दी पकता है। और लकड़ी का बहुतसा खर्च भी कम हो जाता है। समय कम लगता है। हमने इसका उपयोग करके भी देखा है। इस प्रकारमें भी किसी तरहकी हानि नहीं होती, प्रत्युत खर्च कम पड़ता।

विशेषतर अभ्रक सत्व पातन, कान्त लोह पत्थर का सत्व पातन, सुवर्ण माक्षिक सत्व पातन आदिमें हम मृदु अग्नि देने वाले कोयले (सोफ्ट कोक) एवं तीव्र अग्नि देने वाले (हार्ड कॉक) इनका उपयोग करते हैं एवं शिला सिंदूर आदि अति कष्टसे उडने वाले द्रव्योंके लिए भी कार्यमें लेते है।

कुछ आवश्यक सूचनाएं

१—कूपीपक्व रसायन बनाने वाले रसायनाचार्य को धैर्य, गभीरता, पूर्ण शांति एवं प्रत्युत्पन्न मति युक्त होना चाहिये। शीघ्रकारिता, घबराहट अननुभवसे कार्य हानि होती है।

२—छोटी शीशीमें थोडा माल और बडी शीशीमें अधिक माल चढावे किन्तु यह ध्यान रहे कि औषधि का पाक होनेके लिये शीशी द्रव्यसे ३/४ भाग रिक्त रहे।

३—अन्य आवश्यक उपकरणोंके साथ-साथ १ मोटी सडासी, छोटे बड़े २ चीमटे, लोहेकी २-३ शलाकायें हरवक्त तैयार रहनी चाहिये।

४—शलाकासे बार बार औषधिको तल भागमें चलाना नहीं चाहिये अन्यथा पाक क्रियामें अन्तर आ जाता है केवल शलाकासे शीशीका मुंह साफ करते रहना चाहिये।

५—बार बार शीशीपर झुककर भीतर दृष्टि डालते नहीं रहना अन्यथा नेत्रोंकी ज्योति नष्ट हो जाती है।

यह हमारा अनुभव है कि इस प्रकारसे बनाया हुआ पूर्ण चन्द्रोदय (तलस्थ) चूंकि अष्ट संस्कारित बुभुक्षित तथा ग्रास प्रदत्त व अग्निस्थाई एवं षोडष गुण गन्धक जारित होनेसे इसके द्वारा बनी रसायन तलभागमें ही बनी हुई

होनेसे पूर्णांशमे स्वर्ण युक्त होगी। पारद उड़कर गले में नहीं लगेगा। जब कि अन्य चन्द्रोदय गलेमें स्थित हो जाते है और उनका सारा सोना शीशीके पेदेमे भस्म रूपमें रह जाता है जिससे सोनेके गुण प्राप्त नहीं हो सकते और ऐसे चन्द्रोदय पूर्णरूपसे शास्त्रोक्त गुण नहीं करते। यहांकी रसायन शालामें प्रथम प्रकारका दिव्य पूर्णचन्द्रोदय स्वर्ण युक्त (तलस्थ) का निर्माण किया जाता है जो कि इच्छित फल प्रदान करता है। यह चन्द्रोदय आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रचलित सर्व श्रेष्ठ इजेक्षनोकी अपेक्षा केवल अमोघ शक्ति ही नहीं रखता किन्तु वैद्य समाजके लिये वरदान स्वरूप है और उसके प्रयोगसे वैद्यो एव आयुर्वेद विज्ञानका मस्तक उन्नत होता है।

सेवन विधि—(१) चन्द्रोदय १ तोला, सहस्रपुटी अभ्रक १ तोला, भीमसेन कर्पूर १ तोला, असली केसर १ तोला, असली अकरकरा १ तोला, समुद्रशोप १ तोला, नई ताजा छोटी पीपल १ तोला और कस्तूरी ३ माशे लेकर सबको पक्की खरलमें बारीक घोट पीस ले फिर नागरवेलके पानोके रसमें १२ घटे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलिया बना ले।

मात्रा—१-१ गोली सुबह शाम दूधसे ले।

चन्द्रोदय वटी—(२) चन्द्रोदय तथा कपूर ४ तोले, बंगभस्म, वाजीकरण लोहभस्म, लोग, जायफल, जावित्री, केशर, और अकरकरा ये प्रत्येक १-१ तोला कुचलासत्व (स्ट्रिकनिया) १ माशे, कस्तूरी और अम्बर ६-६ माशे लेवे।

प्रथम चन्द्रोदय व कर्पूरको मिलाव, फिर केशर-कतूरी और अम्बर मिलाकर नागरवेलके पानके रस में मिलाकर ३ घटे खरल करे। पश्चात् शेप औषधियो का कपड़छन चूर्ण मिलाकर नागरवेलके पानोके रसमें ६ घटे खरल करके ½-½ रत्तीकी गोलिया बनाले। और उनको सोनेके वर्कमें डालते जाये।

चन्द्रोदय वटी (विशेप) बनाना हो तो स्वर्ण भस्म १ तोला और मिला देते हैं।

चन्द्रोदय वटी—(नं० ३) पूर्ण चन्द्रोदय स्वर्ण (तलस्थ) १ तोला, मोती पिष्टी नं० १—१ तोला, कहरवा पिष्टी १ तोला, सुवर्ण भस्म १ तोला, प्रवाल पिष्टी १ तोला, भीमसेनी कर्पूर १ तोला, कस्तूरी ३ माशे, जहरमोहरा पिष्टी १ तोला, वंग भस्म १ तोला, लेकर एकत्र करे और ३ दिन तक खरलमें घोटकर शीशीमें भर लें। अथवा इस चूर्णको अर्क वेदमुश्कमें डालकर खरल करके ½-½ रत्तीकी गोलियां बना लें।

४—चन्द्रोदय मिश्रण—पूर्णचन्द्रोदय तलस्थ १ तोला, अभ्रक भस्म १००० पुटी तीन माशे, सुवर्ण भस्म ३ माशे, मुक्तापिष्टी ६ माशे, प्रवाल पिष्टी ६ माशे, यशद भस्म १०० पुटी ६ माशे, कपूर २ तोला, इलायची दानोंका चूर्ण १ ताला, वशलोचन ४ तोला, मिलाकर खरलमें खूब घोटकर वारीक चूर्ण बनाले, व शीशीमें भर ले।

मात्रा—½ रत्तीसे १ रत्ती तक

अनुपान—मलाई, दूध, शहद, मक्खन, च्यवनप्राश, खमीरा गाजवान या एलादि मन्थसे दिनमें २-३ बार या व्याधिकी स्थितिके अनुसार।

गुण—इसके गुण सर्वत्र प्रसिद्ध है, यह पूर्णचन्द्रोदय रस भारतीय चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेदकीमहामूल्यवान् सजीवनी निधि है। यह रसायन हृदय, बलप्रद, वाजी करण, बल्य, रक्त प्रसादक, सेन्द्रिय विषशामक मास पौष्टिक एवं योगवाही है। राजयक्ष्मा, कफप्रकोपज व्याधियो और वीर्य दौर्वल्य आदिसे जर्जरित देहोको आरोग्य प्रदान करनेमें समर्थ है। धातुक्षीणता मानसिक निर्बलता, नपुसकत्व हृदयकी दुर्बलता, क्षय श्वास आदि भीषण रोगोको दूर करनेमें पूर्ण समर्थ होकर बल वीर्यकी वृद्धि करता है तथा आयुको बढाता है। यह रसायन कल्प शारीरिक घटकोका नाश नहीं करता केवल शरीरको हानि पहुँचाने वाले कीटाणुओको नष्ट करता है। उरक्षतमें रक्तको शक्ति प्रदान कर रक्तवाहिनियोको सुदृढ बनाता है एवं व्रणरोपणका महत्व पूर्ण कार्य भी करता है। किसी भी रोगके पश्चात् आई हुई दुर्बलताको दूर कर पुन पूर्वापेक्षया सबल बनाता है। वृद्ध पुरुषोके लिये भी उत्तम रसायनका कार्य करता है। इतिशम्

रसतन्त्रेषु पारदोत्पत्ति

लेखक— श्री आचार्य नित्यानन्द पिलानी

पारदोत्पत्तिमधिकृत्य रसतन्त्रेपु प्रायशः संक्षेपेण व्यासेन वा निम्नाऽऽख्यायिका सूचिता — परस्परजयाशया प्रीत्या प्रवृत्तयोः शिवयो सम्भोगात् त्रैलोक्यस्य क्षोभः समभवत् । तन्निवारणार्थंन्तत्र वन्हिः कपोतरूपेण गतवान् । तमवलोक्य लज्जितेन शम्भुना स्खलितो धातुश्चरमः, पाणिना गृहित्वा वन्हिमुखे दत्त' । ततस्तं सोढुम शक्तो वन्हिश्चतुः समुद्रेष्वपातयत् । सौम्यादि दिक्त्रयस्थ क्षाराब्धि जात पारदस्य अकिंचित्करत्वा पादनाय देवैः गौरी प्रार्थना कृता । तया च तद्देशीयः शप्तः । स्वल्पाधिक भेदमपि वर्णनेऽस्मिन्तु पलभ्यते क्वचित् । इदृग्विधाख्यायिका नव्यसम्मतार्थे नापि व्याख्येया साम्प्रतम् । तद्यथा रस सकेत कलिकास्थ निम्न पद्यानां प्रदर्श्यतेः—

स्कन्दात्तारक हिंसार्थं कैलासे विधृत सुरैः ।
रते शम्भोश्च्युत रेतो गृहीत मग्निना मुखे ॥
क्षिप्तन्तेन चतुर्दिक्षु क्षाराब्धौ तत्पृथक् पृथक् ।
सोम्यादि दिक्त्रयस्थं यद् गौरी शापान्न कार्यकृत् ॥
पश्चिमायां विमुक्तं तत्सूतोऽभूत् सर्वकार्यकृत् ॥

वेदाध्ययनतपो पवास ब्रह्मचर्या दीनामन्तरायभूत मारोग्या पहारकं रोगाविर्भावं विचिन्त्य, पारद-विषय कज्ञानमधिकृत्य परस्परमलानि जिज्ञासमाना आयुर्वेद तत्वज्ञा भिषक्तमाः पप्रच्छुरन्योन्यम्—कथमुत्पन्नोऽय पारद' कुत्र स्थितश्च ग्राह्यः, कथम्भूतस्त्याज्यः किमर्थञ्च इत्येवम्बहुधा विचार्य परिषदियमष्टांगपण्डितानां स्व स्व सिद्धान्त समन्वय कारिणी सम्भाषापद्धत्यां विविध संशयोच्छेदिनी रसशास्त्रसिद्धान्तानां सत्स्वरूप प्रकाशन समर्था च जाता । परिषन्निर्णयन्त्वेत्र समुद् घोषितं यद् 'भूगर्भ सञ्जातै नसर्गिक परिवर्त्तनैः समेता' पारद्-कणा ज्वालामुखी पर्वत मुखान्निः सृत्य परितो निम्नतम प्रदेशेपु प्रसृताः । तत्र कुत्सित द्रव्य सम्मिश्रितरूप रित्यज्य पश्चिम दिशा संस्थितश्चतुर्वर्ग साधकमेव सर्वत्र सुपूजितम् । इत्यर्थकं सर्व मत समन्वित न्निर्णयमलकृत भाषयास्पष्टीकृत मत्र ।

'स्कन्दिर् गति शोषणयोः' इत्यस्मात् स्कन्दतीति स्कन्दः—भूतशरीरम् । नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्' इति सर्वदा गति मत्त्वात्प्रतिक्षण' क्षीयमाणस्य संशोषात्परिणाम कत्वाद्वा, तरति प्लावयति दु खानीति तारकस्तेषां तारकाणां—प्राणिवेदना संयोग जन्य रोगाणां, हिंसार्थ—आत्यन्तिक विनाशाय, तद् विनाशादेव, चिर स्थायित्वं देहस्य शक्यमिति मनस्युपधार्य, कैलासे सुरम्ये हिमवत्पार्श्वे । पुराऽपितत्र समवेतैश्चरम सिद्धान्त निरुपण दरी दृश्यते । तथा हि भगवान्पुनर्वसु रात्रेयः—

तदा भूतेष्वनु क्रोशं पुरस्कृत्य महर्षयः ।

समेताः पुण्यकर्माणः पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥
सुखो पविष्टास्ते तत्र पुण्याश्चक्रुः कथामिमाम् ॥

सुरैः—देवोपमै निःस्वार्थ तपोधनैः, 'देवास्त्रिदशा विबुधा' सुराः' इत्यमरः। रसतन्त्राचार्यै र्महर्षिभिः ऋषि पुत्रै ऋषिकैरिति यावत्। विधृतम्-विविध द्रव्य परीक्षणेन तर्क द्वारा मत मतान्तर खण्डनेन च वक्ष्य-माणे पश्चिमदिशि संस्थित पारदस्यैव आधि व्याधि प्रतिकार पुरः सर देहवेधनात्मक सर्व सम्मतं सिद्धान्त निर्धारितम्।

रते—प्रकृति मैथुने 'मैथुनं संगतौ रते' इत्यमर., सृष्टि निर्माणकाल इति यावत् शं सुखम्भावयतीति तथा भूतस्य शम्भोः-गन्धकादि विमिश्रित पारदस्य 'एतानि रस नामानि तथाऽन्यानि यथा शिवे' इति शिवाभिधान पर्यायत्वात्तस्य च्युत-भूगर्भे सतत सम्भवरया परिवर्तन क्रियया त्रस्तम्। पृथग्भूतमिति यावत्। चरणार्थकात् 'री स्रवणे' इति धातो. 'सुरीभ्यां तुट च' इति 'असुन्' च कृते रेतः-सर्वोत्कृष्ट शक्ति समन्वितम्पाक निष्पत्योद् भूत पारदान्तिमतत्त्व 'रेत,शुक्रे पारदे च, इति मेदिनी।

गत्यर्थकात् 'अगि धातो' अगेर्नलोपश्च,इति सूत्रेण अग्नि', इति सिद्ध्यति। अग्नि निर्वचने 'अग नयति सन्नममान', इति यास्काचार्यः, यज्ञाय सन्नमयति साधनत्वेन तत्र सन्नमान एवात्मानम्प्रधानी कृत्य सर्वमन्य-दात्मनोऽङ्गताम् यतीति तदर्थः। अग्निना-वन्हिज्वाला-न्तर धारिणा ज्वालामुखी पर्वतेन। अत्राग्नि शब्देन उपरि भस्माच्छन्नस्य अभ्यन्तरे च दाह प्रकाश वेग छेदनादि गुणवत्त्वस्य भौतिकाग्ने र्धारकत्वेन बहि' प्रशान्त दर्शनीय मन्तर्ज्वलद् वन्ह्य वस्थ 'ज्वालामुखी' लोकेस्मिन् पर्वतविशेषं गतम्। गर्भ-उत्सङ्ग, प्रथमा नाभिकया प्रकृत्यैव कृतान्तिज्ज्वालामुखी प्रमुख नारपूर्व बहि निर्गमन मार्गे,'मुखं निःसरणम्' इत्यमरः। गृहीतम्-स्फोटनकाले परम प्रचण्ड वेगेन यथा बहिनि. सरस्वत्योपधारितम्।

तत्—तस्य रूपपारदम्, येन कालान्तरप्रभाव स्फुटितेन 'ज्वालामुखी' पर्वतेन, चतुर्दिक्षु-प्राच्यादिषु नानु. नत्याग्रान् दिक्षु, पारावौ-समुद्रे, गत्वा पुनः, क्षिप्तम्-समुद्राद् विनि. सृतेन 'लावा' भस्मादि फेन सहैव नदीः प्रपूर्य परिवर्तनमार्गानुधावन शीलेन समुद्रे प्रापितम्। सरिताश्च समुद्राभिगमनप्रसिद्ध मेव। एवं चतुराशा संस्थितं पारदम्।

गवते अव्यक्त शब्द करोतीति गौरी—ज्वालामुखी स्फुटनाद् बहिर्निःसृतं 'लावा' इत्याख्य भस्मादि निकृष्ट पार्थिव पदार्थ बहुला द्रव्यम् 'गौरी तु रजनी पिङ्ग प्रियङ्गु वसुधासु च' इति गौरी शब्दस्य पृथिवी वाचकत्वं समर्थयति मेदनी कारोऽपि। तस्या. शापात्-प्रचुरमात्रा यामिवकृत द्रव्य जातस्य प्रगाढ मिश्रणेन पार्थक्य क्रिया-या अशक्यत्वात्। सौम्यादि दिक्त्रयस्थम् पूर्वोत्तर दक्षिण दिशास्थित समुद्रादि प्रदेशेषु समुदितम्, कार्य कृत—निकृष्ट द्रव्यान्तरैः पृथक्करणविरहितत्वेन स्वास्थ्याधाने पुरुषार्थ प्रतिबन्धक रोगापहरणे देहलोहवेधनात्मके वा कृत्यकलापे समर्थन्नाभूत्। पश्चिमदिशास्थितं तु सवर्था हेयतत्त्वसम्मिश्रण रूपाय गौरी शापाद् विमुक्तम् तस्मा दस्या दिशि स्थितैः खनिदेश देशान्तरे समानीतस्य पारदस्य रस कर्मणि सकल ससिद्ध्याधाय कत्वं सर्व जीवकल्याणार्थ करत्वञ्च निर्णी-तम्। इत्थं सर्वत्र समाधेयम्।

—कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन कार्यालय—

कार्यालय विभाग—बैठे हुये बांये से दांये मूलचन्द, गोकलचन्दजी खजान्ची, श्री विष्णुभाई पटेल (मैनेजर) प्यारेलाल, सुन्दरलाल

—कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन बिक्री विभाग—
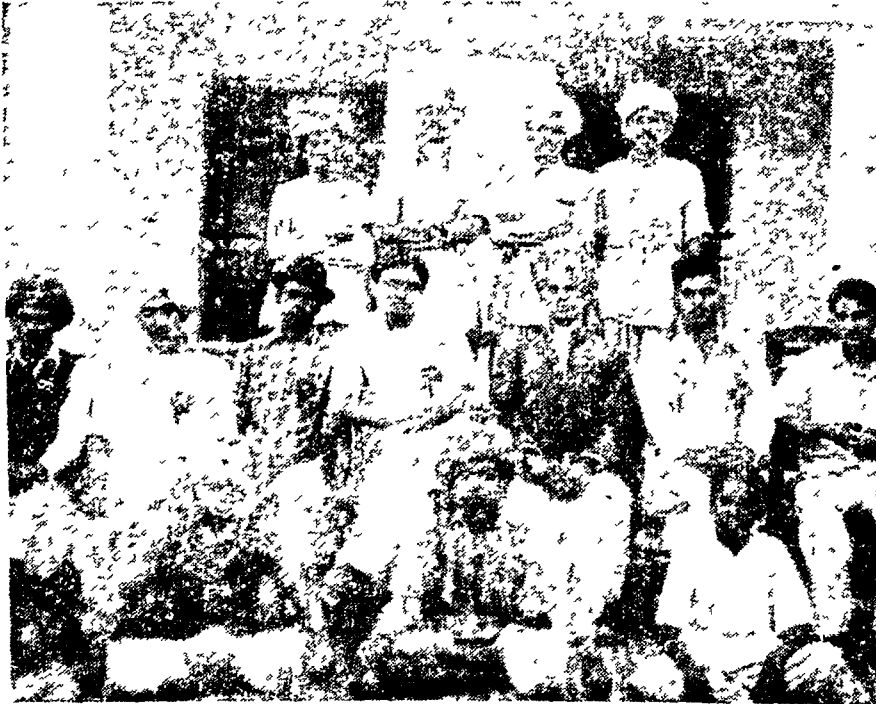
बिक्री विभाग—बाये से दाये भूरालाल, भवरलाल, गणपतसिंह, नरहरि बाबू (सेल्स मैनेजर), रघुनन्दन शर्मा, भूरालाल शर्मा, लक्ष्मणसिंह भाटी

—कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन पारद अनुसंधान शाला—

सामने कुर्सीपर—रसायनाचार्य राजवैद्य शान्तिलालजी जोशी

—कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय चिकित्सालय विभाग—

बायें से दांये —उपवैद्य रामनिवास शर्मा, प्रधान वैद्य बद्रीनारायणजी शास्त्री, लक्ष्मणसिंहजी
पीछे लक्ष्मणसिंह भाटी, लक्ष्मीनारायण परिचारक

-पारद बनाम शक्ति-

लेखक—वैद्य शीतल प्रसाद शर्मा 'नीरज'

पारदमें संसारकी सारी शक्तियां विद्यमान हैं,इसमे लोक और परलोक दोनों प्रकारकी शांति और आनन्द का प्रादुर्भाव होता है। चूंकि यह विश्वकी अनन्यतम शक्ति है, इसका प्रयोग सर्वांगीण रूपसे सारे कार्योंमें हो सकता है। पार्थिव दृष्टिकोणसे उच्चतम हेमाद्रिकी सर्जना इसके द्वारा हो सकती है। शरीरको व्याधियो से मुक्त करनेमें यह अद्वितीय है। मानवको ब्रह्मोन्मुख बनानेमें सफल होता है। ऐसा कोई भी रोग नहीं जो पारदके द्वारा ठीक न हो। पारदको धारण करने वाला पदार्थ गन्धक है। गन्धकमें पारेको धारण करनेकी पूर्णक्षमता है, यह सृष्टिका बीज है, अखिल विश्व पारदसे अनुस्यूत है। यांत्रिक क्रियाओंमें पारदका स्थान ऊंचा हो सकता है। यदि रेडियम यूरेनियममें से पारदीय शक्ति विघटित करदी जाय तो अव शिष्ट कुछ नहीं होगा। शक्ति वास्तवमें पारद ही है। शायद विश्वमें अन्यतम ऐसी कोई शक्ति नहीं होगी जो पारद के सामने टिकसके, कमी केवल अनुसंधानकी है।

लोगोंकी रहस्य वादी नीति, ने इस ज्ञानको संसार की आंखोंसे आज तक छुपाया, अब हमें विश्व कल्याण के हेतु गंभीर अन्वेषण करने चाहिये। अस्तु—

"पारदः पारदोऽयम् अथवा पारं ददातीति पारदः" किसी भी प्रकारके दुःख दैन्य अभावोंसे दूर करदे वह परमात्म शक्ति पारद है। सौर मंडलके सारे गृह जिनका प्रभाव अच्छा और बुरा आकर्षण अपकर्षणके द्वारा भूमंडलपर पड़ता है वे जिस शक्तिके द्वारा भूमंडल पर प्रभाव दर्शित करते हैं, उस शक्तिकी अभिव्यक्ति पारद रूपमें होती है।

वास्तवमें तो विश्वके समस्त शक्ति केन्द्र पारदके द्वारा ही चालित हैं। सुतरां पारदीय शक्तिसे इतर कोई भी उपकरण अपना कार्य नहीं कर सकते। मानव एवं मानवेतर प्राणी; सबके शरीरोंमें वीर्य एवं ओज मय पारदकी अवस्थिति होती है। अथच पार्थिव पदार्थों एव वनस्पतियोंमें वीर्य रूपसे पारद अवस्थित है। उस महान पारदसे कोई भी ऐसा कार्य नहीं जो कि संपन्न न हो सके, आवश्यकता है केवल खोजकी। इसके लिये हमारे पूर्वजोंने बहुत कुछ किया और ऐसे कार्य किये जो कि अन होने थे. काल गतिके दुष्प्रभावसे वे सारी श्रृंखलायें टूटकर कड़ियां बिखर गईं, उन कड़ियोंको जोडना आज हम सबका कर्तव्य है। इसमें सामूहिक कार्य, खोज एवं संघटनकी आवश्यकता है। पारदका वर्णन रस ग्रंथोंमें युक्ति पूर्वक मिलता है।

तेजो मध्ये स्थितं सोमः सोम मध्ये हुताशनः।
अग्नि मध्ये स्थितं सत्वं सत्वमध्ये तथाऽच्युत'॥

समस्त संसारका संचालक सूर्य है सारे ब्रह्माण्ड को सौर जगत्के नामसे पुकारते हैं। हमारे भारतीय विज्ञान वेत्ता मानते हैं कि सूर्यका सार स्वरूप चंद्रमा

है और चंद्रमाका सार स्वरूप अग्नि है तथा अग्निका सार स्वरूप पारद है और पारदमें महान शक्ति अच्युत परमात्मा का निवास है।

इस प्रकार मीमांसा क्षेत्रमें पारद बीज है, (अच्युत) बीजसे संसार वृक्ष उत्पन्न हुवा है। इसी बीजका वपन ठीक प्रकारेण किया जावे तो कई प्रकार की सृष्टि हो सकती है। और उसके द्वारा कई प्रकारके उत्कृष्ट फलों की प्राप्तिकी आशा है। "रसोवैसः" रस परमात्माको माना गया है।

पारद अच्युतके द्वारा उद्भूत होनेसे रस संज्ञा वाला है। पारद द्वारा षड्रसोंकी अभिव्यक्ति होती है।

पारदः षड्रस' स्निग्धस्त्रिदोषघ्नो रसायनः।
योगवाही महावृष्य' सदा दृष्टिवलप्रदः॥

अर्थ—पारद, मधुर अम्ल, कटु, तिक्त, कषाय, लवण रसान्वित, स्निग्ध, त्रिदोषघ्न, रसायन, योग-वाही, महा वृष्य, दृष्टि और बल को बढ़ाता है।

विशेष—पारद षड्रसोका जनक दैहिक, दैविक, भौतिक क्लेशोंको दूर करने वाला, सामान्य दृष्टि व अध्यात्म दृष्टिको बढ़ाने वाला एव सम्पूर्ण प्रकारकी शक्तिका उद्भव कारक है। पारद, सकल रोग पारदो। देहस्य शुद्धिं कुरुते च पारदो, नानागदानां हरणे समर्थ.। करोति पुष्टिं हरते च मृत्युं, कल्पायुषं चैव करोति नूनम्॥

अर्थ—पारद देहकी शुद्धि करके नाना प्रकारके रोगोको दूर करता है। चिरजीवन दाता तथा मृत्यु हारक एवं पौष्टिक है।

पारद मनुष्य शरीरमें सत्व रूपमें रहता है, वही सत्व हृदयस्थ होकर मनोभावोंमें विशेष रागका प्रजनन करता है, उससे भिन्न भिन्न विभाव, अनुभाव, संचारी भावोंका जन्म दाता होकर दश रसोंकी अभिव्यक्तिका कारण बनता है। वह वीर, रौद्र, बीभत्स, भयानक, शृंगार, करुण, शांत, अद्भुत, हास्य, वात्सल्य, आदि के द्वारा सृष्टिका रंजन करता है। और विकास करके आत्माको परमात्म तत्वके संयोग करानेमें सहायक होता है।

पारदके विषयमें प्राचीनोंने खोजकी और पूर्ण सफलता प्राप्तकी, उस सफलताका मूल था तपस्या। उन्होने प्रकृतिका सूक्ष्म अध्ययन किया था, पारदके लिये उन्होंने कहा है।

हरति सकल रोगान्मूर्च्छितो यो नराणां
वितरति खलु बद्धो खेचरत्वं जवेन।
सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्दितः शम्भु बीजं
सजयति भव सिंधोः पारदः पारदोऽयम्॥

उन्होंने नाना धातु और विमानों आदिका निर्माण करके विश्वको पारेकी शक्तिका प्रभाव बता दिया था,

भारतकी पराश्रयताने उस विज्ञानको धुंधला करदिया आततायीयोने अन्धा धुन्ध हत्या काण्डके सिवा भारतीय साहित्यको भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया, जिससे आजके नव्य विज्ञान वेत्ताओंके सामने बड़ी कठिनाईयां आ रही हैं। भारतीय पावन वसुंधरापर उस महान विज्ञानका अस्तित्व फिरसे प्रकट करनेमें लोग जुट रहे हैं। भगवान उन्हें सफलता देकर विश्वके सामने भारतकी शान बढावे। सरकारको चाहिये कि वह पारद विज्ञान वेत्ताओंको इस ओर प्रेरित करे तथा उनको आर्थिक सहायता प्रदान करे। इस विषय में नाथ और सिद्धोंने बड़ी खोजकी थी, उन सिद्धो और नाथोंकी रचनायें इधर उधर बिखरी हुई हैं उनका संचयन करके प्रकाशमें लाना चाहिये। प्रत्येक देश वासीका कर्तव्य है कि वह जितनी भी आर्ष पुस्तकें हैं, (रस सबंधी) उनको जहाँ भी प्राप्त हों उन्हें लेकर प्रकाशन संस्थाओंको देनी चाहिये। इसके लिये निस्वार्थ भावसे उदारताका परिचय देना होगा। अलम्

प्राचीन भूतकालमें संसारकी आबादी बहुत कम थी। भारतमें चारो ओर बड़े बड़े जगंल थे। जब श्री रामचन्द्रजी चित्रकूटसे दक्षिण की ओर जा रहे थे, तब रास्तेमें अति विकट दण्ड कारण्यमेंसे आगे जाना पड़ा था। जिसमें खर दूषण आदि असुरोंका निवास था। एवं उस अरण्यमें हिंसक पशु, डाकू और अन्य दुष्ट जनोंको भी आश्रय मिल जाता था। इसी तरह महाभारतके सुप्रसिद्ध कुरुवंशज चक्रवर्ती सम्राट युधिष्ठिर महाराजके समयमें जनताके लिए कष्टकर एक हजार वर्ग मिल (स्केवर मिल) से भी अधिक विस्तृत खांडव वनका वर्णन महा भारतमें है। वह इन्द्रप्रस्थसे थोड़ी ही दूरी पर था। इस प्रकारके वनोंसे जनताको घोर कष्ट होता रहता था, तथापि वनोंसे लाभ भी बहुत मिलता था। दोनों ओरका विचार करके महर्षिगण वनका नाश न करने की सलाह देते थे। इसी हेतुसे सुरक्षित रहते थे।

वनमें बड़े बड़े वृक्षोंके हेतुसे देशमें अधिक वर्षा होती थी। घासकी उत्पत्ति अधिक होनेसे पशुओंको विपुल मात्रामें चारा सरलता पूर्वक मिल जाता था। वायु मण्डलमें उत्पन्न हानिकर दुर्गन्ध या आंगारिक वायुका वृक्षों द्वारा शोषण हो जाता था। जिससे जन. समाजको स्वच्छ प्राण वायु प्रधान; वायु मिलती रहती थी। वैद्य समाजको आवश्यक परिपक्व औषधिया सरलता पूर्वक मिल जाती थी। देवोंके पूजन-अर्चन आदिके निमित्त भक्तोंको पुष्प मिल जाते थे। ये सब लाभ थे।

हिंसक पशु कभी कभी पशु और मनुष्यको भी मार देते थे। डाकू और दुष्टोंको छिपनेका स्थान मिलता रहता था, परिणाममें समीपके छोटे छोटे ग्रामो को रात्रिके समय जलाना, लूटना, चोरी करना, धर्म प्रचारकोंको आश्रय देने वालोको मार देनेके निमित्त अकस्मात् आक्रमण होनेके उदाहरण मिलते हैं, यह हानि थी।

श्रुति भगवती ने कहा है कि—

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥

किसी समय दूर्वाको नमस्कार करते है, कभी तिलकी स्तुति करते है। किसी स्थान पर शमीका पूजन करते है, अश्वत्थको विष्णु भगवान्‌की प्रतिमा मानकर पूजते हैं। इस तरह वनौषधियोको भी ब्रह्मके प्रतीक माना था। ऐसी अवस्थामें वनका नाश कैसे हो सके? त्रास जो हो रहा था, समाज सहनकर रहा था।

उपर्युक्त लाभ और हानि दोनो ओरका विचार करके तथा श्रुति कथित मर्यादाके पालनार्थ धर्माचार्योंने वृक्षोको काटना और अरण्योंका नाश करना, इन दोनों कार्योंको महा पाप रूप दर्शाकर निषेध किया था। किन्तु रामायण कालके पश्चात् महाभारतकालके आगमन तक आबादी काफी बढ गई थी। ग्रामवासी और नगर निवासी जनोको आवश्यक निवास स्थान नही मिलता था। इस कठिनाईका विचार महाभारत कालके आचार्योंको करना पड़ा था। फिर श्री कृष्ण भगवान्, अनेक मुनिजन और पितामह भीष्म आदिने विचारणा की। तत्पश्चात् खाण्डव बन जलाकर जनता के कष्टको दूर करनेकी आज्ञा महामहारथी अर्जुनको दी।

अर्जुनने खाण्डव वनको जला दिया और महा यज्ञ करके अग्नि देवको प्रसन्न किया। दुष्टोंका और

हिंसक पशुका त्रास दूर हुआ, जनता सुखसे निद्रा लेने लगी। किन्तु उस कर्तव्यका अनुकरण अन्यत्र होने लगा। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी ने भगवद् गीता में कहा है कि :—

यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

जिस तरह समाजके महा पुरुष बर्ताव करते है, उस तरह उनके अनुयायी जन भी बर्ताव करने लगते है। जिसे महापुरुषने प्रमाण माना, पुण्यकर्म या विश्वोपकारक माना, उसे सामान्य जनता भी हितावह और पुण्य प्रद मानकर कार्यान्वित करती है।

इस नियमके अनुरूप खाण्डव वनके नाशके पश्चात् शनैः शनैः सर्वत्र वनोका नाश होने लगा। करीब २००० वर्ष पूर्व वनोंकी अधिक परिणाममें कमी हो जानेसे वैद्य समाजको आवश्यक दिव्य औषधियोंकी प्राप्तिमें अन्तराय आने लगा। कई औषधियोंका अभाव हो गया कई औषधियां दूरसे अति परिश्रमसे लानी पड़ती थी। जिससे काष्ठौषधियोंके चिकित्सकोंके लिए सेवा कार्यमें और जीवन निर्वाहके मार्गमें विघ्न उपस्थित हुआ।

भगवान् आत्रेयके कथन अनुसार चिकित्सकोंको देश, काल, प्रकृति, दोष विकृति, वंशागत विकृति, ऋतु आदिका विचार रोग चिकित्साके प्रारम्भमें करना पड़ता है। औषधियोंके गुणधर्मका सुमेल होता है या नहीं ? यह भी देखना पड़ता था, मात्रा भी अधिक देनी पडती थी। औषधि बहुधा बेस्वादु होती थी। फिर भी जनता सहन कर लेती थी, आवश्यक औषधियो का अभाव हुआ, यह बड़ा भारी विघ्न माना गया।

जनतामें इन्द्रियदमन और मनका संयम, ब्रह्मचर्य का यथोचित पालन ये सब शनैः शनैः कम होता जाता था, भोग विलासकी भावना समाजमें बढती जाती थी। राजाओंमें परस्पर राग, द्वेष ईर्ष्या, अभिमान और स्वार्थ नीति आदि दुर्गुण आने लगा था। आबादी विश्वकी बढ रही थी। काल प्रभावसे उपर्युक्त कई कारण एक साथ उपस्थित हो जानेसे रोगियोंकी संख्या में वृद्धि होती जाती थी।

रोगियोकी संख्या बढ़नेके साथ चिकित्सकोंकी संख्या बढ़े तो योग्य सेवा कार्य हो सकेगा। किन्तु सब चिकित्सक अति सूक्ष्मतम विचार कर सके वैसे महा बुद्धिमान, विशाल स्मरण शक्ति वाले, उदारचित्त और निःस्वार्थी हों, यह आशा नहीं रख सकते। इन सब कारणोसे आत्रेय प्रणाली वाले वनौषधियोंके चिकित्सकोका मार्ग कण्टकाच्छादित बन गया।

भूतकालमें, दीर्घकाल पर्यन्त रसचिकित्सकोंका योग्य संमान समाजमें नहीं हुआ था। जिससे रस चिकित्सक विशेष अन्वेषण भी नहीं करते थे। किन्तु काष्ठौषधियोंके वैद्योके मार्गमें अन्तराय आ जाने पर उनको आजसे २००० वर्ष पहले मौका मिल गया था। उन्होंने अपनी चिकित्साकी कीर्ति और स्तुति चारो ओर फैलानेका भगीरथ प्रयत्न किया। वे निम्न भाव वाले वचन जनताको सुनाने लगे :—

उत्तमो रसवैद्यस्तु मध्यमं मूलिकादिभिः।
अधमः शस्त्र दाहाभ्यां सिद्ध वैद्यस्तु मान्त्रिकः ॥
अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेर प्रसंगतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः ॥
न दोषाणां न रोगाणां न पुंसाञ्च परीक्षणम्।
न देशस्य न कालस्य कार्यं रसचिकित्सते ॥

चिकित्सक कई प्रकारके है। इनमें रस वैद्य उत्तम, काष्ठौषधियों वाले मध्यम कोटिके, शस्त्रसे बिना विचार काट देने और अंगोंको दग्ध करने वाले अधम। जो मन्त्र शास्त्रका अनुसरण करके, बिना औषधि मात्र आशीर्वाद या संकल्पसे लाभ पहुँचाते है, वे सिद्ध वैद्य माने जाते हैं। अन्य चिकित्सकोंकी अपेक्षा रसवैद्यो के भीतर सिद्ध वैद्य अधिक होते थे।

रस चिकित्सा अधिक सुविधाप्रद है। कारण, मात्रा अल्प लेनी पड़ती है, औषधि सेवन करनेमें अरुचि नहीं आती। आरोग्य प्रदान जल्दी करती है। हानि का भय नहीं है, अतः इतर चिकित्साओ की अपेक्षा रस चिकित्सा विशेष महत्त्वकी और हितकारक है।

रस चिकित्सा वैद्योंको और रोगियोंको भी सरल है। इसमें वात पित्त, कफ आदि दोष विकृति, रोगकी सूक्ष्मावस्था, रोगियोंके वंशागत रोग या अन्य स्थिति सम्बन्धी विचार तथा देश-कालका विवेक आदि कुछ भी महत्व नहीं रखते। सामान्यत: विवेक करके चिकित्सा कर सकते है।

इस तरह रस चिकित्साके परिणाम, कीर्ति, मात्रा आदि तथा कम राखनेकी आवश्यकता इन सब कारणोंसे काष्ठौषधियोंके चिकित्सकोंको अधिक विचारमें डाल दिया। भावी जीवनके लिए सब सोच विचार करने लगे। फिर अन्तमें इस प्रकारके विशेष निर्णय पर आ गये, जैसे जैसे रस चिकित्साका अपनेको अनुभव मिलता जाय, अपने शास्त्रसे विरोध न आवे, उतने उतनेको अपनी चिकित्सामें स्थान देते जायें। इस तरह विविध रोगोंकी चिकित्सार्थ कई रस प्रयोगों और रस क्रिया विधिको अपना लिया। उसके अनुरूप दोनों चिकित्साको स्थान देने वाले कई ग्रन्थ निर्माण हुए। इस तरह रस चिकित्साको प्रधानता मिल गई। फिर श्री वनौषधि चिकित्सा बिल्कुल दूर कर दी जाय, तो केवल रस चिकित्सासे कार्य नहीं चल सकता। अनुपान रूपसे वनौषध द्रव्योंका आश्रय लेना पड़ता है। भावनाओंके लिए वनौषधियोंके रस, क्वाथ आदि की योजना करनी पड़ती है। इस हेतुसे अनुभव के अनुसार जनताको समझाया गया कि रस चिकित्सा यह दक्षिण हस्त है तो वनौषध चिकित्सा, यह वाम हस्त है। बिना दोनो हस्तोंकी सहायता चिकित्सा सरल नहीं हो सकेगी। जैसे रथ दो चक्रोंके आधारसे चलता है, वैसे चिकित्सा भी दोनों कोटिकी औषधियों के आश्रयसे सरल बनती है।

उपर्युक्त प्रतिज्ञा वचनमें मन्त्र विद्‌को सिद्ध वैद्य दर्शाया है। इस सम्बन्धमें नव्य शिक्षा-दीक्षासे विभूषित विद्वानोंको भ्रम होने की सम्भावना है। वे कदाच इसे गप भी कह देनेका साहस करेंगे। उनके प्रति निवेदन है कि मनोबल (Will power) द्वारा रोगियोंको लाभ पहुँचानेकी विशेष विद्या है। पाश्चात्य प्रदेशके मेस्मे-राइज विद्या वाले कई चिकित्सक भी यह कार्य भिन्न विधिसे करने लगे है। पौर्वात्य और पाश्चात्य विधि में अन्तर है। दोनोकी भावनामें भेद है। पौर्वात्य वाले निष्काम सेवा करते थे, पाश्चात्य प्रदेश वाले स्वार्थ निमित्त व्यवसाय करते है। फिर भी दोनोंमें मनोबल की आवश्यकता रहती है।

मुझे भी इस विद्याका अनुभव मिला था। १९१८ से १९३५ तक मैंने भी प्राचीन विधि द्वारा सेवा कार्य किया था, अनेकोंको लाभ पहुँचाया था। मेरे प्रसंग का विवेचन नहीं करूंगा। विशेष विश्वास दिलानेके के लिए देश प्रसिद्ध महानुभाव राजर्षि पर हुए प्रयोग का उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ।

भूतपूर्व मेवाडाधिपति महाराणा फतेहसिहजी एक बार बीमार हो गये थे। ज्वर बना रहता था, ४-५ दिन तक १०२° से बढकर १०४° डिग्री स्थिर हो गया था, फिर कम नहीं हो सका था। उस समय सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध ख्याति लब्ध महारथी बाबा भाई अचल जी के कुटुम्बी राजवैद्य रूपसे महाराणाका उपचार करते थे। अन्य प्रसिद्ध विद्वान् अनुभवी वैद्य, हकीम साहिब, उदयपुर स्टेटके डाक्टर साहिब आदि उपस्थित थे। ज्वर कम न होने से सब चिन्तातुर हो रहे थे। हृदय पूर्वक सब विचार कर रहे थे। उस समय श्री महाराणाके उत्तराधिकारी युवराज श्री भूपालसिहजीने इस भयप्रद अवस्थासे चिन्तित होकर सिविल सर्जन साहिबको भी बुला लिया था। परिस्थितिका सब चिकित्सकोंने अनुभव किया था। फिर उपचारार्थ विशेष विचारणा करने लगे थे। ऐसी अवस्थामें महाराणा साहिबने स्पष्ट कह दिया कि अब मुझे औषध सेवन नहीं करना है। परिणाममें सब विशेष दुखी हुए। क्या करना, यह विवेक नहीं कर सके।

उस समय महाराणा साहिब ने गाड़ी एक जैन यति, जो मन्त्रविद् थे, उनको बुलानेको भेज दी थी। वे ५-७ मिनटके भीतर आ गये। महाराणा साहिबकी ज्वरावस्थाको दूसरोंके कथनसे समझ लिया था। उपचार क्या हो रहा है, यह भी जान लिया था।

कौन कौन चिकित्सक आये हैं, यह देख लिया था। फिर जैन यतिश्री को महाराणा साहिब ने कहा, मैं आपसे उपचार कराना चाहता हूँ। उनने नम्रतासह निवेदन किया कि अन्न दाता, इन सब यशस्वी अनुभवी महा महारथी चिकित्सकोंके समक्ष मैं तो तुच्छ हूँ, आप इनको मोका देनेकी कृपा करें। फिर भी महाराणा साहिबने साग्रह कहा, मै तो आपको ही कष्ट देना चाहता हूँ।

यतिश्री ने एक टोकरीमें मकई ५-१० सेर मंगायी एक रजाई नयी मगवायी। तत्काल दोनो वस्तु आ गई। मकईमेंसे थोड़ी लेकर महाराणा साहिबके हाथ में दी। १ मिनट बाद टोकरीमें डाल देनेका निवेदन किया। उस पर रजाई ढक दी। १०-१५ मिनट बाद महाराणा श्री को स्वेद आ गया। उस समय यतिजी महाराजने डाक्टर साहिबसे ज्वर नापनेका कहा। १०४° से घटकर १००° हो गया था। ३-४ मिनट और व्यतीत होनेपर ९८° हो गया था। स्वेदसे कपड़े, बिस्तर आदि भीग गये थे। मुखमुद्रा प्रसन्न भासने लगी थी। उस समय देहको विधिवत् पोछकर वस्त्र बदल दिये गये। रजाईमें कम्पन हो रहा था। उस समय १०१ गौ बुलाई गई। महाराणासे सकल्प करा सबको दान दे दिया, मकई और रजाई गरीबोंको दी। गौका दान विद्वान् ब्राह्मणोंको दिलाया। फिर ५-१० मिनट ठहरकर वापस चले गये। चिकित्सक मण्डलकी चिन्ता दूर हुई, सब प्रसन्न हुए; किन्तु लज्जित भी हुए।

इस प्रकारके सिद्ध वैद्य वर्तमानमें भी कोई कोई मिल जाते हैं तथापि मिथ्या भाषी कितनेक सिद्ध वैद्य बन बैठे है। कई मलीन मन्त्रोंका आश्रय लेकर झाड़ना, फूकना, धूप देना आदि उपचारमें लगे हैं। दैवी विद्या के उपासक अति कम हैं। परिणाममें समाजका विश्वास वर्त्तमान वाले मन्त्र विदोंपरसे कम हो गया है।

यद्यपि रस चिकित्सकोंके लिए मनोबल प्राप्त करना सरल है। कारण, रसायन गुणके निमित्त पारद सेवन करने पर देहकी सुदृढ़ता, योवनकी पुनः प्राप्ति, मनका एकाग्र होकर निर्मल होना, स्मरण शक्ति दिव्य बनना आदि लाभ मिल सकते है। किन्तु रसायन सेवन करना सरल नहीं था। रसायन सेवन जिज्ञासु बनने और पारमार्थिक कल्याणके निमित्त जीवन समर्पित करने पर हो सकता था यह सबके लिए सरल नहीं है। भोग विलासकी भावना, ५ ज्ञानेन्द्रियोंके विषय सेवनकी लालसा बिना उपरामता आये नष्ट नहीं हो सकती। इस हेतुसे मन्त्रविद् बनने वालोंकी संख्या क्रमशः कम होने लगी थी।

रस चिकित्सकोंने जो प्रतिज्ञा वचन "न दोषाणां न रोगाणां न पुसाञ्च परीक्षणम्।" पुकार करके कहे थे उनके निर्णयार्थ भी वैद्योंको विशेष विचार करना पड़ा।

उक्त वचनों को ब्रह्माणीके शब्द मानकर विवेक नेत्रको निमिलित करके रस चिकित्सा नहीं की जाती उतना ही सत्य मान राकेंगे, कि अति सूक्ष्म सूक्ष्म प्रश्नों द्वारा विशेष छान वीन करनेकी आवश्यकता नहीं है। उतना मात्र स्वीकार है, कि अत्यधिक परीक्षा न करें; तथापि सर्वांशमें विवेक हीन नहीं बनना चाहिए अन्यथा रोगीको लाभ नहीं पहुँचा सकेंगे, क्वचित् विपरीत हानि भी पहुँच जायगी। इस सम्बन्धके कई अनुभूत उदाहरण देकर इस विषयको विशेष स्पष्ट करता हूँ।

(१) किसी रोगीको ज्वरकी पूर्वावस्थाके कारण निर्बलता, शिरदर्द, अंगमर्द आदि लक्षण उपस्थित हुए थे, तब तत्काल आम विषको दूर करनेकी आवश्यकता है। उस मार्गको न अपनाते हुए किसी अबोध विद्यार्थी निर्बलता दूर करनेके उद्देश्यसे शक्तिवर्द्धक श्रेष्ठ रसौषधि दे देगा, तो औषधि दिव्य होने पर भी रोगीका अकल्याण ही होगा। आम विष प्रकुपित होकर ज्वर बढ जायगा।

(२) मानो कि एक रोगी सन्निपातसे पीड़ित है। मस्तिष्कमें उष्णता अत्यधिक बढ गई है, दोनो चक्षु लाल-लाल हो गये हैं। लघुशंका बहुत कम होती है, मूत्रका वर्ण लाल-पीला हो गया है, उसमेंसे दुर्गन्ध आती है, रोगी घोर व्याकुलताका अनुभव कर रहा

है, निद्रा देवी कृपा नहीं करती। ऐसी अवस्थामें कोई चिकित्सक लक्षणों पर लक्ष्य दिये बिना समीरपन्नग, पूर्ण चन्द्रोदय, कालकूट या अन्य वात पित्तवर्द्धक रस दे देगा, तो रोगी आयु शेष होते हुए भी धर्मराजका अतिथि बन जानेकी भीति रहेगी।

(३) किसी रोगीको आम प्रकोपके हेतुसे दुर्गन्ध मय कच्चे अतिसार हो रहे हों, ज्वर भी साथमें कुछ अंशमें हो, बार बार पतला शौच होता रहता हो। इस हेतुसे रोगी अतिक्लान्त हो गया है, ऐसा मान कर उसकी इच्छानुसार कष्टको शीघ्र कम करानेके निमित्त चिकित्सक अधिक छानबीन न करते हुए अहिफेन प्रधान कर्पूर रस पूर्ण मात्रामें दे देवें। इतर ग्राही औषधि दे देवें, तो रोग विशेष उग्र बन जायगा, क्वचित् आम विष अत्यधिक कम हो गया हो, कुछ शेष रहा हो, तो उस समय शान्ति मिल जायगी। किन्तु कालान्तरमें पुनः ज्वर, अतिसार, रक्तविकार या चर्मरोगकी सम्प्राप्ति हो जायगी।

(४) कई रोगी ऐसे आये हैं, जो यकृत् निर्बल होने पर भी घृत, तैल, तैल प्रधान बादाम, पिस्ते आदि तले हुए पदार्थ, मिठाई और और अन्य पौष्टिक भोजन अधिक मात्रामें करते रहते है। उनकी मान्यतामें यही रहता है कि अधिक घी खानेसे निर्बलता नहीं सतायगी, किन्तु यह भ्रम है। जो भोजन यथोचित पचन नहीं होगा, उसमेंसे आम विष ही बनेगा। वह पोषण नहीं कर सकेगा; विविध उपद्रव उपस्थित करेगा।

अधिक मात्रामें घृत-तैल होनेपर यकृत् और वृक्कों के ऊपर अनावश्यक बोझा पड़ेगा। यकृत् काम न देने पर आमाशयके अम्ल पित्तका रूपान्तर नहीं होगा। रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल हो जायगी। आमाशयके पित्तका प्रवेश रक्तमें होकर वात नाड़ियोंमें मिलेगा। परिणाममें हाथ पैरोंकी वातनाड़ियां घोड़ेकी लगामके समान खिचने लगेंगी। फिर वृक्कका कार्य भी बढता है। रक्तमेंसे मूत्र विषको बाहर फेंकनेका कार्य यथोचित नहीं होता, मूत्राशयकी स्थिति दयनीय बनती जाती है। उग्र बने हुए मूत्रका धारण मूत्राशयसे अधिक समय नहीं होता। जिससे बार बार पेशाब होता रहता है। रात्रिको भी लघुशंकाके हेतुसे दो चार बार निद्रा भंग होती है। मस्तिष्कमें विष प्रवेश होने पर शान्त निद्रा नहीं मिलती। लम्बे अरसे तक लेटना पड़ता है। फिर भी स्फूर्ति नहीं आती। आंखोंमें भारीपना बना रहता है। कईयोको तन्द्रा सताती है। प्रसन्नता मुख मण्डल पर प्रतीत नहीं होती।

(५) प्रायः अधिक घृत तैल सेवन करने वाले साथ साथ सिगारेट, गरम गरम चाय, अधिक मिर्च आदि सेवन करते रहते हैं। अधिक पाचन चूर्ण, गुटिका आदिका भी बार-बार उपयोग करते हैं। फिर भी उन सबको अपचन सताता है। कईयोको उदावर्त (गेस बढना) हो जाता है। उदावर्तमें २ प्रकार हैं। आमाशय शिथिल बननेपर डकार शुद्ध नहीं होती। अन्त्र शिथिल हो जानेपर अपान वायु बाहर नहीं निकल सकती। किसी किसीको आमाशय और अन्त्र दोनोमें विकृतिकी प्राप्ति होती है। दोनो भागोंमें वायु प्रकुपित होती है। फिर हृदयको धक्का पहुँचता रहता है। कृत्रिम हृच्छूल (स्युडो एन्जाइना पेक्टरिज) उपस्थित होता है। फिर भी भूल नहीं सुधार सकते कारण, सच्ची सलहा नहीं मिलती।

यकृत् निर्बल हो गया हो, तो औषधि यकृत्की सबल बनाने वाली लेनी चाहिए। ताम्र भस्म, पारद, तुत्थ भस्म, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, पिप्पला मूल आदि में से अनुकूल औषधिका उचित मात्रामें सेवन करना चाहिए। एवं आग्रह पूर्वक पथ्य पालन करना चाहिए आवश्यकता पर आमाशय पित्तको कम करानेके लिए क्षार भी भोजनके ३ घण्टे बाद दिया जाता है।

(६) क्वचित् वातरोगसे पीडित रोगीको असह्य वेदना होती रहती है। इनमेंसे कई रोगी जीर्ण अम्ल-पित्त और ग्रहणी रोग युक्त भी होते हैं। उनको यदि उग्र औषधि मल्ल, ताल, शिला, या अन्य पूर्ण मात्रामें दी जायगी, तो वेदना बढ जायगी, निद्रानाश होगा और वातरोग दृढ़ मूल युक्त और सबल बन जायगा। लक्षणानुरोधसे योगेन्द्र, बृहद् वात चिन्तामणि या

सूतशेखर, कामदूधा, प्रवाल पञ्चामृत आदिकी योजना विचार पूर्वक करनी चाहिए। दही, चावल, अम्ल द्रव्य, तीक्ष्ण (उत्तेजक भोजन, उत्तेजक औषधोपचार) सबसे हो सके तो दूर रखें। अन्यथा हो सके उतना कम करा देवे, पथ्य पालनकी व्यवस्था करनी पड़ेगी लक्षणों परसे औषध निर्णय करना पड़ेगा। उदरको शुद्ध रखना पड़ेगा। उत्तान आम दोष हो तो बाहर फेंकें। लीन विष हो तो पाचन करावें। साहस करके आंख मूंदकर औषध व्यवस्था न करें। ऐसे कम अनुभवी कई चिकित्सक मुझे मिले हैं, जो शास्त्रके आधार से किन्तु विना विवेक किये चिकित्सा करने लगते हैं। कईयोंको भूल सुधारनेका मार्ग दर्शाया है। तैल मर्दन का लाभ समझाकर महा विष गर्भ, नारायण तैल, बला तैल आदिकी लक्षण दृष्टिसे सूचनाकी जाती थी।

(७) कुछ समय पहले एक विद्या वृद्ध, सरल हृदय के चिकित्सक महोदय पधारे थे। वे एक शुष्क कास पीड़ित रोगी को उत्तेजक औषधि दे रहे थे। कई औपधि बदल बदल कर दी थीं। फिर भी लाभ नहीं हुआ था, उनको सद्भाव पूर्वक निवेदन किया कि उत्तेजक औपधि बन्द करें। शामक उपचार प्रारम्भ करें। मुक्ता, प्रवाल, शृंग भस्म, टंकण, सितोपलादि, इनको मिला कर एलादि मंथके साथ या घृत-शहदसे देकर अनुभव करें। हिंगुल प्रधान औषधि, चन्द्रोदय, रस सिन्दूर, तालसिंदूर, अभ्रक भस्म, सोंठ, पिप्पली, कालीमिर्च आदि औषधियोंको साथमें न मिला देवें। उत्तेजक औषधि मिला दी जायगी, तो शामक उपचार से यथोचित लाभ नहीं होगा, भ्रान्ति हो जायगी। दिव्य रसौपधिकी प्रधानता होने पर भी विवेक न करने से रोगीको कष्ट बढ रहा था, ऐसा अनुभव किया गया था।

(८) करीव २० वर्ष पूर्व मैं बरारमें गया था, तब एकवार कई सम्प्रदायके आचार्य मेरे पास उपचारार्थ उपस्थित हुए थे। वे शुष्क कास से अति पीड़ित थे। रात्रिको शान्त निद्रा नहीं ले सकते थे। किसी पूना वासी चिकित्सककी सल्हाके अनुरूप रात्रिको सोनेके समय गरम मसाला और सोंठ मिली हुई गरम गरम चाय पीते रहते थे। फिर २-३ घण्टे प्रस्वेद आकर कुछ शान्ति अनुभव करते थे, पिछली रात्रि कष्ट पूर्वक बैठकर निकालते थे, उनका कष्ट देखकर दया आई। आहार, पथ्यापथ्य, व्यसन, औषधोपचार आदिकी व्यवस्था सुनी। तले हुए पदार्थ, गरम गरम चाय, इन का सेवन अज्ञान वश करते थे, औषधि भी उत्तेजक लेते थे। उनकी गरम गरम चाय बिल्कुल बन्द करा दी। भोजन लघु, पथ्य लेनेकी सूचना की। उत्तेजक औषधके स्थान पर शामक औषधि सितोपलादि मिश्रण घी-शहदसे दिनमें ३ बार लेनेका प्रारम्भ कराया था। १ सप्ताहके पश्चात् वे मिले थे, शान्त निद्रा लेते थे, प्रसन्न चित्त थे। स्वास्थ्य सुधारनेकी चाबी उनके हाथ में आ गई है, ऐसा उनने कहा था।

(९) भूतकालमें अम्लपित्तसे पीड़ित नव्य शिक्षाके प्रोफेसर बम्बई शहरमें सल्हा लेनेके लिए आये थे। पूछनेपर विदित हुआ कि सिगारेट, गरम-गरम चाय दही, खटाई, तले हुए पदार्थ, चावल ये सब सेवन करते थे, ब्रह्मचर्यका पालन भी यथोचित नहीं कर सकते थे। रोग १५ वर्षका पुराना हो गया था। एलौपैथीके डाक्टरोंके चक्करमें थे। आयुर्वेदमें विश्वास नहीं था। हेतु पूर्वक पथ्य पालन करनेका किसीने नही समझाया था। भावी जीवन सुखमय बनानेको वे चाहते थे। मनका संयम, इन्द्रिय-दमन, ब्रह्मचर्यका पालन तथा पथ्या पथ्यकी सम्हाल रखनेका युक्ति पूर्वक समझाया। उनने मान लिया। भूल स्वीकार की। संयमके हेतुसे ६ मास तक मनको अति कष्ट होता रहता था, सब सहन किया। उपचार कहे अनुसार प्रारम्भ किया। जो घोर यातना भोग रहे थे, वे शनै शनैः दूर होने लगी, रात्रिको शान्त निद्रा आने लगी, नाड़ियोंका खिचाव दूर हो गया। आमाशयके पित्तकी उग्रता कम हुई। यकृत् पित्त सबल बना, फिर जीवन पथ्य पालन युक्त संयमी बना लिया। उनको सूतशेखर कामदूधा, अमृतासरव, कुष्माण्डावलेहके साथ प्रातः सायं लेनेका कहा था। भोजन कर लेनेपर तुरन्त आमलकी रसायन, मधुमण्डूर, वराटिका भस्म, वंशलोचन, छोटी इलायचीके दाने तथा मिश्री मिलाकर जल

से सेवन करनेकी सूचना की थी, भोजनके ३ घण्टे पश्चात् कच्चे नारियलका जल लेनेका आदेश दिया था।

(१०) १५ वर्ष पहले एक बार एक नेत्र चिकित्सक से अकस्मात् मिलनेका योग आ गया था। सब रोगो के नाश और दृष्टि वृद्धिके निमित्त औषध द्रव्योंको मिलाकर खरलमें ३-४ दिनसे मर्दन करा रहे थे। प्रयोग नया ही आरम्भ कराया था। वे मुझे पूछने लगे, उसमें अब कौनसा द्रव्य मिला लेवे, तो गुण वृद्धि हो सकेगी। मुझे नम्रता पूर्वक उत्तर देना पड़ा, कि यह नेत्राञ्जन सदोष बन रहा है। विकारोंका छेदन कर सके वैसी तीव्र औषधि तथा स्निग्धता पहुँचा सके वैसी दृष्टि वर्द्धक औषधि, दोनों एक साथ नहीं मिलायी जायगी। जैसे मलिन वस्त्रको धोनेके लिए पहले साबुन क्षार आदि लगाया जाता है। फिर रंगनेकी क्रिया होती है। साबुन रंग, दोनो एक साथ नहीं मिलाये जाते, उस तरह नेत्राञ्जनके बनानेमें भी विवेककी आवश्यकता है। शास्त्र दर्शित मार्गका अनुसरण करना पड़ेगा।

(११) एक धनिक विद्वान् रोगीसे ८-१० वर्ष पहले वार्तालाप करनेका प्रसग उपस्थित हुआ था। वे सिगा-रेट, गरम गरम चाय, गरम गरम भोजन, बर्फ जैसा रेफ्रीजरेटरमें रखा हुआ ठण्डा जल, आइस्क्रीम आदि सब ले रहे थे। शीत पित्त उनको सताता था। रात्रिके समय बहुधा अधिक संतप्त होते थे। ऐलोपैथीका उपचार काफी कराया था। उनको समझाया, कि शीत पित्तकी उत्पत्ति आमाशयके विकारसे होती है। आमाशयका पित्त तीव्र बनकर अन्त्रमें न जाते हुए जब रक्तमें प्रवेश करने लगता है, तब शीत पित्तका प्रारम्भ हो जाता है। गरम गरम चाय, गरम गरमभोजन और अति शीतल पदार्थ, सब छोड़ें। सादा भोजन हाथ लगाने पर गरम न लगे वैसा करें। निवाया या शीतल किया हुआ दूध एक एक घूंट करके पीवे। बाहरसे अधिक ठण्डी न लगने देवे, तो औषधि कार्य करने लगेगी। त्रिफला का हिम कुछ दिन सेवन कराया, उतनेसे उनका रोग विदा हो गया था।

(१२) एलोपैथीके विद्वान् सर्जन सामान्य विकृति होने पर भी शरीरका अमुक अंग निकलवा देने की सलहा देते हैं। एक आंख, पैरका कुछ हिस्सा, या हाथका हिस्सा काट देते है। ४-५ वर्ष पहले एक धनिककी २८ वर्षकी पुत्री मेरे पास आई थी। उनकी एक आंख निकलवा देनेकी सलहा डाक्टरोने दी थी। ६ डाक्टर इकट्ठे मिले थे। एक की सलहाकी फीस १००) रु० थी, औरोकी कम कम फीस थी। वह बाई, उनके पति, माता-पिता, कुटुम्बी. सब चिन्तित हो रहे थे। विलायतकी विशेष हॉस्पिटलमें बेड रिक्त रखनेके लिए तार कर दिया था। एरो प्लेनके लिए नाम लिखवा दिया था। २-२॥ मास बाद योजना हो सकेगी, ऐसा अनुमान था। ऐसी परिस्थितमें मुझे मिले थे। मैंने उनको सान्त्वना दी। पथ्य पालन करनेका तथा चेरवाटु औषधि सेवन करनेकी सलहा दी। उनने मान लिया। उसी दिनसे त्रिफला घृत, त्रिफला हिम पीना, त्रिफला हिमसे नेत्र धोना, लघु पथ्य भोजन करना, ये सब प्रारम्भ हो गया। १-१॥ मासके भीतर जो पुतली ऊपर उठ आई थी, वह यथा स्थान बैठ गई। डाक्टरोसे पुनः नेत्र परीक्षा करायी। पूर्ण स्वस्थता नेत्रमें आ गई है, वैसी रिपोर्ट मिली।

(१३) उसी तरह ५० वर्षके भीतर कई रोगी विद्रधि पीडित मिले हैं। डाक्टरोंने अस्थिक्षय Bone (T. B) कहकर पैरके कुछ हिस्से कटवा देनेकी कईयोने सलहा दी थी, उनको पारदादि मलहम और सामान्य पचन संस्थानको शुद्ध रखने वाली औषधिका उदर सेवन तथा लघु पथ्य भोजनके सेवनकी सलहा बार बार दी थी। कईयोको इस तरह लाभ पहुँचा है।

(१४) एक हिक्का पीड़ित एक धनिक १५-२० वर्ष पहले मिले थे। ६ मासमें करीब २०,०००) रु० का खर्च कर चुके थे। उनको मात्र आरोग्य वर्द्धनी सेवन करनेकी सलहा दी। पथ्य पालनका आग्रह किया। २४ घण्टोंमें ही उनके रोगने विदा ले ली थी।

(१५) जयपुरसे एक वृक्क पीडित रोगी सलहा लेने को आये थे। उनको डाक्टरोने एक वृक्क अति शिथिल लम्बा (एन्लार्ज) हो जानेका कहा था। एक सप्ताहमें

ही आपरेशन करके निकलवा देनेकी सलाह दी थी। मैंने उनको प्रातः रात्रिको चन्द्र प्रभा दी। प्रातः९ बजे आरोग्यवर्द्धनी लेनेको कहा था। दूसरी बार शामको ५ बजे आरोग्यवर्द्धनी लेनेको समझाया था। अनुपानमें पुनर्नवाष्टक क्वाथ दिया था। एक सप्ताहके पश्चात् पुनः क्षकिरण (एक्सरे) से परीक्षा करनेपर डाक्टर साहिब चकित हो गये थे। भ्रम तो नहीं होता था। दूसरा फोटो लिया। फिर डाक्टरने पूर्ण संतोष पूर्वक प्रसन्नता दर्शाई थी।

(१६) एक सामान्य कुटुम्बकी ३० वर्षकी आयु वाली स्त्रीको एक फुफ्फुस निकलवा देनेकी डाक्टरोंने सलाह दी थी। फुफ्फुसमें रक्त जम गया है। फुफ्फुस निकलवानेमें भी जीवन हानि पहुँच सकेगी। न निकलवानेमें २-३ मासके भीतर निःसदेह मृत्यु शरण हो जानेकी संभावना है, ऐसा डाक्टर साहिबने फरमाया था। उनको सुवर्ण प्रधान लक्ष्मी विलास, तथा ताप्यादि लोह दिया गया था। मात्र १० दिनके पश्चात् उनके वहां जानेका काम पड़ा था। जो बाई शय्यावश थी, वही द्वारको खोलनेके लिए आई थी। देखकर अति प्रसन्नता हुई थी बाईका स्वास्थ्य सुधर रहा था। डाक्टर साहिबने भी सतोष प्रदर्शित किया था।

इस तरह अन्य भी कई विशेष उदाहरण दे सकते हैं। किन्तु उपर्युक्त उदाहरणोंसे भी गुण ग्राहीको मार्ग दर्शन मिल जाता है। अतः अधिक विस्तार नहीं किया है।

वर्तमानमें तमाखू, चाय, कॉफी, गांजा, शराब, अफीम आदिके व्यसनोंका प्रचार अत्यधिक हो रहा है। इनमें भी सिगारेट और गरम गरम चाय पीना, ये भोगविलासमय जीवन वाले आफीसर तथा धनिकोंको अधिक रुचिकर हो रहे हैं। उनका अनुकरण समाजमें सर्वत्र अधिक हो रहा है। कई चिकित्सक भी इन व्यसनोंसे बद्ध हैं, वे कदापि रोगीको व्यसनसे मुक्त हो जानेका और पथ्य पालनका उपदेश नहीं दे सकते। परिणाममें निर्बल शक्तिवाले जीर्ण रोगोंसे रोगी अपना जीवन महा कष्ट पूर्वक व्यतीत करते रहते हैं।

देहली एवं अन्य बड़े शहरोंमें जानेका कई बार प्रसंग आया है। बड़े शहरोंके धर्मार्थ चिकित्सालयोंमें रोगियोंकी संख्या अत्यधिक प्रतीत होती है। २०० रोगियोको औषधि लिख लिखकर देनी पड़ती है। रोगीने थोडा-सा कहा, पर वैद्यने लिखना प्रारम्भ किया। शान्ति पूर्वक पूरा इतिहास नहीं सुन सकते हैं, पथ्या पथ्यकी योग्य सूचना नहीं कर सकते हैं। कहां कहांसे क्या क्या औषधि ली, नहीं पूछ सकते है। यह नाटक कई बार देखा है। शहरोंके मध्यम कुटुम्ब और गरीबोंका जीवन कष्ट मय है। उनको वैद्य समाज चाहे तो मार्ग दर्शन करा सकते हैं।

सुशील विद्यार्थी वृन्द और नये बने हुए चिकित्सकोंको चाहिये कि चिकित्सा करनेके पहले अच्छी तरह रोगीके दुःख, लक्षण, पथ्यापथ्य, व्यसन आदिको समझ लेवे। वात, पित्त, कफमेंसे, किसका प्रकोप रोगका मूल है। कौन कौनसे लक्षण विशेष कष्टप्रद और तुरन्त शमन करने योग्य हैं। शोधन, शमन, पौष्टिक, उत्तेजक, किस प्रकारकी मुख्य औषधिकी आवश्यकता है। कफ निःसारक, सारक, ग्राही, विषघ्न, कीटाणु नाशक, कृमिघ्न, क्षयहर किस प्रकारकी औषधिको मुख्य औषधिके साथ मिलानी पड़ेगी। मारक उपद्रव कोई उपस्थित तो नहीं हुआ? घातक उपद्रव हो जानेका भय है? बाह्य मर्दन, लेप, मरहम, स्वेदन आदिकी आवश्यकता है? रस चिकित्सा करनेपर भी इन सब बातोंपर योग्य लक्ष्य देना पड़ेगा। इन सबपर विचार करने और विवेक करनेका अभ्यास पहलेसे ही रखें। अभिमानका त्याग करें। सामान्य बुद्धि वालोंको भी सम्मान देवे। दूसरोंके विचार सप्रेम सुने। एवं चिकित्साके साथ उपास्य देवकी भक्ति भी करते रहें। जिससे आप यशस्वी रस चिकित्सक बन सकेंगे। लक्ष्मी, सरस्वती दोनोकी कृपा सम्पादन कर सकेंगे। आप सबको श्री हरि सुमति प्रदान करें, यह हृदय पूर्वक प्रार्थना करता हूँ। इतिशम्॥

अपक्व रस भस्मादि जन्य विकारोंके निवारणोपाय

लेखक—वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, कालेड़ा

अशुद्ध रस, रत्न, उपरस, धातु एवं उपधातुओं की अर्ध पक्व, अपक्व भस्म सेवन करनेसे अनेक विपोपद्रव, भांति भांतिकी व्याधियां उत्पन्न हो जाती है। जैसे—उष्णता, व्रण, पिटिका, कण्डू, दाह, कोठ, कुष्ट, मुखपाक, अतिसार, बलवीर्य हानि, मल-मूत्र दाह, अन्त्रविकृति, ज्वर-मूर्च्छा इतना ही नहीं किन्तु मृत्यु तक हो सकती है। इन अशुद्ध एवं कच्ची भस्मोंकी भली प्रकार जांच करके ही प्रयोग करना चाहिये। उनके रूप, रंग, वारितरत्व, चमक, कर्कशत्व आदिकी पूर्ण परीक्षा करके ही सेवन करे, करावे।

जैसा कि योग रत्नाकरमें धातुओं भस्मोंके विनिर्णय विषयमें कहा है कि :—

स्वर्णं चम्पकवर्णाभं कृष्णत्वं तारताम्रयो।
कांस्यं धूसरवर्णं स्यान्नाग. पारावतप्रभ: ॥ १ ॥
वङ्गं शुभ्रत्वमायाति तीक्ष्णं जम्बुफलोपमम्।
अभ्रकं चे ष्टिकाभं स्याद्धातूना वर्णनिर्णय: ॥२॥
जारवाभं सुवर्णस्य भस्म प्राहु भिषवरा:।
शुल्वं मयूर कण्ठाभं हरिद्राभ त्रिवगकम् ॥३॥
यशदं पीतकं प्राहु:। तालं कुन्द प्रभाकरम्।
रक्त वर्ण हि लोहस्य योजनीय यथायथम् ४॥
शोणित जायते कान्त कृतं सिन्दूर विभ्रमम्।
रक्तं जायते नाग. कपोतच्छाय मेववा।
शोणवर्णमुण्डस्यात् ॥६॥

अर्थात् शास्त्र कथित विधिसे बनाई है तो सोनेकी भस्म चम्पेके वर्णकी, चांदी व तांबेकी भस्म काले रंग की, कांसेकी भस्म मटमैले रग वाली, शीशेकी भस्म कबूतरके रंगवाली, वगभस्म श्वेत वर्ण वाली, लौह भस्म जामुनियां रंगकी तथा अभ्रक भस्म ईंटके सरीखे रग वालीको उत्तम माना है।

पुट दिये जाने वाले भिन्न भिन्न द्रव्योंके भेदसे भस्मोंके रंगोमें परिवर्त्तन भी हो सकते हैं। अङ्गुष्ठ तर्जनी मध्ये घृष्ट रेखान्तरं विशेत्। मृतं लोहं समुद्दिष्ट रेखा पूर्णं विधानत:॥ भस्मकेतकी रजोपमम्। और नेत्र में अजन करनेसे पीड़ा व दाह पैदा न करे। किन्तु चमक रहित, कर कर शब्द हीन, जलतर, श्लक्ष्ण, एवं अगुलीकी रेखाओं मे प्रवेश कर जाने वाली, लघु, आग पर डालनेसे धूम रहित एवं स्थायी वर्ण वाली निरुत्थ (मित्रपचक आदि पदार्थोंके संयोगसे अग्नि पर पूर्व धातु रूप धारण न करने वाली जल तर अथवा स्प्रिटमें घुलन शील (अर्थात् इनमें घोलने पर पैंदेमें न बैठने वाली भस्में ही शरीरिक रस रक्तादिमें घुल मिल कर पूर्ण लाभ कर सकती हैं। इनसे विपरीत स्वरूप वाली भस्मोंसे उक्त हानि होनेकी संभावना है।

वर्तमानमें कई भस्मोंको कम पुट देते हैं। एवं उत्तम होने पर भी जलतर नहीं होती है। उनसे हानि होनेकी सभावना नही है तथापि जलतरकी अपेक्षा गुण कम करती है। जैसे वर्तमानमें लौह भस्म प्राय: जलतर हो, उस विधिसे फार्मेसी वाले नहीं बनाते। जिससे १०० पुट देनेपर भी जलतर नहीं बनती। उसे अपक्व या सदोप तो नहीं कहेंगे, तथापि वह जलतर के समान रक्त आदि धातुओंमें पूर्णांशमें प्रवेश नहीं कर सकेगी। इसी तरह अन्य भस्मोके लिए समझे।

कई प्राणिज द्रव्य मुक्ता, प्रवाल आदि तथा उपधातुओंकी जलतर परीक्षा करनी चाहिए, यह आग्रह नहीं है। सुवर्णमाक्षिक और अभ्रकमें चमक नहीं रहनी चाहिए, अन्यथा हानिकर मानी जायगी।

अशुद्ध कच्ची रस धातुओंकी भस्मोके सेवन करनेसे उत्पन्न रोगोकी शांतिके लिये कतिपय शामक

प्रयोग लिख रहे हैं जो कि अनुभूत एवं सरल भी है।

सेवन कालमे ही किसी भी धातु-उपधातु जनित विकार उत्पन्न हुआ हो, तो तब पहले सोचें। कुछ विष आमाशयमें है ? जो भोजनमें ही हो अभी आमाशय से आंतोमें नहीं गया है, तो तुरन्त वमन कराके उतने विषको बाहर फेकें। जितना अश अन्त्रमें प्रवेशित हो गया हो, उतने अंशको विरेचन द्वारा बाहर फेकें।

औषध सेवन अभी नहीं हो रहा है, कुछ दिन हो जाने पर विष विकार उपस्थित हुआ है। रक्त आदि धातुओंमें विकृति प्रतीत होती हो उसके लिए निम्नानुसार उपचार करना हितावह माना है।

अपक्व या अशुद्ध, वज्र अथवा वैक्रान्तके सेवनसे उत्पन्न उपद्रवोके शमनार्थ—घी १ तोला, मिश्री २ तोला, दूध (गायका) ३ तोला तथा गोमूत्र ५ तोला मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिये।

अशुद्ध पारेकी कच्ची भस्म सेवनसे उत्पन्न दोषकी निवृत्तिके लिये :—शुद्ध गधक १ माशेको नागरवेलके पत्तेमें रख कर दिनमें २ बार सेवन करे अथवा शुद्ध गधक १ माशेको गोजिह्वाके क्वाथ सह दिनमें २ बार सेवन करे। या श्वेत कुष्माण्ड, मुनक्का, तुलसीपत्र, सौंफ लौंग, दालचीनी तथा नागकेशर तथा शुद्ध गधक के समभाग कृत चूर्णको ३-३ माशेकी मात्रामें जलके साथ सेवन करे। तथा नागरवेल, तुलसी व भांगरे तथा वनगोभीके स्वरसका सारे शरीर पर मर्दन करे। अथवा प्रतिदिन २ समय हजारेके फूलोके स्वरसका हस्त पाद तल पर मर्दन करे।

अपक्व अशुद्ध हरताल भस्मके दोषकी निवृत्तिके लिये —श्वेत कुष्माण्ड व दुरालभाका स्वरस प्रतिदिन २-२ तोलेकी मात्रामें पान करें।

अपक्व एव अशुद्ध अभ्रक सेवन दोष निवारणके लिये श्वेत जीरक, धनिया तथा मिश्रीको ठडाईमें कलमी शोरा ४-४ रत्ती मिला कर सेवन करे।

स्वर्णकी अपक्व भस्मके सेवनसे उत्पन्न दोषके शमनके लिये हडे तथा मिश्री समभाग लेकर चूर्ण बना ६-६ माशेकी मात्रामें १ महिने तक सेवन करावें।

चांदी की अपक्व भस्मके सेवनसे दोषकी निवृत्ति के लिये शुद्ध मधु एव शर्करा समभाग मिलाकर सेवन करावें।

अशुद्ध ताम्र भस्मका उपाय—सोंफ व त्रिफला समभाग लेकर मधुसे चटावे।

ताम्र विष दीर्घकाल पर्यन्त कष्ट देता है। उसके पचनके लिए प्रकृतिको दही-छाछ अनुकूल हो तो नित्य निमयित भोजनके बाद सेवन करे। एवं मक्खनका भी सेवन करे। त्रिफलाका सेवन दीर्घकाल पर्यन्त करते रहें या च्यवनप्राशावलेहके साथ प्रवाल पिष्टीका सेवन करते रहें।

अशुद्ध वग भस्मका उपाय—मेढासिंगी व शर्करा को ठडे जलसे १ माह तक पान करावे।

अशुद्ध नाग भस्म का उपाय—पुष्कर मूल, हर्डे तथा शर्कराका समभाग चूर्ण ७ या अधिक दिन तक सेवन करे।

वङ्ग-नाग, दोनों अति विकृति उत्पादक धातु हैं। इनके विकारकी शमनार्थ नियमित उदर शुद्ध रखे। वङ्गके लिए भांगका सेवन या बबूलकी पत्तीका औषध रूपसे सेवन हितावह है। नागके लिए वासावलेह और नीमकी अन्तर छालका चूर्ण और सितोपलादि भी लाभ पहुँचाता है।

अशुद्ध स्वर्ण माक्षिकका उपाय—कुलथीका क्वाथ पिलाना, यह सौम्य उपधातु है। सरलतासे विकार शान्त हो जाते हैं। तले हुए पदार्थ गरम-गरम भोजन और अधिक मिर्च आदि अधिक सेवन न करे।

सूचना—रोग या विकारके अनुरूप आग्रह पूर्वक पथ्यका पालन करे। सिगारेट, गरम गरम चाय आदि व्यसन हो, तो उनको कम करे। अति गरम मसाला, धूपमें अधिक घूमना, अति उपवास, अति शुष्क भोजन तेज खटाई ये सब दूर करें।

सबमें अधिक श्रेयस्कर तो यही है कि अनुभवी, वृद्ध एव विश्वस्त वैद्यो तथा फार्मेसियोकी बनी हुई भस्मादिकोका ही सेवन करे। चलते फिरते किताबी इलाज करने वाले वच्चकोंसे दूर रह कर स्वास्थ्य एव धनकी रक्षा करें। इति।

खेचरी गुटिका

आगेटो बलमाधत्ते मूर्छितो व्याधिनाशन.॥
बद्धेन खेचरी सिद्धि' मारितेनाजरामर: ॥
विशेषाद् व्याधिशमनो गन्धकेन तु मूर्च्छित.॥

रसशास्त्रके ग्रन्थोमें खेचरी गुटिकाका अति महत्व है। अनेक ग्रन्थोंमें इसके भिन्न-भिन्न पाठ मिलते है। जनतामें भी खेचरी गुटिकाकी दिव्यता परम्परागत सुननेमें आती है। कई आचार्योंने खेचरी गुटिकाके फलमें "सततात्भ्यास योगेन खेचरत्वं न संशय:।" लिखा है। जिससे कई आकाशमें प्रकाश करनेका अर्थ लेते हैं। इस सम्बन्धकी कई कहानियां भी प्रचलित हैं। अन्य कतिपय आचार्योंने "गुटिका खेचरी नाम्ना देहलोहविधायिनी" फल दर्शाया है। अर्थात् सुवर्ण बनानेमें तथा देहको दिव्य बनानेमे यह उपयोगी है।

प्राचीन आचार्योंका यह नियम था कि जो कुछ लिखा जाय, वह दीर्घ काल पर्यन्त अनेक वार अनुभव करनेके पश्चात् ही लिपि बद्ध करना। कदापि मन गढत नहीं लिखते थे। किसी प्रकारके स्वार्थकी चाहना नहीं रखते थे। विश्वके हितके निमित्त निष्काम भावसे ही लिखते थे। इसी हेतुसे कई आचार्योंने अपना नाम नहीं दिया। उपास्य देवका नाम दिया है या विना नाम परिचय दिये ही लिखा है।

सामान्य जन समाज और रसशास्त्रका अनुभव न हो, वैसे वैद्य भी खेचरी गुटिकाके पाठोको समझ नहीं सकते हैं, न फल समझ सकते है। कह देते है कि पाठमें गुप्त रखी है। कई वस्तु नहीं लिखी। विधि नहीं दर्शायी है। एवं गुण वर्णनमें अतिशयोक्ति की है या अन्य ग्रन्थोंके आधारसे अत्यधिक फल दर्शा देनेका साहस करते थे। कई ग्रन्थ विना अनुभव लिख दिये है, ऐसा आरोप आधुनिक शिक्षा-दीक्षा वाले विद्वान् करते रहते हैं। यथार्थमें अपनी बुद्धि काम नहीं देती है, रसशास्त्रके विज्ञानको हम नहीं जानते हैं; रसविदोंने कही हुई शुद्धिको हम नहीं करते हैं। गुणाधान संस्कार करते है; द्रव्य भलते ले लेते है। फिर फल दिव्य प्राप्त करनेकी आशा रखते है, परिणाममें निराशा जब मिलती है, तब विश्वास शास्त्रपरसे उड जाता है। अपनी भूल कदापि स्वीकार नहीं करते। यह दोष वर्तमान युगमें आ गया है। श्रद्धालु विद्यार्थियोको सत्य जाननेमें आ जाय, इस लिए यह स्पष्टी करण किया है।

वर्तमानमें सद्गुरु शरण रहकर परिश्रम पूर्वक सदाचारके पालन सह निरभिमान वृत्ति रखकर विद्याध्ययन और कृतिके अनुभव करनेका रिवाज प्राय: दूर हो गया है। केवल शास्त्रका अध्ययन करके मनसे मान लेते है कि हमने सब समझ लिया है। फिर कृति करते हैं। असफलता मिलनेपर आचार्योंको दोष देने लग जाते है। अज्ञान या साहसको भूल नहीं मानते फिर विविध रंगोंसे रञ्जित करके जनतामें उसके परिणामकी कथा फैलाने वाले कई वार्तिक राग द्वेष वश प्रयत्नशील होते हैं।

यहांपर श्री आचार्य अनन्तदेव सूरि विरचित रस चिन्तामणि ग्रन्थका एक पाठ देता हूँ जो प्रथम स्तवकमें ही दिया है। आयुर्वेद प्रकाश कारने अनुभव करके अपने ग्रन्थमें भी स्थान दिया है।

रसाटकत्रय शुद्ध कृष्णधत्त्रबीजजं।
तैलं पलद्वये खल्वे मर्दयेद्दिन सप्तकम् ॥१॥
तावद्यावद् भवेत्तस्य जलौकारूपमुत्तमम्।
माषान्न-पिष्टकेनादौ दृढसूत्रेण वेष्टयेन ॥२॥
कनिष्ठिकासम गाढ शोषयेद् द्रविणा च तम्।
दशप्रस्त मिते तैले सर्षपस्य विपाचयेत् ॥३॥
तैलक्षयो भवेद्यावत्तावत् सोऽल्पबलायते।

स्निग्धच्छाये निवेश्याऽथ शनै. सिद्धां च ता नयेत्॥४
दुग्धेनापूर्यते कुम्भः शुभस्तत्र निवेशयेत् ।
विशुध्येत् सकलं दुग्धं गुटिकां धारयेत्ततः ॥५॥
वर्करस्य मुखेपश्चाद् गुटिकां तां प्रयच्छति ।
प्रविष्टा तन्मुखस्यान्ते ज्वलमानेव तद्गता ॥६॥
व्याकुल कुरुते काम देह स्वास्थ्यं न तस्य वै ।
उदरस्था यदा स्यात्तदाऽसौ म्रियते ध्रुवम् ॥७॥
गुटिकायाः परीक्षां च कृत्वैव बुद्धिमान् नर. ।
स्वकीये वदने पश्चाद् धृत्वा शुभ्रां निरासयाम्॥८॥
योजनानां शतं गच्छेद् प्रयासेन साधक ।
स्त्रीणां शतं तथा गच्छेच्छुक्रस्तम्भकरी मता ॥९॥
मुखस्थायामहो तस्यां प्रहारो नैव जायते ।
अन्यान् बहुविधान् रोगान् मुखस्था हन्त्यसंशयम् १०
जिह्वा तालुगता ये च कण्ठशालूकादय. ।
उपजिह्वाऽधिजिह्वा या द्विजिह्वापि सुदारुणा ॥११॥
सप्त षष्ठिमिता रोगा हृद्रोगाः पीनसादयः ।
सर्वांस्तान्नाशयत्येषा गुटिका नाम खेचरी ॥१२॥

३ टंक पारद (रसेन्द्र) काले वत्तूरेके तैलके साथ खरलके भीतर एक सप्ताह पर्यन्त मर्दन करावें। जब तक पारद बद्ध होकर जलूका सदृश वर्ति न हो जाय तबतक सतत खरल करना चाहिये। फिर उड़दकी दालके आटेको जलमें गोंद, पारदकी वर्तिके चारो ओर लेप कर देवें। ऊपर सूत्र लपेटे। इस तरह हाथकी छोटी अंगुली (कनिष्ठिका) सदृश बनी हुई सूत्रवेष्टित पारद वर्तिको सूर्यके तापमें सुखावें। पश्चात् सरसोंके १० सेर (४० तोले) तैलमे उसका पचन करावे। जब तक तैलका क्षय हो जाय, तबतक चूल्हेपर वर्तिको पकावे। फिर पात्रको नीचे उतार लेवे। उसे छायामें रखे, स्वाङ्ग शीतल होने देवें फिर सूत्र तथा आटेको दूर कर पारद वर्तिको निकाल लेवे ॥४॥

एक घड़ेमें गोदुग्ध भर उसके भीतर वर्ति (आटा और सूत्र लपेटी हुई) लटकावे। मन्द-मन्द अग्नि अहोरात्र देते रहें। जब दूधका खोया बन जाय, तब अग्नि देना बन्द करे ॥५॥

पश्चात् एक नज़वान् बकरेके मुखसे नीचे दे देवे (मुखसे नीचे उतरा देवें)। आमाशयमें जानेपर वहां दाह होने लगता है। बकरा व्याकुल और कामातुर बनता है। उसे शान्ति नहीं मिलती। आंतमें वर्त्ति उतर जानेपर उसकी निःसंदेह मृत्यु हो जाती ॥७॥

इस तरह परीक्षा हो जानेपर बुद्धिमान मनुष्य अपने मुहमें गुटिका को धारण करें। इससे उतनी स्फूर्ति आ जाती है, कि बिना थकावट शत योजन तक वह चल सकता है। मुहमें रखनेका अभ्यास हो जानेपर पचन क्रिया सबल बनकर मांस, अस्थि आदि सुदृढ़ बन जाते हैं। जिससे लाठी आदिकी चोट नहीं लगती, सौ स्त्रियोंसे गमन करने की शक्ति आ जाती है, शुक्रका स्तम्भन होता है, सरलतासे स्खलन नहीं होता, मुखमें धारण करनेसे अभ्याससे मुखके भीतर होनेवाले अनेक विध रोगोंका नाश हो जाता है। जिह्वा, तालु, कण्ठ आदि भागोंमें उत्पन्न रोग, उप जिह्वा, अधिजिह्वा द्विजिह्वा, आदि दारुण रोग इनके अतिरिक्त पीनस आदि रोग, हृद्रोग, इन सबको यह गुटिका नष्ट कर देती है, और देहको सुदृढ़ बना देती है ॥१२॥

रस चिन्तामणि कारने आगे पञ्चम स्तवकमें खेचरी गुटिकाके लिए स्पष्टकर दिया है कि—

जारितेन रसेनैव गुटिकां कारयेच्छुभम् ।
त्रिलोह वेष्टिता सा च खेचरत्त्व प्रयच्छति ॥

खेचरी गुटिका निर्माण करनेके लिए जारित पारद लेवें। अर्थात् शत गुण गन्धक जारितकर प्रमुख बना अभ्रक सत्त्वके पञ्च ग्रास तथा समगुण या अधिक गुण सुवर्ण बीजका यथा विधि जारण कर फिर गुटिका निर्माणका प्रयत्न करे। सामान्यतया पारद आध तोला लिया जाता है। १ तोलेकी वर्ति मुखमें धारण करना सबके लिये सरल नहीं होता।

यदि पारद पक्षच्छिन्न, बुभुक्षित, बना बिड़को जितनी मात्रासे खिला खिलाकर जितनी मात्रामे सुवर्ण बीजका जारण (और सारण) किया होगा, उतनी, ही गुटिका दिव्य बन सकेगी। पारद साधारण गुण दर्शक लिया हो, और दिव्य गुणकी आशाकी जाय, तो सफलता कैसे मिल सकेगी ?

खेचरी गुटिकामें पारद कैसा दिव्य लेना चाहिए, इस सम्बन्धमें रस हृदयतन्त्रनें दर्शाया है कि:—

धूमाव लोकित रसे पञ्च महा रत्नजारिते मारिते।
बीजेन गगन सत्त्वे माक्षिककान्त प्रयुक्तेन॥
खेचर संज्ञा गुटिका पतते मुखे क्षिप्तमात्रेण।
देवासुर सिद्धगणैः पूज्यतमो भवति चन्द्राद्यैः॥

पारदको पहले धूमवेधी बनावें। जिसमें पञ्च महा रत्न (हीरा, माणिक्य, नीलम, मुक्ता और मरकतमणि) को भी यथा विधि जारण किया हो एवं सुवर्ण बीज युक्त अभ्रक सत्त्व तथा सुवर्ण माक्षिक सत्त्व कान्त पाषण सत्त्व आदि यथा विधि अम्ल रसमें मिला ७ दिन तक मर्दन कर वर्ति या गुटिका बना दौलायन्त्रमें स्वेदन करानेपर दृढ़ बन जाता है। अथवा श्रेष्ठमार्ग आचार्य कथित सुधाचूर्ण (गन्धक ताल सत्त्व, शिला सत्त्व, तुत्थ सत्त्व, खर्पर, हिङ्गुल, भूनाग सत्त्व, विमलसत्त्व, कासीस, राजावर्त सत्त्व और स्वर्ण गैरिक) को मूषामें लेपकर उक्त सुवर्ण बीजादि उक्त रसेन्द्रको मूषमें भरकर यथा विधि जारण करा गुटिका बना लेवे। इसे खेचरी गुटिका संज्ञा दी है।

इसी प्रकार रसार्णवमें जिसे खेचरी गुटिका संज्ञा दी है, वह इसी तरहकी दिव्य है।

कृष्ण धत्तूरके बीजोंका तैल निकालने की विधि रस रत्न समुच्चयमें दर्शायी है। टङ्कण, गुगुल, घृत, शहद, गुञ्जा, इन पञ्च मित्रोंको भी मिलाना पड़ता है। तो तैल उत्तम बनता है। या आधुनिक यन्त्रों की सहायतासे ताजे बीजोंमें या जलमें भिगोकर शुष्क बीजोंमेंसे निकाल लेवें। इसमें स्निग्धता नहीं आती यह दोष है। जितना तैल उत्तम होगा, उतनी ही गुटिका दिव्यता दर्शा सकेगी।

धत्तूर तैलमें मर्दन सामान्यतः १ सप्ताह किया जाता है। यदि ठीक जलौका न बन सके, तो अधिक दिनों तक मर्दन करावें। वर्ति ठीक बन सके तब मर्दन बन्द करें।

सरसोंके तैलका पाक मंदाग्नि (दीपककी अग्नि) पर कराया जायगा तो उतना ही गुण अधिक होगा। एक दिनमें सामान्यतः जितना तैल जल सके उससे थोड़ा ज्यादा रखें। रोज नया आटा लगा लेवें। नया तैल भरे। शनैः शनैः अग्नि अधिक बढावें। इस तरह एक डेढ़ मास लग जाता है।

दूध भी थोड़ा थोड़ा लेकर पचन करावें। तो उत्तम रहेगा गाढी रबड़ी बनानेपर अग्नि देना बन्द करें। दूसरे दिन नया दूध लेकर उसमें वर्ति रखें। इस तरह दूध भी १० सेर (६०० तोले) पचन करावे।

बकरेपर परीक्षा करनेमें आचार्योंके मुख्य २ हेतु हैं। १, बिड़की जो उग्रता हो वह बकरेके देहमें प्रविष्ट हो जाय; २, बकरेके आमाशय रस और अन्त्रस्थ संगृहीत रसोंमें जो चेतना प्रधान विद्युच्छक्ति और पौषक द्रव्य हो उसे आकर्षित कर लेना।

बकरेकी मृत्यु हो जानेपर २४ घण्टे तक बकरेके देहमें ही वर्तिको रहने देवें। फिर उसे बाहर निकाल गर्म जलसे धोकर शुद्ध करें। फिर थोड़े दूधमें दौला-यन्त्रमें रखकर १२ घण्टे मन्द मन्द अग्नि देकर आकर्षित सत्त्वको पचन करा लेवें। इस तरह ३ बार फिर गर्म जलसे धोकर अपने मुखमें धारण करनेका अभ्यास करें।

प्रारम्भमें थोड़ा समय धारण करे। शनैः शनैः समय बढावें। १ घण्टा, २ घण्टा, ३ घण्टा, १२ घण्टों और फिर अहोरात्र। रात्रिको निद्रामें भी वर्ति दांत और गालको बीचमें सरलतासे रह जाती है। भ्रम वश, भूल प्रमाद वश उदरमें न चली जाय, यह सम्हालना पड़ता है। चाहिए तो पहले सामान्य अष्ट संस्कारित और फिर षड्गुण गन्धक जारित किये हुए पारदको वर्ति बनाकर मुखमें धारण करें। ऐसे पारदकी वर्ति बनानेके समय नीलाथोथा और नौसादर को मिला ४०० गुने जलमें पारदको पहले उबाल लेना

(शेष पृष्ठ ६४४ पर देखें)

श्लीपदका अनुभूत उपचार

ले० वैद्य राज प. श्री रामभरोसे जी, अंधेरी बंबई

आपने श्लीपद रोगसे पीड़ित हजारो रोगियोका सफल उपचार किया है। इनकी चिकित्साके लिये बहुत दूर दूरसे अनेक रोगी आते ही रहते है। आप इस रोग पर काफी अनुभव कर चुके हैं। आप एक सहृदय व्यक्ति है, सेवाभावसे प्रेरित होकर आपने यह प्रयोग प्रकाशनार्थ दिया है। प्र० सम्पादक

(१) आरोग्यवर्द्धिनी	२ रत्ती
गधक रसायन	२ रत्ती
शक्कर	४ रत्ती

यह १ मात्रा है मुंहमें डालकर जल पीले। सुबह शाम दिनमें २ बार सेवन करें।

(२) सोठ, कालीजीरी, आंबा हल्दी, सोनागेरु बराबर भाग लेकर कूट पीस कर मिला ले। फिर धत्तूरेके पत्तोके रसकी भावना देकर कल्क बनाकर कड़ाहीमें डाले। कल्कसे ८ वां या १०वां हिस्सा सरसोंका तैल डाले। तथा मुर्गीके १ अंडेका रस व जर्दी डाल कर गर्म करे। एक जीव हो जाने पर उतार लें। निवाया रहनेपर लेप कर दे। रात्रिको लेप करे, फिर एरड पत्र पर तेल लगाकर निवाया करके ऊपर बांध दे। ऊपर पट्टी बांधे। दूसरे दिन सुबह खोलकर पैरको धोकर पुन: बांध दें। इस प्रकार १-२ मास करने पर श्लीपद दूर हो जाता है।

सूचना—पैरपर या हाथपर औषधियोंका रस उतर गया हो तो वहां पर तेल लगा देना चाहिये। ऊपर कपड़ा रखें फिर ईटको तपा कर प्रतिदिन १०-१५ मिनट तक सेक करें जिससे उतरा हुआ रस बन्द हो जायगा।

अपथ्य—नमक, खटाई, मिर्च, तली हुई चीजें, गर्म दूध, गर्म भोजन सेवन न करें।

यदि यह रोग बहुत पुराना गया हो तथा मांस अति कठोर हो गया हो और रोगीकी आयु ६० वर्षसे अधिक हो गई हो तो, इस चिकित्सासे फल मिलनेकी सभावना अल्प ही है।

— खेचरी गुटिका —

(पृष्ठ ६४३ का शेष)

पड़ता है। फिर उसे गरम जलसे धो धोकर साफ करना पड़ता है। पश्चात् ७ दिन तक तुलसीके रसमें भिगोकर धत्तूर तैलके साथ मर्दन कराया जाता है। इसकी वर्ति जो बनती है, उदरमें चली जानेपर भी कष्ट नही पहुँचाती। इसका अभ्यास हो जानेपर खेचरी गुटिकाको धारण करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

सामान्य षडगुण गन्धक जारित पारदसे भी जो गुटिका बनायी जाती है, वह भी पचन क्रिया बढाती है। आमदोष, सेन्द्रिय विष, कीटाणु, कृमि, आदिको नष्ट करती है। रक्ताभिसरण क्रिया सुधारती है। स्मरण शक्ति बढाती है। स्फूर्ति प्रदान करती है और आयुको बढानेमें सहायक बनती है, तब दिव्य रसेन्द्रसे बनी हुई खेचरी गुटिका अपनी दिव्यताको दर्शा देवे, उसमें आश्चर्य ही क्या है ?

कदाच अति दिव्य बना हुआ रसेन्द्र न बन सके या न मिल सके, तो भी जैसा मिले, उसमेंसे यथा विधि गुटिका बनाकर उपयोग करें और अनुभव कर। आप सब पारद गुटिकाकी प्रसशा करने लगेंगे, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है। इतिशम्

रसेन्द्र सर्वांशमें सुवर्णबीजको खा लेता है ?

वर्तमानमें बुभुक्षित पारदके सम्बन्धमें जनता, विद्वान् वैद्यो, और सुबोध आचार्योंको भी संदेह हो रहा है। रस विद्यासे अनभिज्ञ होनेसे वे सब मानते है कि पारदके साथ सम वजनके सुवर्णका ग्रास देनेपर उसे पूर्णांशमें पाचन कर लेता है। पारदके अणु अणुमें सुवर्णके अणु अणु सब जीर्ण हो जाते हैं, फिर वजन पारदका ही शेष रहता है।

रसार्णव, रसहृदय, रसरत्नाकर आदि रस शास्त्र के महत्वके ग्रन्थोंमें सुवर्ण बीजका ग्रास देना हो, तब साक्षात् सुवर्णके पतरे या वर्कका ग्रास देनेका कहीं भी विधान नहीं मिलता। बीज किस प्रकारका बनाना है? ताम्र वेधी, रौप्य वेधी, चन्द्रार्क वेधी, नाग वेधी, पारद वेधी, में से किस प्रकारका बनाना है? जिस प्रकारका बनाना हो, उसकी भस्म पहले विरोधी उपक्षारो, उपधातुओं या वनौषधियों के द्वारा बनायी जाती है। कई पुट देने पड़ते हैं। एवं वनौषधियों के रस आदिकी भावनाएं भी काफी देनी पड़ती हैं। उस भस्मका जारण सुवर्णमें कराया जाता है, फिर उसका जारण पारदमें कराया जाता है।

रसहृदयतन्त्र और आयुर्वेद प्रकाशमें दर्शाया है कि—

बीजानां संस्कारः कर्तव्यस्ताप्यसत्वसयोगात्।
येन द्रवन्ति गर्भे रसराजस्य अम्लवर्गेण॥

आयुर्वेद प्रकाशकारने इस श्लोकके आगे लिखा है कि:—

सिलया निहतं नागं ताप्यं वा सिन्धुना हतम्।
ताभ्यां तु सारितं बीजं सूतके द्रवति क्षणात्॥

इन श्लोकोका मनन करनेपर भी स्पष्ट विदित हो सकेगा कि सुवर्ण बीजके लिए विविध औषधियो द्वारा सुवर्णका मारण करना पड़ता है। फिर प्रारम्भमें ग्रास बहुत कम प्रमाणमें ६४ वां हिस्सा, ३२ वां हिस्सा, १६ वां हिस्सा, ८ वां हिस्सा, ४ था हिस्सा, २ सरा हिस्सा (आधा) फिर सम मात्रामें इस-क्रमसे आगे बढना है। इन ग्रासोंको पचन करानेके बाद उष्ण कांजीसे पारदको धोया जाता है। उस समय विड़ सह मल-भाग काञ्जीमें मिल जाता है तथा चेतना शक्ति व प्राण शक्ति सह सत्वांशका आकर्षण पारद में हो जाता है।

रसोपनिषत्के १६ वें अध्यायमें कहा है कि:—

अङ्कुराज्जायते शालिः शालेर्वापि यथा तथा।
यादृशं तु भवेद् बीजं तादृशं तु भवेत्फलम्॥
एतत्प्रदर्शनं लोके हेमतार क्रियादिषु॥

जिस जातिका बीज होगा, उसी जातिका फल होगा सृष्टिका यह नियम अविचल है। जैसा शाली धान्य बोया होगा, उसी प्रकारका धान्य उत्पन्न होगा। यही नियम सुवर्ण और रौप्यके लिए भी है।

बाजारमें जो विशुद्ध अन्य धातुओंके मिश्रणसे रहित सुवर्ण, रौप्य मिले, तो क्या उसे बीज रूपसे व्यवहृत कर सकेंगे? शास्त्रकार कहते हैं, यह नहीं हो सकेगा। ये धातु निर्जीव हैं। फल देनेमें असमर्थ हैं। उसका उपयोग बीज रूपसे नहीं हो सकेगा।

रसेन्द्रमें सामान्य सुवर्णका जारण कराया जाय किन्तु बीज भावको प्राप्त न कराया हो, तो रसेन्द्र रक्त या पीत तो हो जाता है। फिर भी विना बीज वह वेध क्रियाके लिए उपयोगी नहीं हो सकेगा। यह भाव रसहृदयतन्त्र नवम अवबोधके आरम्भमें ही दर्शाया है कि —

इति रक्तोऽपि रसेन्द्रो बीजेन विना न कर्मकृद् भवति।
द्विविधं तत्पीतसित नियुज्यते सिद्ध मेवैतत्॥

सुवर्ण, रौप्यके भीतर जीवशक्ति प्रयास करके प्रवेश करायी जाती है। सुवर्ण-रौप्य और धातु तथा उपधातु-जो उनके साथ कार्यमें आती हों, उनका पहले यथा विधि शोधन (गुणाधान-सस्कार) करना पड़ता है। गुणाधान सस्कारपर योग्य लक्ष्य नहीं दिया जायगा, तो सफलता प्रदान नहीं कर सकेंगे। फिर विरोधी धातु-उपधातु और वनस्पतियोंके रसादिकी भावना देकर यथाविधि मारण कराया जाता है। जिस धातुका वेध करना हो उसके अनुरूप बीज बनाया जाता है। बीज बननेपर फिर यथा विधि परिपक्व बनाया जाता है। तत्पश्चात् पारदमें जारण कराया जाता है।

आयुर्वेद प्रकाश अनुभव पूर्ण ग्रन्थ है। अति संक्षेप में है और हो सके उतनी स्पष्ट भाषामें लिखा है। उसी का यदि मनन किया जायगा, तो भी मुझे विश्वास है, कि रस शास्त्रका रहस्य विदित हो जायगा और सत्य की झांकी हो जायगी।

रसेन्द्र चिन्तामणिके आधारसे आयुर्वेद प्रकाशकारने लिखा है कि:—

कुनटीहत करिणा वा रविणा वा ताप्यगन्धकहतेन।
दरदनिहतासिना वा त्रिर्व्यूढ हेम तद्बीजम्।
नागाभ्र वाहयेद् हेम्नि दिवा कर गुण शुभम्॥
प्रति बीजमिद श्रेष्ठ पारदस्य तु बन्धनम्॥
माक्षिकेण हत ताम्र नागं वा रञ्जयेन्मुहु।
त नागं वाहयेद् बीजे द्विषोडशगुण तथा॥
एतद् बीजवरं श्रेष्ठं नागबीजं प्रकीर्तितम्।
समजारित मात्रेण सहस्रांशेन विध्यति॥

पहले नागको शुद्ध करे, फिर शिला सत्व मिला कर मारण करें, अथवा सुवर्णमाक्षिक या गन्धकके योगसे ताम्रका मारण करे या हिंगुल द्वारा कान्त-लोहका मारण करे (इस मारणमें भी कितने पुट देना चाहिए, यह भी जानना पड़ेगा। मन गढंत कल्पना नहीं कर लेनी चाहिए) फिर इनमेंसे किसीको तीन वार सम मात्रामें सुवर्णके साथ मिलाकर यथा विधि जारण करे। वह बीज सुवर्णमें मिलाई हुई भस्मके अनुरूप तैयार होता है (फिर उस बीजको परिपक्व बनानेकी क्रिया की जाती है)।

सुवर्णमाक्षिकके योगसे ताम्रका मारण करके उस से नागका मारण करें। फिर उस नागको ३२ गुनी मात्रामें सुवर्णमें जारित करे। उसे श्रेष्ठ नाग बीज संज्ञा दी है। रसेन्द्रके साथ इस बीजको समजारित करनेपर ही वह सहस्र वेधी बन जाता है।

उक्त वचनका स्पष्टीकरण रसरत्नाकर और आनन्द कद चतुर्थोल्लासके द्वादश हेमबीजके लिए लिखा है कि—

ताप्येन मारयेत्ताम्रं तन्नागे वाहयेच्छनैः।
यावच्छत (दश) गुणं ताप्यं चूर्णं क्षिप्त्वा धमन् धमन्
तद्वाहयेद्धमेद्धेम्नि क्रमाद् द्वात्रिंशत गुणम्॥
स्वर्णशेषं भवेद्यावत् तावत् स्याद्धेमबीजकम्।

समगुण बीजका जारण होनेपर फिर सारण कराया जाता है, वह शतवेधी बनता है। फिर आगे जितना जितना अधिकतर सारण होता है, उतनी उतनी वेध शक्ति अधिकतर दश दश गुनी बढ जाती है। इस सम्बन्धमें रसहृदयतन्त्रके १६ वे अवबोधमें कहा है कि —

शतवेधी सार्यःप्रतिसारितः स्यात्सहस्रवेधी च।
अनुसारितोऽयुतेन च विधिनाऽपि बलाबल ज्ञात्वा॥
अनुसारितेन तु सम' स्वच्छ. सूत' सारितस्तदनु॥
स भवति लक्षवेधी प्रतिसारितोऽयुतवेधी च॥
कोटि विध्यति सूतोऽप्यनुसारितं सरति बीजेन।

समगुण बीजका यथा विधि जारण करानेके पश्चात् सारण क्रिया कराई जाती है, वह शतवेधी बनता है। फिर द्विगुण बीज मिलाकर प्रतिसारण क्रिया करनेपर सहस्रवेधी होता है। आगे त्रिगुण बीज तथा नाग २०वां हिस्सा मिलाकर अनुसारण क्रिया करनेपर दश सहस्रवेधी, पुनः त्रिगुण बीज मिला कर अनुसारण करनेपर लक्षवेधी, तत्पश्चात् द्विगुण बीज मिला कर प्रतिसारित करनेपर दशलक्षवेधी तथा फिर त्रिगुण बीज मिलाकर अनुसारण करनेपर कोटिवेधी बनता है (सारण, प्रतिसारण, अनुसारण, तीनों बार नाग मिलानेको रसेन्द्र चिन्तामणि और आयुर्वेद प्रकाश कारने दर्शाया है)।

इसी तरह रसार्णवकारने एकादश पटल में कहा है कि—

> सूतके हेमबीजं च यदा जीर्णं चतुर्गुणम्।
> बद्धराग विजानीयात् हेमाभो जायते रस.॥
> सारणायन्त्रमध्यस्थ तेनैव सह सारयेत्।
> त्रिभागसारित कृत्वा पुनस्तत्रैव जारयेत्॥
> जारित सारितश्चैव पुनर्जारितसारितः।
> सप्तशृंखलिका योगान् कोटिवेधी भवेद्रसः॥

जब पारदमें सुवर्ण बीज ४ गुना जारित हो जायगा तब पीत वर्णका सुवर्णके सदृश दृढ़ रंग युक्त बन जाता है। इस बीजका जारण करनेपर बार बार सारण किया जाता है। पुन पुनः सात बार क्रिया दोहराने, जारण सारण कराने पर पारद कोटिवेधी बन जाता है। शृङ्खला बीज किस तरह बनता है, यह रस हृदय तन्त्र एकादश अवबोधकी आर्या ६-७ मे देखे।

१ली क्रिया अभ्रक जारण और सम सुवर्णबीज जारण।
२ री क्रिया सारण सम बीज की।
३ री क्रिया प्रतिसारण द्विगुण बीज की।
४ थी क्रिया अनुसारण त्रिगुण बीज मिलाकर।
५ वीं ,, ,, ,, ,, ,,
६ ठवीं ,, प्रतिसारण द्विगुण ,, ,,
७ वीं ,, अनुसारण त्रिगुण ,, ,,

इस तरह ७ बार क्रिया दोहरानेमें १४ गुने सुवर्ण बीजका जारण हो जाता है। क्या १४ गुने स्वर्णके अणु परमाणुओंका समावेश या संरक्षण पारदके भीतर हो सकेगा ? और वजन पारदका स्थिर रहेगा। शास्त्रके मर्मज्ञ जान सकते हैं कि स्वर्ण पूर्णांशका आकर्षण नहीं होता। मात्र सत्वांशका होता है। जब क्रिया समाप्त होनेपर मल भाग संगृहीत करके वजन करे और उसमेंसे स्वर्ण मलको पृथक् करें, तो जान सकेंगे कि सत्य स्थिति क्या बनी है ?

कितने सत्वांशका आकर्षण हुआ है, या धारण हुआ है, यह निर्णय वेधक्रिया होनेपर होता है। शतवेधी, सहस्रवेधी, लक्षवेधी, कोटिवेधी या कितना वेधी रसेन्द्र बना था ? यह साधक स्पष्ट जान सकेंगे।

काष्ठौषध्यो नागे आदि प्राकृतिक नियम-मर्यादा रसहृदयतन्त्रके प्रथम अवबोधमें दर्शायी है, उसका तात्पर्य भी सत्वाकर्षणसे ही है। सर्वांशका ग्रहण नहीं है। जिस तरह कुमारी स्त्री सुखको नहीं जान सकती, जन्मान्ध मनुष्य बड़े के श्वेत, रक्त, श्याम वर्ण को नहीं जान सकता, कूप, तडाग आदिमें विचरने वाला मेंढक महा समुद्रकी गम्भीरता को नहीं जान सकता, उस तरह रस-शास्त्रसे अनभिज्ञ विद्वान् चाहे अन्य कई शास्त्रोंके पारंगत क्यों न हो, रसशास्त्रकी विशेषता और कृतिको कदापि नहीं जान सकता इस छोटेसे लेखमें शब्दों द्वारा जितना हो सके, उतना समाधान किया है। आशा है कि उतनेसे श्रद्धालु विद्वान् शास्त्र मर्यादा को तोड़कर कल्पना नहीं करेंगे, रस विदोंपर अनुचित आक्षेप करना छोड़ेंगे तथा शास्त्रके रहस्यको ग्रहण करेंगे और संतोष मानेंगे।

जब तक रसविद्याके ग्रन्थोंका योग्य मनन न हो सद्गुरुकी सेवामें रहकर क्रिया करनेका अनुभव न किया हो, तब तक दुराग्रही विद्वान् मनगढंत कल्पना करके उनके अनुकूल मलती क्रियाके शास्त्रवचनोंको देनेका प्रयत्न करते हैं, उसे रसविद् आचार्य अनुचित मानते हैं।

* रसशास्त्र के अनुभूत प्रयोग *

लेखक—वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य प्रधान वैद्य, कालेड़ा

१—श्वेत हिंगुल भस्म—हिगुल की डली १ तोला, नोसादर ४ तोला, अजवायन, अजमोद, आध आध पाव।

विधि—प्रथम नोसादरको आकके दूधमें घोटकर लुगदी बनालें; इस लुगदीमें हिगुलकी डलीको अच्छी प्रकारसे वन्द करके रखदे और छायामें सुखाले। पश्चात् अजवायन व अजमोदका चूर्ण बनाकर २ भाग करले, एक शरावमें आधा चूर्ण रखकर नोसादर हिंगुल वाली गोली रख दें, फिर ऊपर शेष चूर्ण भर कर सपुट बन्द करके गजपुटकी आच लगा दे। भस्म श्वेत होगी तथा वजनमें पूरी १ तोला निकलेगी।

मात्रा—१ चावलसे ४ चांवल तक शहद-दूध या अद्रक रस, मधुके साथ,

गुण—यह उत्तम रसायन है-निमोनिया, श्वास, दोर्वल्य-फुफ्फुस विकारोंके लिये उत्तम लाभप्रद है।

२. मयूर तुत्थसे ताम्र निकालना—१ सेर मयूर तुत्थको बारीक चूर्ण करके एक लोहे की कढाईमें डालदें। इसपर एक कपड़ा ढक देना। फिर इस छोटी कढाईको बड़ी कढाईमें रखना। अब उस कपड़ा ढंकी हुई छोटी कढाईपर ४ सेर त्रिफलेका चूर्ण डालना जिससे नीचे वाली कढाई पूरी ढक जावे। फिर इस बडी कढाहीमें १६ सेर पानी भरकर खुले मैदानमें जहां पर दिनको सूर्यकी घाम और रातको चन्द्रमाकी चांदनी निर्बाध मिले वहां रख देना। १ महिने बाद त्रिफलाको निकालकर क्षार बना लेना। यदि कुछ पानी शेष मिले तो छान कर रखलें इससे बढिया पक्की स्याही बनेगी। तथा छोटी कढाईके कपड़ेको साव-धानीसे हटाकर कढाइके पेंदेमें लगे हुये ताम्बेको खुरच कर निकाल लें। जो कि वजनमें लगभग तीन छटांक होगा।

३. हिंगुलसे पारा निकालते हुये ताम्र भस्म बनाना—शुद्ध हिगुल १० तोले, शुद्ध ताम्र चूर्ण १० तोला दोनोको एक साथ खरलकर नीबू या नीमके पत्तोके रसमें घोटना-सूखनेपर डमरुयंत्रमें रखकर पारा उड़ालेना। ऊपरकी हांडीमें आये हुये पारेको अलग लेलें। पेंदेके नीचेकी भस्मको अलग करके इस से दूने वजनमें शुद्ध हिंगुल लेकर नीबू या नीमके रससे पुनः घोटकर सूखने पर फिर डमरुयंत्रमें डालकर पारा उड़ालें। उपर हांडीका पारा अलग लेले। नीचे पेंदेमें ताम्र भस्म मिलेगी। इस भस्मको समभाग शुद्धगधक के साथ नीबूके रससे घोटकर गजपुट देनेसे निर्दोष ताम्र भस्म बनेगी तथा हिगुलमे शुद्ध पारद भी निकल आयेगा।

४. गधकका तैल—पलाशके बीजोंके चूर्णको बकरी के खालिस कच्चे व ताजा दूधमें ७ भावना देकर सुखा ले। फिर इस चूर्णमेंसे १६ तोला लेना और शुद्ध गंधक १ तोला लेकर खरलमे घोट लेना। जब एक जीव होजावे तो पाताल यत्र विधिसे तैल निकाल लेना।

शीतल होनेपर शीशीमें भर लेना।
यह तैल पारदको रञ्जन करनेमें उत्तम है।

रसायनके लिए—

"एतत्तैलसम नान्यल्लोकेऽस्ति रसायनम्"

मात्रा—२ रत्ती तैलको नागर बेलके पानमें लगा-कर खावें। यदि इसमें १ रत्ती शुद्ध पारद व १ रत्ती यह तैल मिलाकर सेवन करें तो परम रसायन है।

---कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन कल्याण रसायनशाला विभाग---

दायां से बायां—बजरंगदास, ग्यारसीलाल, रस वैद्य मांगीलालजी कुर्सी पर, रामचन्द्र, देबीलाल

---कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन मशीन विभाग---
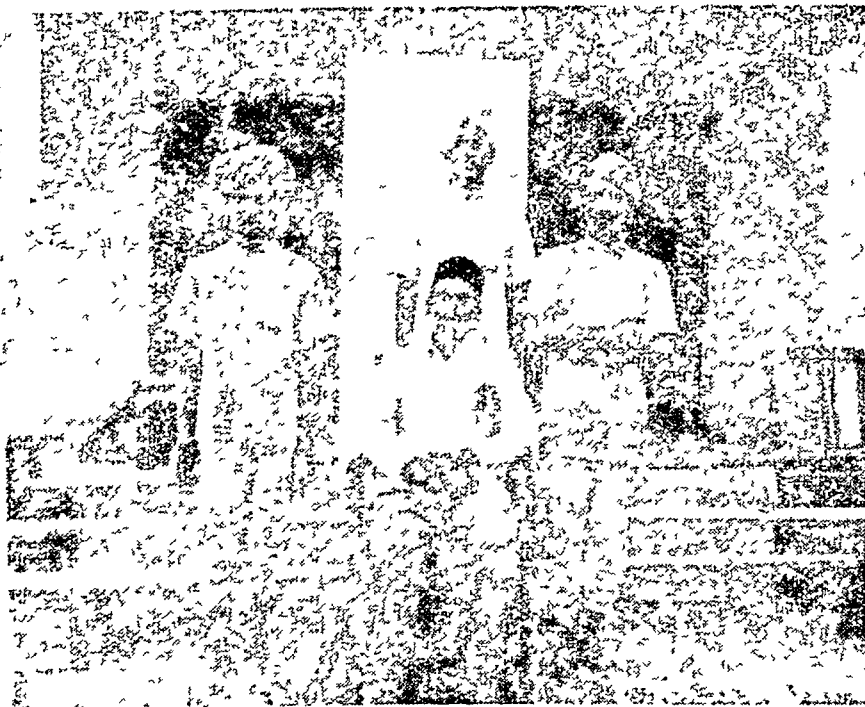
मशीन विभाग (इञ्जिनियरिंग)---कुर्सीपर.—अमीर खां (मिस्त्री) खड़े हुए दाये से बाये—श्रीबक्स. बजरंगदास

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन मुद्रणालय

मुद्रणालय विभाग—दांये से बांये–कृष्णकुमार, राधेश्याम, मोतीलाल लाठी सुपरवाइज़र, गोवर्धनलाल फोरमेन, उदयराम मशीनमेन

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन प्रचार विभाग

प्रचार विभाग—बांये से–रघुनन्दन, प्रचार वैद्य पुरुषोत्तम, लक्ष्मणसिंह

प्राचीन इतिहासकी झांकी

राजर्षि कविवर श्री भर्तृहरिने लिखा है कि—

यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नाऽऽयुषः
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूप खननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

जब तक यह देह रूप घर सबल स्वस्थ है, वृद्धावस्थाका दर्शन नहीं हुआ, इन्द्रियोंकी विषय ग्रहण करनेकी शक्ति क्षीण न हुई हो तथा आयुका भी क्षय न होने लगा हो, तब तक आत्म कल्याणके जिज्ञासु जनको पारमार्थिक कल्याण कर लेना चाहिए। क्योंकि मनुष्य देहके नष्ट हो जानेपर कुछ भी नहीं हो सकेगा। जैसे किसी स्थान पर आग लगी हो और कुआं खोदने का व्यर्थ परिश्रम हो रहा है। वैसे ही मृत्युकी गर्जना सुनने पर कल्याणका प्रयास करना व्यर्थ है।

भारत वर्षके प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालनेपर विदित होता है, कि यह धर्म प्राण भूमि है। विश्व धर्म का अर्थात् प्राचीन भारतीय दर्शन शास्त्र कथित जीवन के कर्तव्य कर्मोंका आग्रह पूर्वक पालन करके प्राणि मात्रको शान्ति प्रदान करना और अपने इहलोक और परलोकका कल्याण करना, यह इस देश वासियोंके पूर्वजोंके जीवनमें प्रतीत होता है।

इस देशमें जो सब कर्तव्य कर्म पालन होते थे वे सब शास्त्रके आधारसे होते थे। इन कर्तव्य कर्मके निर्णयार्थ आचार्योंने विश्व कल्याण कारक भिन्न भिन्न दृष्टिका आश्रय लेकर दर्शन शास्त्रोंकी रचना की थी। ईश्वरके विचारको पृथक् रखकर, ईश्वरको साक्षी रख कर ईश्वरको विश्वका कर्त्ता मान कर, विचार किया है। इसी तरह जीवको नित्य, पुनर्जन्म लेने वाला और कर्म फल भोक्ता मानकर एवं आत्माके मृत्युके पश्चात्की स्थितिकी चिन्ता छोड़कर ही दर्शन लिखे हैं। एवं विश्व की रचना किससेमें हुई, मूल तत्व क्या है? कैसे सृष्टि बनी, सृष्टिका जीव और ईश्वरसे सम्बन्ध क्या है? इनका विचार अनेक विध दृष्टि से किया है।

मुख्य दर्शन शास्त्र, सांख्य, योग, वैशेषिक न्याय, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, ये ६ सनातन धर्मावलम्बियोंके हैं। जैन और बौधोंके दर्शन शास्त्र पृथक् पृथक् हैं। उत्तर मीमांसाका एक अंग रूप रसेश्वर दर्शन है, वह उससे पृथक् नहीं माना जायगा।

उक्त सब दर्शनोंका ध्येय व्यावहारिक सुख प्राप्ति और पारमार्थिक कल्याण रहा था। पारमार्थिक कल्याण का परित्याग करके किसीने भी मानव समाजको शान्ति देने वाले नियम नहीं बनाये थे। जो देश काल भेदसे नियम बनाया जाय, वह पारमार्थिक कल्याण और विश्व कल्याण (विश्व शान्ति) के विपरीत न होना चाहिए। तत्कालमें विपरीत प्रतीत न होने पर भी कालान्तरमें परिणाममें विपरीत न हो जाए, यह भी सोचा जाता था।

यद्यपि सब दर्शनोंके अधिकारी, विषय, सम्बन्ध और फल, इन सबमें अन्तर हैं, तथापि विश्व कल्याणकी भावनारूप गौणफल और पारमार्थिक कल्याण, ये सबको स्वीकार हैं। एक रसेश्वर दर्शनके अतिरिक्त शेष सब दर्शन शास्त्रोंमेंसे किसीके पास जरामृत्युके साथ युद्ध करनेका साधन नहीं है। यह मात्र रसेश्वर दर्शनके पास है। इसके अतिरिक्त दरिद्रताको दूरकर विश्वको शान्ति देनेकी विद्या भी रसेश्वर दर्शनमें है। वह दर्शन शास्त्र ही अपना विचारणीय विषय है।

रसेश्वर दर्शनमें अधिकारी निर्लोभी, सत्य वक्ता, सदाचारी, देव ब्राह्मण पूजक, श्रद्धालु, भक्ति मान यम-नियमका दृढतासे पालन करनेवाला, पथ्य-भोजन करने वालेको कहा है। दुराचरी, स्वार्थी, नास्तिक, विषय लोलुप, असयमी और असत्यवादीको विद्या दान न देनेका दृढता पूर्वक पालन करनेकी आज्ञाकी है। यह मर्यादा प्राचीनकालसे दीर्घ काल पर्यन्त अक्षुण्ण चलती रही थी। आचार्य मर्यादाके पालनार्थ विशेष सावधान रहते थे।

रसेश्वर दर्शनका विषय जराव्याधिको दूर कर देहको अजरामर बनाना था, इसी देहमें मुक्तिकी प्राप्ति कर लेना है। यह विषय सम्यक् प्रकारसे समझाया गया है। एवं आचार्योंने अपना जीवन मुक्तबनाकर व्यतीत करनेके उदाहरण विश्वके समक्ष रखे है।

करीब २००० वर्ष पूर्व तक आचार्योंने मुक्तिको ही प्रधानता दी थी। फिर द्रविड देशवासी आचार्य नागार्जुनके हृदयमें अन्य विचार उपस्थित हुआ। इनका प्रतिज्ञा वचन था कि "रसे सिद्धे करिष्यामि निर्दारिद्र्यमिदं जगत्।" अर्थात् रस (पारद) के सिद्ध होनेपर विश्वके दारिद्र्य दु:खको दूर करूंगा। इस प्रतिज्ञा वचनके अनुरूप कार्य करनेका निर्णय किया। वे ब्राह्मण जातिके थे, सनातन धर्मावलम्बी थे। फिर उक्त प्रतिज्ञा पालनमें सुविधा मिल सके इस लिए उनने बौद्धधर्ममे दीक्षा ली। प्रतिज्ञा अनुरूप ग्रन्थ रचना भी की।

प्राचीन मर्यादा अनुसार साधकोंके स्थानमें स्त्रियां नहीं रह सकती थी। किन्तु नागार्जुनके स्त्रीरजके प्रयोगसे रसबन्ध, जारण रञ्जन और वेध आदि क्रिया सरल और अति न्यून समयमे होती है। इसलिए मठोंमे सदाचारिणी, श्रद्धालु, विश्व सेवा परायण. पद्मिनी काकिणी. कीरुणी, काञ्चिकाचिनी आदि महिलाओंको दीक्षा देनेका नियम बनवाया। इन स्त्रियोंको सबल बनाकर पूर्ण मात्रामें गन्धकका सेवन कराया जाता था। इस सम्बन्धमें रसार्णवमें भी कहा है कि.—

गन्धकं भक्षयेन्नारी दिनानामेकविंशतिम्।
तद्रजो रसराजस्य बन्धने जारणे हितम्॥

जो स्त्री पूरी पूरी मात्रामें पथ्य पालन सह शुद्ध गन्धकका सेवन करीब २१ दिन (क्वचित् १५ दिन, कभी १ मास) तक करती है, उसे मासिक धर्म आने पर रज:स्राव अत्यधिक होता है, और दिनों तक धाराबद्ध निकलता रहता है। उस रजसे रसेन्द्रको यथाविधि भावित किया जाता था। परिणाममें वह अचिरकालमें पारद बंधन कर सकता था।

प्राचीन आचार्योंने विशेषत: पारदके वेधको मुख्य माना था, उसमें निर्मित सुवर्ण कालान्तरमें कदापि निस्तेज नहीं होता था, न नाश भावको प्राप्त होता। खनिजके सदृश उनका अस्तित्व माना गया था। नागार्जुनसे सरलतासे सुवर्ण बन सके इसलिए ताम्र वेध और रजतवेधको अधिकतर पसंद किया फिर चपल. नाग, वङ्ग आदिका उपयोग करके समयकी भी बचत हो, वैसा मार्ग अन्वेषण करके निकाल लिया था।

प्राचीन परम्पराके अनुरूप रसहृदयतन्त्र ग्रन्थ मिलता है। उसमें अन्य मतोंको स्थान नहीं मिला है। दूसरे ग्रन्थमेंसे कुछ भी अंश इतर ग्रन्थसे आकर्षित नहीं हुआ है। उसमें स्त्रियोंको मठमे रखनेकी आज्ञा नहीं है। चपल और नाग, वङ्गके साथ सुवर्ण अभ्रकका चारण करना, इस विधिको प्रधानता नहीं दी। धातुवाद ध्येय नहीं माना था। देहवाद (रसायन) को ध्येय माना था, इस हेतुसे ग्रन्थमें चपलको स्थान ही नहीं दिया। एव नाग, वङ्गके साथ सुवर्ण जारणको 'यह धातुवादके निमित्त है," कह कर गौण स्थान दिया।

यद्यपि नागार्जुन रचित ग्रन्थ रसरत्नाकर और अन्य गोविंदपादाचार्यजीके समक्ष रहे होगें (क्योंकि. नागार्जुनको हुए करीब २००० वर्ष हो गये है, गोविंद-पादाचार्य जी को करीब १२०० वर्ष हुए हैं। तथापि सावधानीसे प्राचीन मर्यादाका संरक्षण करते हुए ग्रन्थ रचनाकी है। रसार्णवमेंसे काफी सहायता ली है। रसार्णवमें कुछ पटल जैसेके वैसे तथा कुछ प्रयोगों की विधि भिन्न वचनोंमें नागार्जुनके रसरत्नाकरसे ली

हो, यह संभवित है तथापि रसहृदयतन्त्रमें इन वचनों को स्थान दिया गया है।

नागार्जुनके रसे सिद्धे करिष्यामि प्रतिज्ञा वचनको कार्यान्वित करनेके लिए बौद्धधर्मावलम्बी आचार्योंने पूर्ण अनुकूलता प्रदान की थी। मठोंमें साध्वियोंको स्थान दिया तथा विश्वविद्यालयोंके भीतर हजारों शिष्योंको रसविद्याकी शिक्षा प्रयोगोंके अनुभव सह दी गई। फिर इनको उक्त प्रतिज्ञा वचनकी पूर्ति करनेके लिए देशमें सर्वत्र भेजे एवं विदेशोंमें भी पूर्व और दक्षिण दिशामें बलपूर्वक बौद्धधर्मके विचारोंका प्रचार कराया।

तत्काल नागार्जुनको अपनी जीवितावस्थामें काफी सफलता मिलनेका अनुभव हो गया था। उनने पहले चक्रवर्ती सम्राट् सातवाहन (शालिवाहन) को रसविद्या की शिक्षा दी थी। रसभस्म या रत्नप्रधान रसायनका सेवन करके दीर्घकालतक जीवित रहे थे। फिर सम्राट् कनिष्कको भी आर्थिक सहायता प्रदान की थी, ऐसा इतिहास परसे विदित होता है। इस तरह उक्त प्रतिज्ञा वचन की सफलताका भास होनेसे नागार्जुनकी तथा बौद्धधर्मकी सुकीर्ति विश्वके कोने कोनेमें फैल गई थी।

रसविद्या द्वारा प्रचारके साथ धर्माचार्योंने भी नागार्जुनका अनुकरण करके रसभस्म, रसायनका सेवन करना प्रारम्भ किया। वे सब पूर्ण विरक्त नहीं थे; कोई कोई विषय लोलुप थे, उनके ऊपर रसभस्मका असर विपरीत हुआ, वे कामांध बने। फिर लालसाको पूर्ण करनेके लिए प्रपंचका आश्रय लेने लगे। इस हेतुसे तन्त्रशास्त्रको अपनाया। मारण, मोहन उच्चाटन, वशीकरण, इन सब प्रयोगोंपर अधिकार प्राप्त किया। संपत्ति, शरीरबल, सत्ताबल, ये तीनों धर्माचार्योंके पास थे। हजारों शिष्य-प्रशिष्य थे। इस हेतुसे रंकसे लेकर राजा तक कोई धर्माचार्योंके विरुद्ध विचार नहीं दे सकते थे। हृदयमें दुःख मानते थे। किन्तु साधान हीन होनेसे सहन करते रहते थे।

इस तरह ५०० वर्ष या न्यूनाधिक वर्षोंतक बौद्धाचार्योंने प्रचार कार्य किया और समाजको भयभीत भी किया। यह परिणाम लक्ष्मीजीकी कृपा के दुरुपयोगसे हुआ है, यह अन्य धर्मावलम्बी आचार्योंने जान लिया था। अतः सब सावधान हो गये थे। वैसी अपने सम्प्रदायकी स्थिति न हो, इस प्रकारके नियमोंको दृढ रखवानेका प्रयास करते रहते थे।

बौद्धधर्मके पतनके साथ साथ नागार्जुनके मूल्यवान ग्रन्थोंका आदर भी कम हो गया था किन्तु रसार्णव और आचार्य नित्यनाथजीके विरचित रसरत्नाकर मे विशेष अंश आ गया है, अभी किसी किसी स्थानपर नागार्जुनका रसरत्नाकर है। हमें अभीतक मूल ग्रंथ नहीं मिल सका है।

कालान्तरमें श्री गोविदपादाचार्यजी की शरणमें भगवत् पादाचार्य जी आये, जो वेदान्तनिष्ठ सिद्ध योगेश्वर और समर्थ. मन्त्र शास्त्रके आचार्य थे। वेद, आचार्य और देवोंके पूजक और विश्व धर्मके कल्याण की भावना वाले थे। उनको गोविद पादाचार्यजी ने दीक्षा दी और उनने शकराचार्य नाम धारण कराया। उनको रस विद्याके रसायनका सेवन कराया था। फिर भी उनने रस विद्याको नहीं अपनाया।

शंकराचार्य जी ने बौद्ध धर्मके मुख्य आचार्योंको परास्त किया। उनके मुख्य बुद्ध गयाके मठको अपने अधिकारसे ले लिया। फिर बौद्ध धर्मको दूर करनेका आरम्भ किया। जनता त्राहि त्राहि कर रही थी। इस हेतुसे शंकराचार्यजीके प्रचार कार्यको वेग मिल गया। बौद्धोके रस विद्याके जो अनुयायी थे, उनमेंसे कितने जैन बन गये। कई सनातनी बन गये। इस तरह मात्र ३ वर्षके भीतर बौद्ध धर्मका अस्तित्व भारतमेंसे दूर हो गया था

लक्ष्मी जी की कृपाका दुरुपयोग न हो, इस लिए जैन धर्मावलम्बियोंने रस विद्या द्वारा सम्पादित उपयोग देवालय बनवानेमें और धर्म सेवा करनेमें किया था। व्यक्तिगत आचार्योंका पतन यद्यपि इतिहास में मिलता है, तथापि अद्यापि पर्यन्त जैन दर्शनके अनु-

यायियोके समूह द्वारा रस विद्यासे प्राप्त सम्पत्तिका दुरुपयोग होनेका उदाहरण नहीं मिलता।

नाथ सम्प्रदायमें नागार्जुनके रस रत्नाकर आदि ग्रन्थोसे आचार्य नित्यनाथजी ने रस रत्नाकरकी रचना की है। काफी अश प्राचीन रस रत्नाकरसे अवतरित हुआ हो ऐसा संभव है। भीतर भी कई स्थानों में वैसी ही रचना मिलती है। नाथसम्प्रदायमें १. दर्शनीय २ ओघड, दो विभाग हुए। कई आचार्य पतित हुए। फिर भविष्यमें अधिक रस विद्याका आश्रय लेना ही बन्द हो गया।

सनातन धर्मावलम्बियो ने रस विद्याको अपनाया था। उस विद्याके धातुवाद द्वारा सम्पत्तिकी प्राप्ति करते थे। कदापि आचार्य अपने निजी उपयोगमें नहीं लेते थे, स्वयं निष्काम सेवा करने वाले, सदाचारी रहते थे। देवोको सम्पति समर्पित करते थे ओर विश्व कल्याणके निमित्त धर्म प्रचारकों को दान या सहायता देते थे। जैसे सौराष्ट्रके सोमनाथ महादेवके पूजारीका नियम था कि प्रतिदिन प्रातःकालको १०८ सुवर्ण मुद्रा तथा अमुक रत्न भगवान् सदा शिवके भण्डारमें समर्पित करना तथा १०८ सुवर्ण मुद्राका दान ब्राह्मणोको देना। यह कीर्ति विदेशमें फैली थी। इसका परिणाम १०२४ ई० में महमूदगजनवीने आक्रमण किया था। चारो औरसे सम्पतिको लूटी थी। विदेशियोका आक्रमण वार वार होने लगा था। अन्तमें ११९३ ई० में भारत में विदेशी राजकी स्थापना हुई। परतन्त्र बना। नैतिक नियमोंपर आक्रमण हुआ। जनताके सदाचार रूप धर्मका दिन-प्रति-दिन क्षय होने लगा। यह स्थिति अभी तक चालु रही है। चाहे कुछ वर्षोंसे भारत स्वतन्त्र बना है। किन्तु राज्य सत्ता स्वार्थी और पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा वालोके हाथमें है।

अब अपने पास रस विद्याके परिणामका इतिहास है। रस विद्या को यदि गुप्त रखी जाती है, श्रेष्ठ कोटि के अधिकारीको ही दान दिया जाता है, तो दुरुपयोग की हानि कम होती है। अधिकारीको पहले ही 'शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरञ्जनोऽसि, ससार मायापरिवर्जितोऽसि।' इस मन्त्रके ध्येयको सुदृढ़ कराया जाय, और फिर रस विद्याका दान दिया जाय, तो देश और समाजके पतन वाली स्थितिकी पुनरावृत्ति न हो सके।

यदि नागार्जुनके प्रतिज्ञा वचनको प्रधानता देकर अधिकारी का निर्णय किये विना विद्या दान देना प्रारम्भ रखा जायगा, तो भगवती लक्ष्मी मोहिनी रूप धारण करके कहेगी कि आप तो शुद्ध, बुद्ध, ब्रह्मज्ञानी हो, आपको संसारकी मायाका लेप नहीं लग सकता, आप ने सर्वस्व श्री कृष्णार्पण किया है, ईश्वरकी शरण स्वीकार की हैं। आप दयालु है, अतः आपके चरणोंमें लक्ष्मीको स्थान दिया जाय, तो क्या आपत्ति है। आप तो निर्विकार है। आपको दयालु होना चाहिए। इन वचनोके छलमें आ जायें, तो परिणाम क्या आता है, यह उपर्युक्त इतिहास दर्शा रहा है।

अब पाठक, आप किस विचारको प्रधानता देते हैं, यह आपको सोचना होगा। यदि आप उत्तम अधिकारी बन सके, निर्लेप, निर्लोभी, संयमी और निरहंकारी रह सकें, पूर्ण सदाचारका पालन कर सकें तो सानंद रस विद्याकी शरण लेवें। आपको निःसंदेह आश्रय मिलेगा ही।

यदि आप कच्चे हृदयके हैं या ऐसा बन जानेका भय है, तो आपको अपने हृदयको विशुद्ध बनानेकी सलाह देऊंगा। फिर कैसे वर्ताव करना, यह आपके ऊपर छोड़ता हूँ। इतिशम्।

भारतीय रसविद्या

लेखक—रसविद, वैद्यराज मणिशंकर, का० याज्ञिक, राजकोट,

रसविद्यापर गोप्या मातृगुह्यमिवध्रुवम् ।
भवेद् वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशनात ।

भारतीय तत्वज्ञानके तीन प्रवाह सुरसरि गंगा प्रवाहके समान पूर्व गामी हैं । वे अनेक छोटी बड़ी सरिताओंके निर्मल प्रवाहोंसे सिंचित होकर समृद्ध बन गये हैं । भारतीय तत्वज्ञानकी भिन्न प्रस्थान श्रेणियां त्रिवेणीके समान तीर्थ रूप बनकर सरितावत् वह रही है, बाहरसे भिन्न प्रतीत होने वाली तीनो श्रेणिया १, ब्राह्मण तत्वज्ञान, २. बौद्धतत्वज्ञान और ३ जैन तत्व ज्ञान-श्रेणियां हैं । सापेक्ष दृष्टिसे तीनों-श्रेणियां अभिन्न और भिन्न जैसी हैं ।

विषय प्रवेश

शैवदार्शनिकोंके भिन्न भिन्न सम्पदायोमें "रसेश्वरदर्शन" सज्ञासे पहिचाना जाने वाला एक सम्प्रदाय है । जिसमें "रसविद्या" विषयका चिन्तनात्मक और प्रयोगात्मक ज्ञान दर्शाया हुआ है । शैव सम्प्रदायगत माहेश्वर मतमें रसेश्वर दर्शनके मुख्य सिद्धान्त मिलते हैं । महेश्वर सम्प्रदायका वर्णन वायु पुराणके पूर्वार्द्ध में २३ वें अध्यायमें प्राप्त होता है । श्री वाचस्पति मिश्रके मत अनुसार माहेश्वर सम्प्रदाय ४ भागोंमें विभाजित हैं ।

(१) पाशुपत (२) कारुणिक सिद्धान्त (३) कापालिक और (४) शैव, चारों ही स्वतंत्र माहेश्वरसे निर्मित सिद्धान्तके अनुयायी हैं ।

यहां हम सांपदायिक चर्चाको स्थान नहीं देते हुये रसेश्वरदर्शनके विषयमें कुछ विचार प्रकट करें तो रसेश्वरदर्शन (रसविद्या) का वास्तविक सबध तन्त्र शास्त्रसे होना पाया जाता है । तन्त्रशास्त्र और उसके उपासकोंके बारेमें बहुतसी भ्रामक मान्यतायें फैली हुई हैं । इतना ही नहीं किन्तु शिक्षित और साधारण जनता भी तन्त्रशास्त्र के प्रतिघृणा करती है । किन्तु निष्पक्षपात दृष्टिसे विचार करे तो तंत्र शास्त्रकी विचार श्रेणी और साधना पद्धति उदात्त और पवित्र है । इतना ही नहीं किन्तु वेदों और षड् दर्शनोकी साधना पद्धति इतनी उपादेय है जितनी कि साधनातन्त्रशास्त्रोंकी साधना पद्धति ग्राह्य है । रसेश्वर दर्शन (रसविद्या) के सूक्ष्म तत्वोंके यथार्थ स्वरूपको समझनेके लिये तन्त्रशास्त्रोका गुरुगम्य अभ्यास और पात्रता होना आवश्यक है । तंत्र शब्दकी उत्पत्ति "काशीकावृत्ति" में विस्तारार्थ तन्-धातु औणादिकट्रन् (सर्वधातुभ्यष्ट्रन्) के योगसे प्रदर्शित है । उससे तन्त्र शब्दका अर्थ तन्यते विस्तार्यते ज्ञान मनेनैति तन्त्रम् । यह है कि जिससे वड़े ज्ञानका विस्तार किया जा सके । और जो साधको का रक्षण करे । इस कारणसे शैव सिद्धान्तके कामिक आगम तन्त्रकी व्याख्या देते हुये वतलाया है कि—

तनौति विपला नर्थान् तत्वमन्त्र समन्वितान् ।
त्राणम् च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्य भिधीयते ॥

तात्पर्य यह कि तन्त्रका व्यापक अर्थ यह होता है कि शास्त्र सिद्धान्त, अनुष्ठान और विज्ञान विषयक ग्रन्थ इत्यादि । भगवान् शंकराचार्यजीने सांख्यको भी तन्त्रनामसे सम्बोधन किया है ।

(स्मृतिश्च तन्त्राख्य परमर्षिप्रणिता २।१।१ शां-भा)

महाभारतके न्याय, धर्म शास्त्र, योगशास्त्र इत्यादि ग्रन्थोंके लिये तन्त्र शब्दका अर्थ मिलता है ।

न्याय तन्त्राण्यनैकानि तैस्तैरुक्तानि वादिभि ।

किन्तु अपना मत यह है कि यन्त्र मन्त्रादि समन्वित एक विशिष्ट साधन मार्गका जो उपदेश देता है वह "तन्त्रशास्त्र" है । तन्त्रका दूसरा नाम आगम है । वाचस्पति मिश्रने तत्व वैशारदी ग्रन्थमें व्याख्या करते हुए प्रदर्शित किया है कि—

आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद्-
अभ्युदयनिश्रयसो पाया' स आगम. ।

आगम वह है कि जिसके द्वारा भोग और मोक्षका उपाय बुद्धिमें आ सके या उतर सके। यह व्युत्पत्ति आगम और निगमके भेदको बताती है। कर्म उपासना और ज्ञानके स्वरूपको निगम, (वेद) दर्शाते हैं। और इनके साधनभेद उपायोको आगम सिखाते हैं। उदाहरणार्थ, अपन शाक्तागमको लें। अद्वैत वेदान्तमे ही अद्वैत तत्वोकी उत्पत्ति प्रवल युक्तियोके द्वारा करनेमें आई है। उसकी व्यवहारिक योजना शाक्तागम "शाक्त-तन्त्रों" में उपदिष्ट है। निगम और आगमका परस्पर सम्बन्ध है विशेष कहें तो आगमका मूल निगम ही है। वर्तमान कलियुगमें तान्त्रिक उपासनाको विशेष महत्त्व दिया है। (कलौ आगम सम्मत) कुलार्णव तन्त्रमें इन विचारोंके पुष्टिरूप प्रमाण महानिर्वाणतन्त्र में मिलता है कि–

"बिना आगम मार्गेण कलौ नास्तिगति. प्रिये।

कलियुगमें आगम मार्गके बिना कोई गति नहीं। तन्त्रशास्त्रमें देवताओंकेध्यान और उपासनाके ५ अङ्ग बतलाये गये हैं। (१) पटल (२) पद्धति (३) कवच (४) स्तोत्र (५) नाम सहस्र येतत्वोकी विशेषता युक्त क्रिया हैं।

तन्त्र साधन पद्धतिमें "श्री विद्या"के उपासकोका एक विशेष वर्ग है। भाष्यकार भगवान् शंकराचार्यजी भी "श्रीविद्या"के अनुयायी थे। ऐसे उनके साहित्य परसे मान सकते हैं। 'श्रीविद्या'के बारह उपासक प्रसिद्ध हैं। (१) मनु (२) चन्द्र (३) कुबेर (४) लोपामुद्रा, (५) मनमथ, (६) अगस्ति. (७) अग्नि, (८) सूर्य, (९) इन्द्र, (१०) स्कन्द, (११) शिव. (१२) दुर्वासा। यहांपर श्रीविद्याके विषयमें मात्र अगुली निर्देश करने का कारण यही है कि श्रीविद्याका रस विद्याके साथमें सम्बन्ध है। रस विद्याके सर्वोत्तम उपासकोकी वह उपास्य विद्या है जिससे यहां श्री विद्याका स्मरण किया गया है। भारतवर्षमें रसेश्वर दर्शन (रसविद्या)के अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। प्रसिद्ध बौद्धाचार्य नागार्जुनने 'रस-रत्नाकर' ग्रन्थ लिखकर दिगन्तव्यापी यश प्राप्त किया है। वे रससिद्ध थे, अत "सिद्ध नागार्जुन"के नामसे प्रख्यात हुये। पूज्य गोविन्दभगवद्पादाचार्यने "रस-हृदय" ग्रन्थमें अपने निजी हृदयके उद्‌गारोका भण्डार स्पष्ट भर दिया है। श्री विष्णुस्वामी रचित "साकार-सिद्धि नामक ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है, किन्तु सायण-माधवने उस ग्रन्थको 'रसेश्वरदर्शन' में स्मरण किया है।

तांत्रिक उपासना के ३ मुख्य केन्द्र हैं, जहा उपासना विधिमें रस-विद्याकी सांकेतिक भाषाके अन्दर प्रसिद्ध भिन्न भिन्न द्रव्योके प्रयोग होते हैं।

ये केन्द्र—केरल, काश्मीर और गौड़ (बंगाल अथवा आसाम) हैं। (शक्तिसंगमन तत्र)।

रसेश्वर (रस विद्या) के मुख्य सिद्धान्त

इस सम्प्रदायके मुख्य सिद्धान्त ये हैं कि—जीवन्मुक्तिकी प्राप्तिके उपाय द्वारा दिव्य शरीर प्राप्त करना। जिस शरीरमें अनेक व्याधियां उत्पन्न होकर साधारण काम करनेमें भी असमर्थ बनती है, उस शरीरसे ब्रह्म साक्षात्कार कैसे हो सकता है? किसी समयमें इस शरीरको ज्वर कष्ट देता है, किसी समय श्वास, कास की व्याधि आ घेरती है। इसलिये ऐसे शरीरसे आत्यन्तिक कष्ट दूर नहीं हो सकता, इस हेतुसे शरीरको दृढ़ बनानेकी आवश्यकता है। इस निमित्त पिण्डस्थैर्य (शरीरकी स्थिरता) संपादन करनी चाहिये।

भगवान् श्री शंकराचार्य जी के गुरु श्री गोविन्द-भगवत्पादाचार्य ने 'रसहृदय तन्त्रमें कहा है कि—

इति धन शरीरभोगान्मत्वाऽनित्यान् सदैव यतनीयम्।
मुक्तौ सा च ज्ञानात्तच्चाभ्यासात् स च स्थिरे देहे।

शरीरको स्थिर बनानेके लिये 'पारदका विधि पूर्वक प्रयोग करना' यह रस विद्याका मुख्य 'सिद्धान्त है। ससारके दुःखोंको दूर करनेकी सामर्थ्य पारदमें है। इसीलिए 'संसारस्य पर पार दत्तेऽसौ पारद स्मृत'

(रसार्णव)

षड्दर्शन शरीर छूटनेके पश्चात् (पिड पातनान्तर)

(शेष पृष्ठ ६६१ पर देखे)

निखिल भारत पारद अनुसंधान सम्मेलन, कालेड़ा

लेखक—शान्तारामजी वैद्य सुरत

समस्त भारत वर्षके सम्मिलित अनेक आयुर्वेदिक सम्मेलन, कई वर्षोंसे होते आ रहे हैं। आयुर्वेदकी प्रगतिके निमित्त और वैद्योंके संगठनके लिये उनकी आवश्यकता निर्विवाद है। तथापि अष्टाङ्ग आयुर्वेदके विभिन्न अंगोंके लिए इस प्रकारके विशेष संमेलन मिलने की प्रतीति नहीं होती है। हाँ, पण्डित मालवीयजीने बनारसमें त्रिदोष चर्चा सभामें भारतके कतिपय विद्वानो को निमन्त्रित किया था और वर्तमानमें वैद्यनाथ भवन भी उस प्रकारकी प्रवृत्ति कर रहा है।

किन्तु कालेड़ामें पूज्य स्वामीजी कृष्णानन्दजी महाराजने अखिल भारतके स्तरका लक्ष्य रख करके पारद अनुसंधान समेलनमें वैद्योंको निमन्त्रित करके एक नूतन ही विचार धारा दी है।

डाक्टर लोग प्रति वर्ष अपनी चिकित्साकी विविध शाखाओंके सम्मेलनोंकी नियमित योजना करते रहते हैं। जैसे कि.—बालरोग, स्त्रीरोग, सौतिक रोग, संक्रामक रोग, हृदय रोग, मानस रोग आदि। इन रोगोंकी शाखा-प्रशाखाओंपर भी सूक्ष्मता पूर्वक वे विचार विनिमय करते रहते हैं। अपनेको मिलनेवाली सफलता और प्रतिबन्धोंकी सरल हृदय पूर्वक वहां चर्चा होती रहती है, किन्तु इसके विपरीत आयुर्वेदके अनुयायी अपने वैद्योंके मिलने वाले सम्मेलनोंके बुलानेमें प्रतिबन्ध उपस्थित करनेके चाल बाजियों की योजना करते रहते हैं।

अब तो समय अवश्य आ गया है कि जब नियमित रीतिसे अपन आयुर्वेद की शाखा-प्रशाखाओं के सम्बन्धमें विचारणा करके आयुर्वेदके विभिन्न अङ्ग-उपाङ्ग, जो भारतवर्षके भीतर प्रान्तोंमें बिखरे हुए अद्यापि पर्यन्त सुरक्षित पड़े हैं। उन सबको सगृहीत करके आयुर्वेदकी मंगल मूर्त्तिकी नूतन पद्धतिसे प्राण-प्रतिष्ठा करें।

मार्च ता० २७, २८, २९ के दिनोंमें यह सम्मेलन कालेड़ा-कृष्ण गोपालमें होनेका मिला था। रस शास्त्रमेंसे पारदको निकाल दें, तो शेष क्या रहेगा? उसका उसमें अद्वितीय स्थान रहा है, पारदके उपासक उसका भगवान् शंकरके समान पूजन करते रहते हैं। उसकी उपासनासे इस लोक और परलोक, दोनोंका कल्याण प्राप्त होता है।

रस चिकित्साको अपन दैवी चिकित्साके नामसे जानते आये हैं। फिर भी आज चिकित्सामें पारदका जो उपयोग हो रहा है, उसे बिना समझे बूझे माना हुआ "मन माना" के अतिरिक्त अन्य विशेषण मैं नहीं दे सकता। बाजारसे मिलनेवाले पारदको लाकर तुरन्त अपन कज्जली बनानेके लिए व्यवहृत करते हैं। बहुत बहुत किया तो कतिपद चिकित्सक हिंगुलसे निकाल कर उपयोगमें लेते हैं, किन्तु उनके संस्कार करनेका ध्यान तो बड़े धन्वन्तरि (प्रतिष्ठित चिकित्सक) की भी लक्ष्यमें नहीं आता है।

दूसरी और वर्तमानमें रस चिकित्साके इष्ट इच्छित परिणाम नहीं आते हैं, ऐसा अपन चिल्लाकर कहते रहते हैं, अब उसके सस्कार और विविध शास्त्रीय योग प्रत्यक्ष देखनेका सौभाग्य मुझे मिला है, इसे मैं जीवन का अमूल्य अवसर तक मानता हूँ।

पारदके सम्बन्धकी एक चिड़ (शूग, उपरामता) मेरे अभ्यास कालके भीतर मेरेमें घुस गई थी, उसकी लगन लगे हुए पुरुष बरबाद हो जाते हैं। सेसे सुवर्ण और रौप्यके किमिया करने वालोंको लोग, जन समाज सांई या महात्मा सम्बोधन करते हैं। एवं उस मूल या बूटीके पीछे बहुधा पागलके समान दौड़ते फिरते हैं। तथा अपने प्राथमिक कर्तव्योंको भी वे भूल जाते हैं। ऐसे एक गृहस्थका दर्शन हमें कालेड़ामें प्रत्यक्ष भी हुआ है। वे नरवादीके किनारे आकर खड़े हुए थे,

किन्तु कहते थे कि इस जन्ममें तो नहीं, अगले जन्ममें भी मै पारदको नहीं छोडूंगा ऐसे उपासकोंको हृदयसे अवश्य नमस्कार करता हूँ, किन्तु व्यवहार उससे पृथक् रहनेकी सलहा देता है।

पूज्यपाद नारायण स्वामी, जो भूतकाल में क्रान्तिवीर श्री सावर करके साथी थे। उनने साधु बननेके पश्चात् भी करीब ७५००० रुपये पारदके पीछे खर्च किये है, फिर भी उनकी धारणा अभी तक सफल नहीं हुई है। उनका उद्देश्य चाहे उतना उन्नत हो, फिर भी यह है पारदकी पकड, उसमेंसे फंसे हुए कोई नहीं छूट सकते।

कालेड़ामें ऊपरके नियमके अपवाद स्वरूप हमें दर्शन करनेका मौका मिला। पू० स्वामी श्री कृष्णानन्द जीके साथ गृहस्थ श्री शांतिलाल भाईका वहां विरल योग हुआ है, एवं दोनो हैं पारदके महान् उपासक। करीब करीब वैज्ञानिक होकर आरूढ हुए है। उनमें जो पारद की गंभीर समझ, पारदकी भक्ति और उसके द्वारा अपना वाञ्छित प्राप्त करनेकी लगन मनुष्योंको आश्चर्य चकित कर देती है। पुन. स्वामीजी गुजरात वासी है, किन्तु उनको प्रान्तीयताका बन्धन नहीं हैं। किन्तु शान्तिलाल भाई भी गुजराती है. यह जानकर अपने अहो भाग्यका पारद कई डिग्री ऊंचा चढ जाता है।

भाई श्री शान्तिलालजी के परिचयार्थ एक पृथक् लेख चाहिए। किन्तु मैं यहां कालेड़ामें प्रवर्तित रस यज्ञ तक की ही सीमा निश्चित करता हूँ। पूज्य नारायण स्वामी जैसे पारदके अधिकारी महात्मा से जब मैने ऐसा कहते हुए सुना कि, अब मै मर जाऊगा, तो भी मुझे रज नहीं होगा। कारण कि मेरा उठाया हुआ कार्य अपूर्ण नहीं रहेगा। तब किसे अभिनन्दन देना चाहिए, उसका मुझे सूझ नहीं पड़ा इस तरहके पारदसे सुवर्ण बना ही है। और उसका अधिकृत शिला लेख भी मैंने स्वय बिरला मंदिर देहलीमें पढ़ा है। श्री महादेव देसाई, ठक्कर बापा, बिरलाजी, जैसे सम्मान्य नेताओंके समक्षमें वैद्यराज कृष्णपालजी शास्त्रीके नामके सज्जनने सुवर्ण बना दिया था और बाजारमें भी यह बिक गया था, अतः काम करने वाले व्यर्थ स्वप्न सेवन करते है, वैसा नहीं है।

श्री शान्तिलालजीका जो कार्य हमने प्रत्यक्ष देखा है और उनके साथ कुछ विचार विनिमय करनेकी सुविधा भी मिली, उस पर से ऐसा निश्चित समझमें आता है कि बहुत समीपके भविष्यमें वे कलईमेंसे कंचन उत्पन्न कर सकेंगे। शुक्लतुण्ड ताम्र उनने योजित प्रदर्शनमें भी उपस्थित किया था कि जिसमें सुवर्णकी रेखाए स्पष्ट अङ्कित होती थी। रौप्यनिर्माण करनेमें भी उनको सफलता करीब करीब मिल गई है।

अन्यत्र प्रदर्शनमें कहीं प्रतीत न हो सके वैसे अनेक नमूने, भोमिया, विड, विविध सत्वपातन. मिश्र धातु (शुल्बनाग, वर नाग आदि), अग्नि स्थायी फिटकरी, अग्निस्थायी टंकण, अग्निस्थायी सोरा, क्राटी आदि जो अनेक द्रव्य पारदकी क्रियामें उपयोगी होते हैं, वे निर्माण कर लिए गये हैं। ये सब हमें देखनेको मिले। दिन-प्रति-दिन उनके उत्साह और चिन्तन बढते ही जाते हैं।

बुभुक्षित पारदकी बातोको मै करीब मेरे हृदयसे गप्प ही मानता था। जो कि रस शास्त्र (Law of Constvation of energy) जैसे नियम रद्द हो गये हैं; ऐसी बात तो मै कई बार करता था, किन्तु सुवर्णके वर्कको पारद खा जाए और फिर भी अधिक खानेको तत्पर ही रहे, यह प्रयोग देखा है, जो अतिशय मनको आकर्षित करने वाला था।

प्रश्न करने वाले तो करते ही रहेंगे कि सुवर्ण पारदमें बढानेपर उसके वजनमें वृद्धि होती है या नहीं? वह कितने परिमाणमें स्वर्णका ग्रास कर सकेगा और वैसे पारदसे बने हुए चन्द्रोदयमें सुवर्ण बोतलके तल भागमें रहेगा कि चन्द्रोदयके साथ संमिलित होकर ऊपर चढ जायगा (कण्ठस्थ हो जायगा)? इस प्रकार के कई प्रश्न सामान्य है। किन्तु मात्र पूछनेके लिए ही ऐसे प्रश्न इन उपासकोंको पूछेंगे, तो उनका मस्तिष्क बिगड जाता है, वे स्वीकार करते हैं कि २४ घण्टे अग्निके पास रहकर तपकर उनके मस्तिष्कका पारा बहुत ऊंची डिग्री पर चढा हुआ रहता है और कई बार तो वह अकस्मात् प्रज्वलित हो जाता है या वे मौन

बन जाते हैं कि किसी प्रश्नका उत्तर ही नहीं देते।

ऐसे महानुभाव अपने प्रश्नोंका उत्तर न देवें, तब अपनेको शान्ति पूर्वक अधिक राह देखना चाहिए। यहांपर लोह सिद्धि और देह सिद्धि के विचार करने रहेंगे, तो उसका अन्त नहीं आयगा, अपन आगे बढ़ें।

परिचय

सबसे पहले अपनेको कालेड़ा ग्रामका थोड़ा परिचय कर लेना चाहिए। जो राजस्थानमें उसका हृदयके समान रहा हुआ है। ५०-६० मील मोटरसे जायें, तब १०० मकानका ग्राम कालेड़ा आता है। अपन जानते हैं कि राजस्थान करीब रेगिस्थानके समीप आया हुआ रूक्ष प्रदेश है। वहां होने वाली जलकी तङ्गीकी कई कथा अपने सुनी हैं। किन्तु उसकी प्रजामें जो सहज शान्तता है, भक्ति है, वो भी अद्वितीय है। मीरांबाई, पद्मिनी और महाराणा प्रताप सिंह जी को जन्म देने वाली वह भूमि है।

राजस्थानमें पलाश अतिशय होते हैं। मानो कि वे अपने देशकी रूक्षता का ही प्रतीक न हो। ये दूसरी और प्रचण्ड सूर्यके तापसे सूखे वृक्षोंपर नये प्रफुल्लित होने वाले पलाश पुष्पसे भूमिका काव्य बन जाता है ऐसी धारणापर मीराबाई और प्रतापके समान काव्योंकी उत्पत्ति आज भी अतिशय होती रहती है।

राजस्थानकी सरकार अति जाग्रत है। पेपरोंसे कांग्रेसके भीतर फूट पड़नेके समाचार अपन पढ़ते रहते हैं। फिर भी अपनी प्रजाके लिए वे अति जाग्रत हैं, ऐसे प्रदेशमें चातुर्मासके जलको संगृहीत करके बनाये हुए तालाब और निकाली हुई नहर वहां देखने को मिलती है नहरोंके किनारे किनारेपर अरहमा (आम्र,के जगल भी मीलों तक विस्तृत प्रतीत होतेहैं।

अपनी वनश्रीके संरक्षणार्थ वहांका वन विभाग भी सचेत रहता है। नये वृक्ष बोनेका और पोषण करने का उनका प्रयत्न भी प्रशंसनीय माना जायगा। अपने वैद्य इस वस्तुकी सूची नहीं रख सकेंगे, तो अपन वैद्य नहीं रह सकेंगे। स्वयं वैद्योंके लिए भी राजस्थान सरकार अतिशय ममता रखती है, ऐसा भास होता है।

राजस्थानमें ६५० से अधिक आयुर्वेदिक दवाखाने, सरकार द्वारा संचालित हो रहे हैं। दो तीन कॉलेज, रसायन शाला, रिसर्च (अनुसंधान) केन्द्र भी चलते हैं। वहाके आयुर्वेद डाईरेक्टर श्री. पं० प्रेमशंकरजी शर्मा अति उत्साही आयुर्वेद भक्त हैं। बम्बई प्रान्तके उपस्वास्थ्य मन्त्री डा० कैलाश भी उनके कार्यसे प्रभावित हुए हैं। बम्बई राज्यकी अपेक्षा राजस्थानकी आयुर्वेदिक परिस्थिति बहुत अच्छी मानी जाती है।

करीब ३० वर्ष पहले एक गुजराती सन्यासी कालेड़ा जा पहुँचे और वहांपर आयुर्वेद धूनी जमाई. वहांके इस्तमरारदार ठाकुर नाथूसिंहजी का आत्मीय सहकार प्राप्त हुआ। समस्त जागीर को भी उनने आयुर्वेदके लिए न्योछावर की, स्वामीजीके वे अनन्य शिष्य हैं और आज वहां श्री और सरस्वतीका विरल सुयोग हो रहा है।

१९४५ ई० में यह संस्था रजिस्टर्ड ट्रस्टके रूपमें रूपान्तरित हो गई है और प्रारम्भमें जिसके पास ५००००) रु० था वहां आज ५ लाखसे अधिक सम्पत्ति इकट्ठी हो गई है, डॉ कैलाश जैसे स्वाभावी सज्जन इस संस्थाके ट्रस्टीयोंमेंसे एक है। वहांपर आज हीरा भस्म जैसे प्रकारकेउनि मूल्यवान औषध भी विश्वस्त प्रकार से मिल रहे हैं,

संस्थाके पास अपना निजी प्रेस है। करीब २६ पुस्तकोंका लेखन, सम्पादन छपाई कार्य हो चुका है, अपना "स्वास्थ्य" नामका एक हिंदी मासिक पत्र भी ६ वर्षोंसे चल रहा है। धर्मार्थ आयुर्वेदिक आतुरालय भी जनताको एक आशीर्वादरूप हो रहा है। वतमानमें दूर दूरसे उपराम हारे हुए, और थके हुए रोगी वहा चिकित्सार्थ आते रहते हैं। एवं दुःख मुक्तिका अनुभव करते हैं।

पारद अनुसधान जैसा विशिष्ट कार्य भी आज संस्थाके आश्रयसे करीब १६ माससे चल रहा है। आज कालेड़ा आयुर्वेदका यात्रा धाम बन रहा है। उतनेसे पूज्य स्वामीजीको संतोष नहीं हो रहा है। उनका मनोरथ है कालेड़ाके आंगनमें एक साधन संपन्न आयुर्वेद महाविद्यालयको प्रारम्भ करानेका और फिर आगे

चलकर वहां विश्वविद्यालय (युनिवर्सिटी) की योजना को प्रत्यक्ष देखनेका। इस समय तो संस्थाको पैसे की खेंच है। संस्थाके शिरपर ५५०००) रु० का कर्ज है। प्रान्तिक सरकार सहायता प्रदान करनेको तत्पर है और केन्द्रीय सरकारसे भी उनको मिल सकेंगे। किन्तु स्वामीजीकी ऐसी इच्छा है कि संस्था अपने पैरोंपर खड़ी रहे। आर्थिक सहायता लेनेपर कई अन्तराय आते रहते है। संस्थाकी स्वतन्त्रताका निरोध होता है, अतः सरकारी बंधन जितने कम हों, उतनी ही संस्था प्राणवान बन सके। ईश्वर स्वामीजीके मनोरथोंकी पूर्ति करनेके लिए सहायता प्रदान करें। और उनको दीर्घायु बनावे।

ता० २६ को शामको मेरे मित्र शशिकान्त देसाई-निर्माता श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती सहकारी आयुर्वेदिक फार्मसी लिमिटेडके साथ हम कालेडा पहुंचे। हमसे पहले ही जामनगरसे रसायनाचार्य श्री. वासुदेवभाई और उनकी मंडली पहुच गई थी। बम्बईसे भी आयुर्वेद विज्ञानके तन्त्री भाई श्री नवनीतलालजी पंड्या और अन्य मित्र भी उपस्थित थे। अत स्वजनोंके मिलनेसे अपरिचित प्रदेशमें क्षोभ दूर हुआ और आनद उत्पन्न हुआ, फिर तो करीब ३० गुजराती बन्धु भी आ पहुचे और सब मिलकर लगभग २५० प्रतिनिधी समस्त भारतमेंसे आ गये।

प्रथम दिन

ता० २७ को सुबह समेलनका शुभ प्रारम्भ ध्वजारोपण विधि ठाकुर साहिब श्री नाथूसिहजीके हस्तसे हुई। ध्वजवंदनके पश्चात् मण्डपमें भगवान धन्वन्तरिका पूजन कुवर साहिब जसवंतसिंहजीके करकमलोंसे हुआ। पारदकी प्रार्थना भी सब दिनोंमें नियमित होती रही। समेलन उद्घाटन कोटाके युवराज कुमारके वरद करकमलोंसे हुआ, उनने विशुद्ध हृदयसे कहा कि वे आयुर्वेदके अभ्यासी नहीं है। फिर भी जिस देशमें जो वनस्पति होती हो, उस देशके जलवायुमें उत्पन्न होने वाले रोगोंकी वे ही वनस्पति निवृत्ति कर सकती हैं, हैं, अतः आयुर्वेदको अधिक प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

राजस्थानके आयुर्वेदके डाइरेक्टरने भी सब उपस्थित वैद्य बन्धु-बहनोंका अभिनन्दन किया और दर्शाया कि ऐसे छोटे ग्राममें उतने अधिक आयुर्वेदके उपासक इकट्ठे हुए हैं। यह देखकर हिमालयकी गिरी कंदरामें समिलित होकर शास्त्रचर्चा करने वाले ऋषि मुनियो का स्मरण हो जाता है।

पिताने पुत्रसे यह विद्या गुप्त रखी है। किन्तु आज के युगमें यह गुप्तता आयुर्वेदके लिए हानिकर हो रही है। अत सब वैद्य बन्धुओंको चाहिए कि खुले हृदयसे यहांपर चर्चा करें और जनता की सुख समृद्धिमें अपना हिस्सा देवे। आज तो चन्द्र-सूर्यके पास पहुँचनेके प्रयोग हो रहे है और अन्य चिकित्सा पद्धतियोंका सामना करनेकी परिस्थिति उपस्थित हुई है। इसलिए एक दूसरेको सहकार देना अति आवश्यक हो जाता है।

प्रदर्शन उद्घाटन राजस्थानके उपस्वास्थ्य मन्त्री श्री भीखा भाई ने किया। उनने कहा कि कार्य करने वालोंको धन की कमी नहीं रहेगी, यह आपकी सरकार देखती रहेगी। उदयपुरमे इन्फ्लूएन्जाके आक्रमणके समयमें वैद्योंने डाक्टरोंकी स्पर्धा मे ठीक ठीक कार्य किया था और डाक्टरोंको अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी थी। तात्पर्य कि जहा एलोपैथी नहीं पहुँच सकती वहा आयुर्वेद अपना स्थान जमा लेता है। आज तो देशमें विदेशी मुद्राओंका अभाव प्रवर्तित है और विदेश से दवा करनेमें उसका उपयोग न होना चाहिए। उस की अपेक्षा देशमें निर्मित होने वाली औषधिका ही उपयोग जनताको करना चाहिए और इस तरह आयुर्वेद को ही पसदगी मिलनी चाहिए।

राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धतिरूपसे उसे बाहर लाना चाहिए। पहलेके समान कन्दमूल खाकर भी वैद्योंको यह कार्य करना चाहिए। अपनी पुरानी संपत्तिपर ही अवस्थित न रहकर उसमें वृद्धि करनी चाहिए। नागार्जुनने १५०० वर्षके पहले पारदके ऊपर कार्य (अनुसधान) किया था। इसके पश्चात् यह पहला ही प्रसग है कि जब इतने बड़े परिमाणमें यहांपर कार्य हो रहा है। यह कार्य केवल कालेडाका नहीं है किन्तु समस्त भारतवर्षका है।

फिर उनको अभिनन्दन पत्र समर्पित करनेमें आया था उसका भी उत्तर उनने सद्‌भाव पूर्वक दिया था। फिर प्रात:काल की बैठक समाप्त हुई थी। पश्चात् भोजन करके आराम किया गया था।

पुन: शामको सम्मेलनका प्रमुख पद आत्मीय श्री वासुदेव भाईको दिया गया था। उस समय अनेक विद्वानोंने भाषण दिया था। श्री शान्तिलालजीके ही सुबह शाम को भाषणों की सूची रखूं, तो एक स्वतन्त्र पुस्तक हो जायगी। अत: यह साहस छोड़ देता हूँ। अन्तमें श्री वासुदेव भाईने एक वैज्ञानिकको शोभा दे, वैसा व्याख्यान दिया था। उनने कहा कि मैं यहां सिखलानेको नहीं आया किन्तु सीखनेके लिये आया हूँ। वैज्ञानिकों के लिए अपनी भूलोंको अंगीकार करना, यह एक महान् वस्तु है। उसी रीतिसे विज्ञान आगे बढता जाता है।

फिर जामनगरमें हुए अनुसन्धानके रेकार्डोंके आधारसे अति उपयोगी परिचय दिया था। पारदके पहले ५ संस्कार; उसके दोषोंको दूर करनेके लिए हैं। शेष ३ संस्कार तीक्ष्णता लानेके लिए हैं। रसतत्रका शोध धातुवादके लिए नहीं, रसमुक्तिके लिए है। आज अपन देखते हैं कि पारदका शोधन करते करते अपनेको वह अष्टमांश ही शेष मिलता है। किन्तु आधुनिक विज्ञानके साधनोकी सहायता लेनेपर वासुदेव भाईके कथन अनुसार आपने तो मात्र ५ प्रतिशतको ही हानि होना बताया है।

अग्निके प्रमाणके लिए भी उनने अच्छा प्रकाश डाला था। पायरो मीटरका उपयोग करनेपर मृदु, मध्यम और तीक्ष्ण अग्नि अपन निश्चित रूपसे दे सकेंगे। कई वार अनुचित हानि सहन करनी पड़ती है, उससे बच सकते हैं। उनने कहा कि वालुका यन्त्रके भीतर ऊपरकी सतहपर जितनी उष्णता होती है, उससे सात गुनी अधिक तल भागमें होती है।

गन्धककी जारणा जितने अधिक परिमाणमें होती है, उतनी ही पारदमें गुण वृद्धि होती है, सामान्य तो पारद Inert कहलायगा उसका Colloidol स्वरूप Mineralisation, immunity के सम्बन्धमें उनने विस्तारसे सूक्ष्म विचार पूर्वक विवेचन किया। उनके सम्पूर्ण वक्तव्यको ध्यान देनेके लिए अति विस्तृत स्थान चाहिए, संक्षेपमें विद्वानोंके ऊपर उनके भाषण का अत्यधिक प्रभाव पडा था और वैद्योको जामनगर में बहुत सीखने योग्य है, ऐसा दृढ़ विश्वास हुआ। हम आशा रखेंगे कि स्वय वासुदेव भाई लेख लिख कर अपनेको विशेष मार्ग दर्शन देंगे।

रात्रिके ९ बजे पू० स्वामीजी नारायण शास्त्रीके अध्यक्षपदमें विद्वत् परिषद् मिली थी। उसमें स्वामीजी ने शान्तिलाल भाईको रसायनाचार्यकी पदवी प्रदान की थी। यह एक प्रेरक प्रसंग था। शान्तिलाल भाई ने उत्तरमें अपने हृदयकी कई बातें कही थी। उनने कहा कि "रस" तो मेरे जीवनका रस है। उसका मैं आचार्य किस तरह बन सकूंगा। वह तो मेरा इष्ट है, मैं कुछ भी छिपाना नहीं चाहता हूँ। अधिकारी जनोके लिये मेरे हृदयके द्वार सर्वदा खुले हैं। रस वैद्य तो केवल दूसरेमे समझ जाते है। रसवैद्योके मगज अग्निके पास तप-तप कर अग्नि जैसे हो जाते हैं। फिर भी सहृदयी जनोंके समक्ष वह मृदु बन जाता है। हम वज्रकी अपेक्षा कठिन होते है और पुष्पोंकी अपेक्षा कोमल भी, किन्तु यह प्रदान किया हुआ भार उठानेके लिये मै लायक नहीं हूँ। आप जैसे ऋषियोके आशीर्वादसे उसे उठानेको समर्थ हो सकूंगा आदि।

अन्तमें स्वामीजीने अपने वक्तव्यमें दर्शाया कि शास्त्रमें पारदकी तुलना ब्रह्मके साथ की गई है। आयुर्वेदको जीवित रखना हो, तो वैद्योको चाहिए कि, सुसगठित हो जाय। वर्तमानमें तो किसीके पास आयुर्वेदका हाथ है, तो किसीके पास पैर है। सबको इकट्ठे मिलकर अपनी इस मंगल मूर्त्तिका निर्माण करना है। एक और मनोरञ्जनके लिए नाटक तथा दूसरी ओर सिनेमा भी चालू था। इस तरह प्रथम रात्रिका कार्यक्रम रात्रिको देरसे समाप्त हुआ।

दूसरे दिन

दूसरे दिन सुबह पारदके कई संस्कार प्रत्यक्ष दर्शानेके लिए रसायन शालाके प्रांगणमें वैद्य इकट्ठे हुए थे। किन्तु स्थान छोटा और संख्या अधिक थी। इसलिए चाहिए उतनी सुविधा नहीं मिल सकी।

गन्धकको जारण करनेकी भिन्न-भिन्न विधि, नलिकायन्त्रसे पारद उडानेकी क्रिया और बुभुक्षित पारदको सुवर्णके ग्रासकी क्रिया भी प्रत्यक्ष दर्शायी थी। मेरे जीवनमें सुवर्णको ग्रास करते हुए बुभुक्षित पारद को यहां ही देखा है। सचमुच यह प्रसङ्ग रोमांचक था। उतनेमें डाक्टर कैलाश आगये उनका यथोचित सम्मान किया गया और वे भी हम सबके साथ पारद की सब क्रिया देखने लगे। पश्चात् उनको विशेषरूप से प्रदर्शन दिखानेके लिए कुछ वैद्योको साथ लिया।

यहांपर आयुर्वेदके ऐतिहासिक चित्र, पारद कल्प विविध विड, मोमिया, वनस्पतियोंके नमूने आदि दर्शाने में आये। वहां उनसे एक प्रश्न हो गया कि इन सबका अन्तिम परिणाम क्या होगा। यह सब किस लिए ? चिकित्सा कार्यमें ये सब किसमें कितने उपयोगी हैं यह उनके प्रश्नका भाव था। उसका उत्तर उनसे मिलना चाहिए, वैसा सन्तोषप्रद नहीं मिला था। ऐसा मुझे प्रतीत हुआ।

सम्मेलन पत्रिका देहलीके तंत्री श्री स्वामी श्री चेतनानन्दजी चिदाकाशी और वासुदेव भाई भी उनके साथ थे। स्वामी श्री चेतननन्दजीको यह प्रश्न अधिक रुचिकर नहीं हुआ और उसका कुछ राजनैतिक माना जाय, वैसा उत्तर देनेके लिए मण्डपमें भाषण करनेका समय आया, तब प्रयत्न किया। वह उत्तर डा०कैलाश को अरुचिकर प्रतीत हुआ, परिणाममें स्वामीजीने अपने वक्तव्यकी संक्षेपमें इति भी करदी।

आगे श्रीयुत हरिलालजी जोशी, जो शान्तिलाल भाईके भाई हैं, सांताक्रुज (बम्बई) में प्रेक्टिस करते हैं। उनने रसका विहंगावलोकन विस्तारसे किया। फिर वासुदेव भाईको बोलनेके लिए निवेदन किया गया। उनने द्रव्योंके शोधन मारणके कथनको वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रारम्भ किया। उसके साथ रसायन और वृद्धावस्थाके सम्बन्धमें भी विशेष प्रकाश डाला। डिस्टीलेशन, क्लोरिफिकेशन, इमल्सीफिकेशनकी भी कई बाते उननेकी। डॉ० कैलाशके ऊपर उनका अच्छा प्रभाव हुआ, यह फिर विदित हो सका।

वासुदेव भाईके पश्चात् स्वामी श्री चिदाकाशी अपने वक्तव्यकेलिए खड़े हुए। उनने डा कैलासकी शंकाका उत्तर सद्भाव पूर्ण नम्रतासह, देने लगे। उनने कहा रसका कार्य तो देहमें न्यून हुई धातुओंकी पूर्ति करने का है। विज्ञान यह बात नहीं समझ सकता। उनने बहुत विस्तारसे अपना भाषण दिया ? विषय संशोधन था, उसके भीतर स्वामीजी ने राजकारणका प्रसंग बीचमें प्रारम्भ किया वह डॉ० कैलासको रुचिकर नहीं हुआ। उनको इस सम्बन्धमें सूचित किया। जिससे उनने अपना व्याख्यान थोड़ेमें ही समाप्त किया।

फिर स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराज ने अपना लेखित वक्तव्य पढनेके लिए शिवनारायणजी पनपालियाको दिया। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। इसी हेतुसे दूसरोको व्याख्यान पढनेको कहा गया था। उसमें लोह सिद्धि और रसायनके अस्तित्वपर प्रकाश डाला। परा और अपराका भेद समझाया अन्तमें उनने हृदय स्पर्शी एक शेर कहा कि—

न कुछ हम हंसकर सिखे हैं।
न कुछ हम रोकर सिखे हैं।
जो कुछ थोड़ा सा हम सिखे हैं।
किसी का होकर सिखे हैं।

आज सुबह शान्तिलाल भाई जब प्रत्यक्ष प्रयोगों की व्याख्या कर रहेथे, तब कई बन्धुओंने शंका की। उनको आवश्यक जाननेको नहीं मिला। उस दिनके अन्तमें भी कईयोने कहा कि उनको यहां आनेपर कुछ भी जाननेको नहीं मिला है। कदाच उन लोगोंको सुवर्णके ढेले बना करके वापस लौटना था या क्या ? इन लोगोंको तो एक साथ सब सिखा लेना था। इन

लोगोंको स्वामीजी ने शेर कह कर कमालका उत्तर दे दिया था, ऐसा मैं मानता हूँ।

दूसरोंको प्रसन्न करके ही कुछ प्राप्त कर सकेंगे। "प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया।" किन्तु अब प्रणिपात और सेवन चले गये हैं। उनका स्थान प्रश्नोंका उत्तर मिलने पर समाप्त हो जाता है। ऐसा समझाया है। दूसरी ओर प्रणिपात और सेवाका स्थान खुशामद को भी नहीं लेना चाहिए। उभय पक्षमें हृदयकी सचाई ही मुख्य मानदंड रहना चाहिए।

अन्तमें डॉ० कैलासको अभिनन्दनपत्र दिया गया। एक तो वे संस्थाके ट्रस्टी थे और फिर राजस्थानी। जिससे अपने ही स्थानमें अपनेको सम्मान मिले, वह उनको रुचिकर नहीं हुआ। ऐसा अनुमान उनके मुख मण्डलके भाव परसे होता था। इसके अतिरिक्त स्वामी श्री चिदाकाशी जी को भी एक डाक्टर वैद्योंके लिए दुश्मन रूप हो, ऐसी कल्पना करके कुछ उपालम्भ दिया था। जिसके प्रत्युत्तरमें उनके हृदयके भीतरसे आहत वाणी निकलती रही थी। इस तरह राजनैतिक सज्जन मीठी मीठी भाषामें बोलते थे। एक स्थानमें एक और दूसरे स्थानमें दूसरा, सामने वालेको रुचिकर हो वैसा ही भाषण बिना कहे, रह नहीं सके, ऐसी उनकी मानस स्थिति हो गई थी। तथापि बम्बइ राज्यके निमित्त कई बाते उनने कही है। उनके पास आयुर्वेदके उपयोग करनेके लिए धन शेष रहा है किन्तु उसका उपयोग कहां किया जाय, यह समझ में नहीं आता। उनके पास मनुष्य नहीं है, स्कीम नहीं है। इसका उत्तर बम्बई राज्यके आयुर्वेदके विद्वानोको देना रहता ही है। (भिषग्भारतीसे साभार उद्धृत)

— भारतीय रसविद्या —

(पृष्ठ ६५४ का शेष)

मुक्ति मानते हैं। यह सिद्धान्त रसेश्वरदर्शनको मान्य नहीं है। अतः मालूम होता है कि 'तस्मात्तं रक्षयेत् पिण्डं रसैश्चैव रसायनैः। रस और रसायनसे पिण्डको को स्थिर रखना, यहां रस (पारद) और रसायन (अभ्रक) इन दोनोंका निर्देश मालूम होता है, (रसाभ्रक पदाभिलप्य हरगौरी सृष्टि जातस्य (शरीरस्य) नित्यस्वोपपत्तेः) ॥

ये चात्यक्तशरीरा हरगौरी सृष्टिजां तनुं प्राप्ताः॥
धन्यास्ते रससिद्धाः मन्त्रगणाः किङ्करो येषाम्॥

यहां पर रससिद्धोंकी सांकेतिक भाषाका आभास मिलता है, हरगौरी सृष्टि संयोग जनित्व, वह रस (हर) और अभ्रक यह गौरी संभव पदवाचक मालूम होता है

'अभ्रकस्तव बीजं तु ममबीज तु पारदः।
अनयोर्मेलनं देवि! मृत्युदारिद्र्यनाशनः॥

हे देवि! अभ्रक तुम्हारा बीज है और पारद मेरा वीर्य है। इन दोनोंके (वास्तविक) संयोगसे मृत्यु और दरिद्रता नष्ट हो सकती है। विशेष प्रकारसे इस विद्या का साहित्य—शिव पार्वतीके प्रश्नोत्तर रूपमें देखनेको उपलब्ध होता है।

कर्मयोगेन देवेशि प्राप्यते पिण्डधारणम्।
रसश्चपवनश्चैव कर्मयोगो द्विधा स्मृतः॥ (रसार्णव)

हे देवेशि! कर्म योगसे पिण्ड धारण होता है। और वह कर्म योग रसयोग और पवन योग इन दो प्रकारोंसे होता है।

रस वाद केवल धातु वादार्थक ही है ऐसी एकान्त मान्यता नहीं रखे। क्योंकि यह शास्त्र मुक्ति प्राप्तकरनेके लिये भी कारण भूत है। यहां अति सक्षेपमें रसेश्वर-सिद्धान्तके विषयमें केवल सकेत मात्र किया है। संशोधन की दृष्टिसे रसविद्याके मुख्य ग्रन्थ ई स. १३५० से पूर्वके हुये हैं ऐसा मालूम होता है। आज प्राप्त होने वाले ग्रन्थ रसोपनिषद्, पारद संहिता आदिको विशेष प्रमाण भूत माननेके लिये आजके रसायनाचार्य तैयार हैं या नहीं? यह एक प्रश्न है। सबसे प्रमाण भूत ग्रन्थ "रसार्णव" मालूम होता है। (क्रमशः)

अनुभूत सिद्धप्रयोग

लेखक—श्री विश्रामानन्दजी बड़ौदा

अष्टमूर्ति रस—

शुद्ध पारद	१ तोला
शुद्ध गन्धक	६ तोला
शुद्ध हिंगुल	१ तोला
शुद्ध मैनशिल	१ तोला
शुद्ध सोमल	१ तोला
शुद्ध हरताल	६ माशा
शुद्ध रसकपूर	९ तोला
शुद्ध बोदार सींग (मुरदासंग)	६ माशा
फुलाई हुई फिटकरी	१ तोला
सोनेके वर्क	६ माशा
चांदीके वर्क	६ माशा

प्रथम पारदको सुवर्ण और चांदीके वर्कके साथ मिलाकर गन्धक डालकर कज्जली बना लें। बादमें बाकी की सब चीजे मिला कर आतशी शीशीमें भर कर बालुका यन्त्रसे ३० घंटे आंच दें। १२ घंटे गन्धक जारण होनेके बाद डाट लगा दें और ५० घण्टे तीव्र अग्नि दे। यन्त्र ठंडा होनेके पश्चात् रस निकाल लें।

उपयोग—पुराना उपदंश, परिवर्तित ज्वर, विषम ज्वर, सन्निपात, क्षय, मूर्छा, अपस्मार, वातव्याधि इत्यादि रोगोंको दूर करके शक्ति देता है। हृदयोत्तेजक और पित्तदोष, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जाके दोष को हरता है।

महावाजीकरण हिंगुल भस्म—

५ तोला हिंगुलकी डलीको प्रथम २०० तोला प्याजके रसमें डुबा दे या २० तोला लहसुनके रसमें डुबा दें। बादमें धत्तूरेके रस १० तोलामें डुबा दे, फिर निम्न लिखित मसालेमें रख कर आग दे—

तिल	भिलावा	घृत
मालकांगनी	शहद	एरंड तैल

उपर्युक्त वस्तुओंको कूट कर एक रस करें। उसमें से आधी लोहेकी कढाईके नीचे रखें और हिंगुलकी डली रखकर बाकी का आधा ऊपर रखे और अग्नि पर चढावें और अग्नि दें। जब मसाला जलने की तैयारी तक गरम हो जाय तब उसे ऊपरसे आग लगा कर जलावें और नीचे भी अग्नि बंद करें। मसाला जल जायगा। १२ घंटेमें तैयार हो जायगा। हिंगुल की डली निकाल कर उसमें केसर १ तोला, कस्तुरी ½ तोला जुंदबेदस्तर २ तोला डाल के अंडेकी जरदी में खरल करें। ३ रत्ती वजन की गोली बनाले।

मात्रा—प्रात. सायं १-१ गोली ½ सेर दूधके साथ लेवें।

गुण—रक्त बढ़ाती है। खाना हजम करती और शक्ति प्रदान करती है। वातव्याधि, पुरानी सरदी, धातुक्षीणता दूर करके पुरुषत्वकी प्राप्ति होती है। दोनों प्रयोगोका हमने अपनी औषधालयमें अच्छी प्रकारसे उपयोग किया है। जिसके परिणाम बहुत अच्छे आये हुये है। आप समय समय हमें सेवाकी आज्ञा दीजिये यही नम्र प्रार्थना है।

अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन में उपस्थित वैद्यराजों की

शुभ-सम्मतियां

मै ता० २४-३-५९ को कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन, कालेड़ा (राजस्थान) में होने वाले पारद अनुसंधानके अखिल भारत वर्षीय सम्मेलनको देखने हेतु २ दिन पूर्व आया और २ दिन बाद तक रहा। यहां पूज्य स्वामी कृष्णानन्द जी महाराजके संचालकत्वमें तथा श्री शान्ति भाई जोशीके आयोजनसे प्रदर्शनीमें रखे हुये पारदके ८ सस्कारोंकी क्रिया प्रत्यक्ष तथा रस सिद्धिके सहायक प्रमुख द्रव्य, धातुओंके नवीन मिश्रण रसों-महारसो व उपरसों, धातुओं तथा जैत्री सत्वोका आकर्षण, तलस्थ पूर्ण चन्द्रोदय, अग्नि स्थाई पक्षच्छेदित पारद, सस्कृत पारदके अनेक रूप रूपान्तर तथा लोह सिद्धि के अनेक चमत्कार, तैल विधान, बिड निर्माण, बुभुक्षित पारदको स्वर्ण अभ्रक ग्रास आदि रस क्रियायें देख कर परम आनन्द हुआ।

उपधातुओंमेंसे निकाले हुये सत्वोंकी विविधता जो रोगपरत्वे भविष्यमें आयोजन किया जायेगा, उनका मैने परीक्षण भी किया। उपधातुओ और रसो मेंसे सत्व कैसे निकाला गया यह भी मैने देखा। प्रथम दिवस राजकुमार कोटा व वैद्य बन्धुओके सामने पारदके संस्कारोंका विधान दिखाया गया। वैद्योंके सम्मुख पारदके अष्ट सस्कार करके बतलाये गये। वैसे ही ता० २८ को अष्ट संस्कार किये गये पारदमें गंधक जारणके ३ प्रकार जैसे १ गौरीयन्त्रमे २ भूधर यन्त्रमें तथा नलिका डमरूयन्त्रमें किया गया था। अभ्रक जारित पारदमें स्वर्ण जारण क्रिया सभी दर्शनार्थी प्रतिष्ठित वैद्य बन्धुओके सामने हृदय खोलकर प्रक्रिया सह दिखाया गया।

सब अतिथियोंमेंसे सर्व श्री डॉ० कैलाश N. N. डिप्टी हैल्थ मिनिष्टर बबई प्रान्त, रस वैद्य श्री वासुदेव भाई शास्त्री जामनगर, वैद्य श्री नवनीतलाल जी पण्ड्या, प्रधान वैद्य झण्डू फार्मेसी बबई, वैद्य हरि भाई बबई, स्वामी ऊंकारानन्दजी दिल्ली, रसवैद्य विश्रामानन्दजी बडौदा, वैद्य श्री शान्तारामजी प्रतिनिधि आयुर्वेद नाजर कालेज सूरत, (अध्यक्ष सहकारी फार्मेसी सूरत) श्री स्वामी चेतनानन्द जी चिदाकाशी दिल्ली, रस वैद्य श्री ज्ञान स्वरुपजी प्राध्यापक विद्यापीठ आयुर्वेद महाविद्यालय दिल्ली इत्यादि इन सबके समक्ष बुभुक्षित पारदमें अभ्रक जारण, स्वर्ण जारण, ये सब क्रियायें स्पष्ट बतलाई। ता० २९ को अपने बनाये हुये सब पदार्थोंको सविवरण प्रदर्शनीमें प्रत्यक्ष दिखाये। इसी प्रकार समारोहके २ दिन बाद और रुककर मैने श्री शान्ति भाईके साथ वार्त्तालाप करके सब चीजो की पूरी जानकारी की।

मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई कि भारतमें हमारे रस शास्त्रोको जीवित रखनेके लिये इन्होने भगीरथ प्रयत्न किया है। और रस भाषा की जो परिभाषा है, उनके द्रव्य बनाकर जो यहां प्रत्यक्ष रखे गये हैं वे सब चीजें किसी भी रस वैद्य या फार्मेसियोके पास नही मिलेंगी, इससे मै बहुत प्रसन्न हुआ हूँ।

मेरा यह दृढ विश्वास है कि यह हमारा पारद अभियान सफल होकर रहेगा। मै महर्षि पूज्य पाद स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज तथा भाई शान्तिलाल जी जोशीको इस काम करनेके लिये बल-बुद्धि सामर्थ्य और दीर्घायु प्राप्त होनेके लिये भगवानको प्रार्थना करता हूँ

नारायण स्वामी

पारद अनुसधान विश्व ज्ञान मंदिर कनखल (हरिद्वार)

३१-३-५९

अखिल भारतीय पारद अनुन्धान सम्मेलन त्रिदिवस-तक चला। यह सम्मेलन अपना प्रथम स्थान रखता है। इसमें उच्चकोटिके विद्वान उपस्थित हुए और अनुसन्धानपर जो विवेचना हुई है उससे सभी आगन्तुक सदस्योंको उच्चकोटिका लाभ हुआ।

मै आशा करता हूँ अग्रिम वर्ष भावी सम्मेलनमें पारद सस्कारोंसे कोई नई चेतना मानव जगत्को मिलेगी ऐसी मेरी शुभ कामना हैं।

वैद्य जगन्नाथ शर्मा आयुर्वेदाचार्य
इन्स्पेक्टर आ० वि० (उदयपुर)

अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसन्धानका सम्मेलन बड़ाही रोचक लोक प्रिय रहा। खासकर वैद्य समुदाय के लिये तो अलौकिक वस्तु है। माननीय परम पूज्य स्वामीजी महाराज श्री की बड़ी महनत व सूझबूझका यह कार्य सराहनीय है। रसायनाचार्य श्री शांतिलाल जी के परिश्रम व अनुभवसे तो मै बहुत ही प्रभावित हुआ। मेरी शुभ कामना इस संस्थाकी बढ़ोतरी के लिये हार्दिक इच्छुक है।

वैद्य शास्त्री पं० श्रीनाथ राजवैद्य
प्रधान वैद्य नगर औषधालय कोटा

"पारद अनुसन्धान सम्मेलन" जो कि कालेड़ा ग्राममें हुआ, इसमें सम्मिलित होकर मैने आज उस प्राचीन गुप्त रहस्य जो आयुर्वेदके विषयमें छिपे हुए थे उनका प्रत्यक्ष दर्शन सम्भाषण देखकर प्रसन्नता हुई। मै हृदयसे इस केन्द्रके कार्यकी सफलताके लिये ईश्वर से प्रार्थी हूँ।

वैद्य लीलाधर शर्मा
प्रधान वैद्य राजकीय प्रधान आयुर्वेदिक
२९-३-५९ चिकित्सालय अजमेर

रस शास्त्र सबन्धी पारदके सस्कार तथा सत्त्व पातन आदिका कार्य इस समय वैद्य समाजमें लुप्त सा हो रहा है इसके पुनः प्रचार और व्यवहारके लिए कालेडा कृष्ण गोपाल औषधालयने यह सम्मेलन बुलाकर बड़ा ही स्तुत्य कार्य किया है। यह औषधालय आयुर्वेदके विकासके लिए पूर्ण प्रयत्नशील है।

सम्मेलन हर दृष्टिसे सफल रहा है, ऐसा मेरा अभिमत है।

राम कृपालु गुप्त
प्रोफेसर ललितहरि आयुर्वेदिक कालेज
२९-३-५९ पीलीभीत (उत्तरप्रदेश)

आपके सामुहिक निमन्त्रणसे मैं प्रभावित होकर चुम्बकसे लोहेकी भांति खिचकर चला आया। देह सिद्धि तथा लोह सिद्धि के रसेन्द्रचमत्कार आपको पूर्ण रूपमें प्राप्त हुए है, ऐसी मेरी धारणा हुई है। आपके अनुसन्धान विज्ञान जगत्को नया मार्ग दिखावेंगे। यह मैं सकमता हूँ आशा करता हूँ कि प्रत्येक वैद्य रोगी तथा समस्त राष्ट्रको आपके अनुसन्धानसे पूरा लाभ पहुँचेगा।

शान्तस्वरूप
आयुर्वेदाचार्य भिषगाचार्य शिरोमणि भिषग्वर आयुर्वेदरत्न
मन्त्री आयुर्वेद मण्डल सिरसा (हिसार)

पारद अनुसंधानसम्मेलनेऽस्मिन् रसायनाचार्येण "श्री शान्तिभाई" इत्यभिज्ञेन भिषक्वरेण्येन रसभक्तिप्लावित चेतसा प्रदर्शितानां धातूपधातूनां सत्त्व पातन प्रकारान् पारदस्य चाष्ट विधसंस्कारान् दृष्ट्वा चाभ्रस्य जारण प्रक्रियां अवगत्य नितरां प्रमोदते चेतः। अनया रीत्या क्रियमाण परिपाटी कालान्तरेप्यायुर्वेद जगति भिषक्प्र. किञ्चित् नवीन तत्त्वं प्रदास्यतीति दृढ निश्चय.। आशास्महे जगन्नियन्तु रस्याःसंस्थाया साफल्यम्।

वैद्य माधवलाल जोशी
भूत पूर्व मन्त्री श्री ए० प्र० वैद्य सम्मेलन नागपुर
- नागपुर

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन के तत्त्वावधानमे चलने वाले पारद अनुसन्धानके कार्यको मैने बड़ी दिल

चस्पीसे देखा। मैने आजसे पूर्व भी इस कार्यको देखा था। मुझे यह कहनेमें प्रसन्नता है कि यह कार्य पर्याप्त प्रगति कर रहा है। मुझे आशा है यह कार्य निश्चय ही एक न एक दिन फल प्रद होगा, आजके वैज्ञानिक युगमें चमत्कार पैदा करेगा।

इसी विषयको लेकर यहां जो त्रिदिवसीय सम्मेलन का आयोजन किया है वह भी कुछ निर्णयात्मक कदम उठाये तो अच्छा है, मैं आजके इस सम्मेलनका स्थायित्व चाहूँगा।

वैद्य अम्बालाल जोशी

प्रधान सम्पादक जय आयुर्वेद, जोधपुर

२९-३-५९

अखिल भारतीय पारद अनुसंधान सम्मेलन, कालेड़ामें पहुँच कर और श्रीभाई शान्तिलाल जी रसायनाचार्य द्वारा किये गये, उच्च कोटिके पारदीय जारणादि कर्म देखकर, यह पूरी आशा बन्ध गई है कि "जराव्यधि विनाशनम्' रासायनिक प्रयोग सिद्ध होने से रस शास्त्र अब थोड़े समय में ही अपना गत गौरव प्राप्त कर लेगा। भवदीय

ज्ञानस्वरूप वैद्य वाचस्पति

प्राध्यापक रसशास्त्र आयुर्वेद विद्यापीठ महाविद्यालय

२९-३-५९ रोहतक रोड, देहली।

हम पारद अनुसंधान प्रदर्शनीमें आये और प्रदर्शन का कार्य तथा आयुर्वेदिक दवाओकी बनावट तथा रस की बनावट देखी और जांची और इस छोटेसे ग्राममें बहुत सुन्दर कार्य स्वच्छतासे और स्वरूपतासे कार्य बहुत सुन्दर है। रसायनाचार्य शान्ति भाईने बहुत शांति मय काम करके हरेक भाइयोसे संतोष प्राप्त किया है।

वैद्यराज निर्भयशंकर, भाई शंकर त्रिवेदी

जामनगर

मैं जिस आशासे दीनानगर जिला-गुरुदासपुरासे आया था वो आशा मेरी पूर्ण हुई है। और मैं प्रसन्न चित्त इस संस्थाको आर्शीवाद देता हुआ और ईश्वर सर्व शक्तिमानसे प्रार्थना करता हुआ वह अजन्मा दयालु करुणासिंधु दिन दुगनी रात चौगनी इस संस्थाको बढती देवे।

भवदीय—

संपूर्णानन्द सरस्वती

श्री दयानन्द मठ

दीनानगर (गुरुदासपुर) पंजाब

कृष्णगोपाल धन्वन्तरि कालेड़ा है सुखधाम्।
स्वामी कृष्णानन्द चैतन्य कियो कालेड़ा है सुखधाम।
वैद्यन बुलाये पारद अनुसन्धान धन्वन्तरि
कालेड़ा है सुख धाम्॥
अनेक अनेक कष्ट सह स्वामी कृष्णानन्द आनन्द
कियो कालेड़ा है सुखधाम्।
नव जगमें जीवन ज्योती जगाई समझाया
पारद अनुसन्धान॥
राजवैद्य शान्ति लाल वैद्यन के बीच शोभा पाय
लीनी है कीर्ती समझाये पारद अनुन्सधान।
अमरपुरी हो इन्द्रपुरी कृष्णपुरी सदा कृपा
करो सॉवरे घनश्याम्॥
होय जग कीर्ति करे बिनती वैद्य चतुर्भुज
शर्मा ग्राम मन्डाना।
धन्य धन्य स्वामी कृष्णानन्द कृष्णगोपाल
धन्य धनवन्ती हो॥

वैद्य चतुर्भुज शर्मा

ग्राम मन्डाना (कोटा)

मै उज्जयिनीसे अखिल भारतीय पारद अनुसंधान सम्मेलनमें सम्मिलित हुआ। त्रिदिवसीय इस सम्मेलन का कार्य बहुत ही सफलता पूर्वक सपन्न हुआ, पारदके अनुसंधान तथा धातुवाद तथा देह सिद्धि पर न केवल विद्वत्तापूर्ण, अनुसंन्धानात्मक भाषण हुये अपितु अत्यन्त महत्त्व पूर्ण षट् गुण गन्धक जारण, स्वर्णजारण, अभ्रजारण, तथा विविध वैद्य समाजको चमत्कृत करने वाले प्रत्यक्ष प्रयोग, भी हुये। भाई रसायनाचार्य शान्ति लालजोशीके प्रात्याक्षिक प्रयोगोने सम्मेलन

को मूर्तिमान् यशस्विता दी है, पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी महाराजकी महान तपस्या स्वरूप यह सम्मेलन पूर्ण सफल हुआ। मै इसकी अभि वृद्धि चाहता हूँ।

भवदीय

पं० वासुदेव शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, प्राचार्य

श्री अवन्तिका आयुर्वेद महाविद्यालय

नवीपेठ उज्जयिनी मध्य प्रदेश

अखिल भारत वर्षीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन के अवसर पर श्री कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा एवं यहां हो रहे पारद अनुसन्धानके कार्यको प्रत्यक्ष रूपसे देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। यह सस्था आयुर्वेदमें नई चेतना एव रस क्रियामे पुन. ऋषि युग उपस्थित कर नागार्जुनकी जगाई ज्योतिको युगानुरूप पुन. प्रज्वलित करनेका जो महान प्रयास कर रही है वह स्तुत्य है। हम हृदयसे संस्था द्वारा किये जा रहे पुनीत कार्योंकी सफलता चाहते है।

वैद्य प्रहलादराय देराश्री

B. I. M. S. आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदरत्न, साहित्य रत्न, गोल्ड मेडेलिस्ट प्रधान वैद्य राजकीय औषधालय शाहपुरा (राजस्थान)

देशमे आयुर्वेद प्रगतिके प्रति उदासीन व अपेक्षित कार्य कालमें श्री कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन कालेडा द्वारा व्यवस्थित अ. भा. पारद अनुसधान सम्मेलनमें उपस्थित हो पारद संस्कृत कार्यको देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ।

श्री शाति भाई जोशी द्वारा अष्ट विध सस्कृत पारे का कार्य सराहनीय ही नहीं वल्कि अनुकरणीय भी है। अगर इसी प्रकारसे और भी आगे संस्कृत किये गये पारे (रस) से अन्य रसायनें (औषधियें) निर्मित की गई तो ये रसायने "जराव्याधि विनाशम्" सिद्ध होकर ससार में पुन. आयुर्वेदका नाम जाग्रत कर वर्तमानके इस वैज्ञानिक युगमें अनेक रोगोसे ग्रसित भाइयोंके लिये अमृत तुल्य हो जीवन दान दे सकेंगी।

मै हृदयसे इस संस्थाके प्रगतिशील कार्योंकी सफलता व उन्नति चाहता हूँ।

वैद्य नित्यानन्द जोशी

संयोजक.—जिला वैद्य सभा नागौर

२७-३-५९ (राज्यस्थान)

मुझे दिनांक २७-३-५९ से २९-३-५९के मध्याह्न तक आपकी संस्था द्वारा आयोजित अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसंधान सम्मेलनमें उपस्थित रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। माननीय शान्ति भाईने पारदके अष्टसस्कारित क्रियाओको स्पष्टरूपसे समझाया तथा अष्टसंस्कारित पारद किस प्रकार सुवर्णको अपने अन्दर समावेश कर सकता है इस क्रियाको करके सबके समक्ष दिखाया। इससे वैद्य महानुभावोंपर प्रभाव पड़ा और उनकी भी बुद्धिमें यह भावना जागृत हुई कि उपरोक्त क्रियाओका अभ्यास किया जावे। बड़े बड़े नेताओंके भाषण सुने।

माननीय वासुदेवजी जामनगर वालोके भाषणको सुनकर मेरे विद्यार्थी जीवनकी उन बातोंकी पुनरावृत्ति हो गई जो मैंने श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णीसे भौतिक और रासायनिक विज्ञान पढ़ते समय सुनी थी।

माननीय कविराज प्रतापसिहजी भी इसी प्रकार रसशास्त्रपर प्रवचन किया करते थे।

आपकी सस्था द्वारा जो पारदपर उपरोक्त क्रियाओं को भाई शान्तिलाल जी द्वारा वैद्यसमुदायके समक्ष प्रत्यक्ष रूपसे दिखाया गया उसके लिये मै बहुत आभारी हूँ। आपका कृपाकांक्षी—

वैद्य वैजनाथ शर्मा कोटा

श्री कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन द्वारा आयोजित पारद अनुसंधान सम्मेलनमें सम्मलित होकर जो कार्य प्रणाली देखी आशा है, यह आयुर्वेद जगत्के भविष्य को उज्जल वनानेमें सहायक होगी। इसके द्वारा आयुर्वेदके विद्वान् चिकित्सकोको नई चेतना मिली है, मेरा ऐसा विश्वास है।

वैद्य बद्रीप्रसाद व्यास कोटा

श्री कृष्ण गोपाल धमार्थ आयुर्वेदिक औषधालय कालेड़ा द्वारा आयोजित पारद अनुसंधान सम्मेलनमें मैं उपस्थित हुआ और पारदके संस्कार एवं इस औषधालयकी रसायन शालामें निर्माण होते हुये रस भस्म, गुटिका,कूपीपक्क,रस रसायनोको देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई, श्री स्वामीजी महाराज श्री कृष्णानन्द जी तथा श्री शान्ति लालजी जोशीका पारद अनुसंधान कार्य अत्यन्त सराहनीय है क्योंकि इस कार्यसे वैद्य समाज को अत्यन्त लाभ हुआ है, इस प्रकारका अनुसंधान करके शान्ति लालजी जोशीने सोते हुये वैद्य जगतको जगाकर महान् उपकार किया है। मै इसके लिये उपरोक्त महानुभावोंको एवं संस्था को धन्यवाद अर्पित करता हुआ परम पिता भगवान् श्री धन्वन्तरिसे प्रार्थना करता हूँ कि भविष्यके भी आपके सब कार्यो को सफल करें। और प्रत्येक वैद्य बन्धुओसे भी निवेदन करता हूँ कि शास्त्रोक्त एवं शुद्ध रस औषधालयकी ही निर्मित वस्तुओंको उपयोगमें लाकर लाभ उठावें।

श्रीमतामनुचरः

वैद्य गोवर्द्धन लाल शास्त्री

प्र० मंत्री जिला वैद्य सभा बून्दी

ता० २७ मार्चसे २९ मार्च १९५९ तक श्री कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा अजमेर की तरफसे ग्राम कालेड़ामें सहस्रों रू० व्यय होकर होने वाले समस्त भारतके वैद्यो व रसायन विशेषज्ञोंके अभूत पूर्व विराट सम्मेलनके समय पहले मुझे भी सूचना मिली, यहां अखिल भारतवर्षीय पारद अनुसन्धान सम्मेलन होगा। इस सम्मेलनमें पारद सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं भी सम्मलित हुआ।

संस्था द्वारा नूतन स्थापित अनुसंधान शालामें पारदके ८ संस्कारों तथा रस सिद्धिके सहायक प्रमुख द्रव्योंके आश्चर्यमय पदार्थ निर्माण किये। जैसे नई धातुओका निर्माण, महारसों, रस धातुओं तथा जैवी सत्वोंका आकर्षण, तलस्थ पूर्ण चन्द्रोदय, अग्नि स्थाई पक्षछेदित पारद, संस्कृत पारदके अनेक रूप रूपान्तर स्वर्णाभ्रक जीर्ण रस, तथा लोह सिद्धिके अनेक चमत्कृत नमूने एक वर्षकी अवधिके अन्दर रसके रसीले श्रीमान् राजवैद्य श्री शान्तिलालजी जोशीने उत्साह पूर्वक संलग्नताके साथ बड़े परिश्रमसे आयुर्वेद के रसायन शास्त्रोंसे सार खींचकर सब क्रियायें की, उनका क्रम बद्ध विस्तृत वर्णन वैद्य समाजके सामने प्रस्तुत किया। उपरोक्त पारदकी तत्सम्बन्धी महौषधियो का प्रदर्शन कराया व प्रवचनोंके साथ पारद सम्बन्धी प्रत्यक्ष प्रयोग भी बतलाये।

इस सम्मेलनमें रसायन सम्बन्धी विशेषज्ञो के महत्वपूर्ण भाषण हुये। बाहरसे कष्ट सहकर पधारने वाले राजकीय उच्चपदाधिकारियोके भी बड़े ही महत्व पूर्ण भाषण हुये जिसमें वैद्य समाजको पूर्ण आश्वासन मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वर्तमान सरकारसे आयुर्वेदोन्नतिमें भी आर्थिक सहायता प्राप्त हो सकेगी। क्यों कि सरकारकी नजर आयुर्वेद चिकित्सापर भी अवश्य है ऐसा भी विश्वास है।

संस्थाकी तरफसे अवशेष पारद के संस्कारोको पूर्ण करने के लिये रसके रसीले श्रीमान् राजवैद्य शान्ति लालजी जोशी कार्यमें संलग्न हैं। मुझे भी पूर्ण आशा है कि श्री धन्वन्तरि भगवानकी कृपासे पारदके १८ वें संस्कार करनेमें इस संस्थाको सफलता प्राप्त हो सकेगी।

१८ वां संस्कार पूर्ण होनेपर एक ऐसी वस्तु तैयार होगी जिसके लिये वैद्य समाज क्या सारा भारत वर्ष इच्छुक होगा।

इस संस्थाके हाथमें उपरोक्त शक्ति शाली वस्तु आजानेपर वैद्य समाज पूर्ण रूपेण जनता जनार्दनकी सेवा कर पुरातन आयुर्वेदका चमत्कार दिखा सकेगी।

इस संस्थाका मुख्य उद्देश्य आयुर्वेदोन्नति एवं जनता जनार्दनकी सेवा भावका है। ये संस्था अच्छीमें अच्छी शास्त्रोक्त प्रभाव शाली औषधिएं तैयार कर उचित मूल्यपर वितीर्ण करती है इसका जो लाभ होता है वो लाभ संस्थाका खर्च चुकने पश्चात आयुर्वेदोन्नति और जनता जनार्दनकी सेवामें ही खर्च होता है, ऐसा

मुझे पूर्ण विश्वास है। क्यो कि इनमें किसी व्यक्ति विशेषका लाभ नहीं है। इस सन्थाका कार्य निःस्वार्थ भावसे श्रीमान् पूज्य स्वामीजी कृष्णानन्दजी की अध्यक्षतामें चल रहा है। स्वामीजी महाराज परोपकारी और शान्त स्वभावी मूर्ति है और पूजनीय हैं। आपने संस्थाके प्रमुख संचालकोमें भी निःस्वार्थ भर दिया है जिससे संस्थाका कार्य अच्छा चल रहा है।

इस सम्मेलनमें वैद्य बन्धुओसे अच्छी ज्ञानकी वृद्धि होकर प्रसन्नता प्राप्त हुई।

मुझे इस सम्मेलनमें पारद अनुसंधान सम्बन्धी जानकारी होकर जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त हुआ और मैंने बड़े बड़े रसायनाचार्यो, रस विशेषज्ञो एवं आयुर्वेद हितेच्छु राजकीय पदाधिकारियों तथा हमारे वैद्य बन्धुओंके दर्शन किये जिससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई इसके लिये मै इस संस्थाको धन्यवाद नहीं देता हूँ क्योंकि मैं धन्यवाद देने लायक नहीं हूँ। लेकिन फिर भी बिना धन्यवाद दिये रहा भी नही जाता। अतः मेरा हार्दिक धन्यवाद है। तथा इस सस्थाका अत्यन्त आभारी हूँ और मै मेरी सच्ची भावनासे इस सेवा भावी संस्थाकी उन्नति चाहता हूँ। विनीत

आयुर्वेद हितेच्छु कन्हैयालाल जैन वैद्य
पार्श्वनाथ औषधालय प्रा० मु० पो० ठकुराई
तहसील वेगूं जिला चितौड़ गढ़ (राजस्थान)

अखिल भारतीय पारदानुसंधान सम्मेलनावसर पर श्रीकृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन,कालेड़ा-कृष्णगोपाल की प्रवृत्तियोंको देखनेका सुअवसर मिला। यह संस्था वर्षोंसे सचमुच ही आयुर्वेदकी ठोस प्रगतिके लिए प्रयत्न कर रही है।

वर्तमानमें उपधातुओंके सत्वपातन, पारदके अष्टसंस्कार अभ्रकद्रुति बिड़, नौसादर और शोरकको अग्नि स्थाई, सोमिया शिंगरफ, सखिया, तालादि बने हुए दिखाये गये, वे प्रशंसनीय थे।

वैद्योंमें इनका व्यवहार चालू हो उसके लिए स्वामी जीसे विनय है कि जिस क्रिया और ग्रन्थ प्रमाण द्वारा उक्त सिद्धि प्राप्त की गई है वो पूर्णतया होने वाले लाभ प्रथम विशेषांक युक्तमें निकालकर पश्चात् पुस्तकरूपमें निकालना चाहिए।

पारद द्वारा देहसिद्धिके प्रयत्न पूरेतौरसे चालू रहना चाहिए।

वैद्य मात्रसे विनय है कि इस सस्थाकी ही दवाइयों को प्रयोगमें लाकर संस्थाको आयुर्वेदकी अधिकाधिक सेवाके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

विनीत—

वैद्याचार्य उदयलाल महात्मा
देवगढ़ उदयपुर

वैद्यकीय सम्मेलन एवं अधिवेशनादिक अनेक हुए और होते रहते है परन्तु रसोवैसः, इस श्रुति माताके कथनका लक्ष्यानुवेध परम रसामृत स्वरूप रसेन्द्र भगवान् शिव सांबकी उपासनाका लक्ष्य अतीव दुर्लभ है।

जहां जीवन स्वरूपका लक्ष्य शरीर आरोग्य और वैभव साधन इस प्रकार त्रिवेणी संगम हो वहीं भुक्ति एवं मुक्ति प्रदाता आयुर्वेदके रसेन्द्र भगवान विराजते है। उनकी वास्तविक सनातन उपासना करने वाले वैद्यों नारायणो हरिः है ऐसी अनुपम झांखी कालेड़ामें तपोमूर्ति पू. पा. स्वामी जी के दर्शनसे हुई। साथ-साथ श्रीमन् नारायण अपने पार्षदके साथ होते हैं, तो यहां जय विजय रूप श्री रसायनाचार्य शान्ति भाई एवं श्री हरिभाई आयुर्वेदके वास्तविक नैष्ठिक उपासक है ऐसा प्रयोग सिद्ध प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। अतः आयुर्वेदके जीर्णोद्धारका समय समीपमें ही आ रहा है ऐसी भावना होती है; इति शिवम्। आपका

विश्रामानन्द जी
बड़ौदा

लिखते हुये हर्ष होता है कि भारतमें सिद्ध नागार्जुनके बाद यह पहला पारद-अनुसंधान सम्मेलन राजस्थान कालेड़ा-बोगला गांवमें हो रहा है।

समस्त भारतमें अनेक गांवोंसे अनेक रसायन शास्त्री किसी भी जातिका भेदभाव छोड़कर पारदसे

बनी हुई अनेक औषधियां आजकी दु:खी जनताको असाध्य और हठीले दर्द जैसे कि केन्सर, मधुमेह, हाथी पगादर्द, और दूसरे अनेक दर्दोंकी दवाई बनानी लिखी है।

हकीम अलीमोहम्मद जीवाभाई
अलीम फार्मेसी बंबई नं. २

मुझे यह घोषित करनेमें अत्यधिक हार्दिक आनन्द होता है कि पारद अनुसन्धान संमेलन निमित्त कालेड़ा कृष्ण गोपाल एक छोटेसे गांवमें परम पूजनीय श्रद्धेय स्वामी श्री कृष्णानन्दजी, भाई श्री शान्तिलालजी जोशी और ठाकुर श्री नाथूसिंह जी की त्रिमूर्तिका साक्षात् दर्शन हुआ, जहांपर केवल जन कल्याण, विश्वकल्याण की एक मात्र पवित्र भावनासे ही वे तपश्चर्या कर रहे हैं।

इन तीन दिनोंमें कल्याण फार्मेसी, धर्मार्थ औषधालय, चिकित्सालय, कार्यालय आदि संस्थाओंका सूक्ष्म निरीक्षण कर चित्तमें बड़ी प्रसन्नता हुई।

पूजनीय स्वामीजी की सौम्य छत्र छायामें, ठाकुर साहेबकी योग्य सहायतासे श्रीमान् विद्वान्, धीर, गम्भीर शान्त, प्रतिभाशाली, प्रेरणामूर्ति शान्तिलालजी भाई जो कार्य एकात्म भावसे कर रहे हैं वह भारतके वैद्य समाजके लिये अनुकरणीय हैं।

जिस लगनसे, जिस निस्वार्थतासे, जिस कल्याणकारी भावनासे अल्प समयमें जो दुष्कर ठोस कार्यकर दिखाया है वह उल्लेखनीय तथा धन्यवादके पात्र है।

परम कृपालु परमात्माको मै हृदयसे प्रार्थना करता हूँ कि इन सज्जनोको सुखी दीर्घायु देवें और इस संस्था की अत्यधिक उन्नति करें।

वैद्य हरिप्रसाद सी. भट्ट
आयुर्वेदाचार्य (बड़ौदा वाले) सेन्ट्रल आयुर्वेदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट जामनगर (सौराष्ट्र भारत)

पूज्य श्री !

बाहरसे आए तथा इधरके भी जो वैद्य महानुभाव थे सबने मुक्त कण्ठसे, श्री शान्तिलाल भाई के परिश्रम तथा सम्मेलनके प्रबन्ध की, प्रशंसा की है तथा सब लोग सन्तुष्ट होकर गए हैं यह सब आपकी तपस्याका ही परिणाम है, परम पितासे मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि आपको पूर्ण रुपेण स्वस्थ रक्खे जिससे संस्था पर आपकी छत्र छाया सदैव बनी रहे, और आप अपना परिश्रम सम्पन्न होता देख सकें।

आपका
वैद्य रमेशचन्द्र व्यास
अजमेर

—: विशेष सूचना :—

कागजकी समस्या विकट होनेसे बहुतसे महानुभावोंकी सम्मतियां तथा सम्मेलन की सफलताके संदेश हम नहीं दे सके हैं। अगले अंकमें प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे।

प्र० संपादक

इसी अंकमें एक बडे माननीय वैद्यराज एवं राजकीय सेवामें उच्चपद प्राप्त महारथी का लेख वद्ध भाषण प्रकाशित हुआ है, ये महानुभाव आयुर्वेदके महारथी है, एवं रसशास्त्रके कुछ ग्रथोंका पठन किया है, क्रियानुभव एवं रहस्यको नही प्राप्त कर सके है। आयुर्वेद भवन, कालेडापर आपकी सदा ही कृपा-दृष्टि रही है, इस हेतुसे आपको एव अन्य पाठको को उत्पन्न हुई शङ्काके संबधमे यह स्पष्टी करण किया गया है।उसपर लक्ष्य देनेकी कृपा करें।

अ० भारत.पारद अनुसंधान सम्मेलनकी प्रदर्शनी में जो बुभुक्षित पारद रखा गया था। वह उत्तम कोटि का बुभुक्षित बनाया हुआ था, स्वर्ण वर्कका ग्रास देनेपर उसे तत्काल ग्रहण कर लेता था, और अपने स्वरूपमें मिला लेता था, वही वैद्योंके समक्ष दर्शाया था।

पारद-अष्ट संस्कारसे बुभुक्षित किया जाता है। फिर समुख बनाना हो तो सुवर्ण भस्म (अर्धमारित) और सुवर्णमाक्षिक सत्व भस्म दोनोका ग्रास दिया जाता है। क्षार, विड आदि मिलाकर प्रयत्न करनेपर पारद उसे ग्रहण कर लेता है किन्तु प्रदर्शनीमें स्थित पारदको उग्र बुभुक्षित बनाया था, जिसको बिड और सुवर्ण माक्षिक सत्व भस्म आदिकी आवश्यक्ता नही रही, स्वर्णके वर्कको मिलानेपर ही तत्काल ग्रस कर भक्षन कर लेता था।

इस तरह सुवर्णका ग्रास देनेके पश्चात् गधक जारण कराकर यथाविधि अभ्रक सत्व भस्म और सुवर्ण माक्षिक सत्व भस्म दोनोको मिलाकर यथाविधि ग्रास दिये जाते हैं। ६४, वा ३२ वा, १६ वां, ८ वां ४ था हिस्सा इस क्रमसे या भगवद् गोविंदपादाचार्य मतानुसार ६४ वां, ४० वां, ३० वां, २० वां, और १६ वां हिस्सा दिया जाता है। पहले ४ ग्रासोका चारण स्वेदन यन्त्रमें बिड मिलाकर कराया जाता है। फिर कच्छप यन्त्रमें तत्पश्चात् जारणार्थ तप्त खल्लकर उपयोग होता है। इस तरह समुख पक्षच्छिन्न पारद (मक्खन जैसी स्थिति वाला), अग्निपर स्थिर रहने वाला तैयार होता है। यदि पहले सुवर्णका ग्रास नहीं दिया जायगा, तो पारद निर्मुख पक्षच्छिन्न होगा।

तत्पश्चात् सुवर्ण बीजका जारण कराया जाता है। सुवर्ण बीजके निर्माणार्थ विरोधी उपधातुओको मिलाकर पुट दिये जाते है तथा अनेक भावनाएं दी जाती है। फिर उस सुवर्ण भस्मका ग्रास यथा विधि सुवर्ण जारण करा सके वैसा बिड मिलाकर उक्त पक्षच्छिन्न पारदको या पारद खोटको लिया जाता है। उसमे भी जारण गर्भ द्रुति, जारण अभ्रक सत्व के समान कराया जाता है। बीज पारद वेधी, ताम्र वेधी, रौप्य वेधी या चन्द्रार्क वेधी जैसा बनाना हो, उसके अनुरूप मारण आदि क्रिया कराई जाती है।

पहले चारण दोलायन्त्रमें फिर कच्छप यन्त्रमें तथा तप्त खरल आदिमें यथा नियम कराया जाता है। "जारणाहि नाम पातनगालन व्यतिरेकेण घन हेमादि ग्रास पूर्वक रसस्य पूर्वावस्थाप्रति-पन्नत्वम्" यह व्याख्या उक्त अभ्रक सत्व भस्म और सुवर्ण बीजके जारणकी दर्शायी है। समुख पारद बनानेके निमित्त जो ग्रास दिया जाय, उसके लिए यह कथन नहीं है।

सुवर्ण पूरा पूरा पारदमें जीर्ण हो जाता है, यह भी भ्रान्ति है। रसशास्त्रका योग्य बोध न मिलनेके

कारण है। सत्वांशका जारण होता है, शेष मल भाग विड् सह उष्ण कांजीसे धोनेके साथ उसमें आ जाता है। सुवर्ण बीजके निमित्त बनाई हुई भस्ममें सुवर्ण के साथ विरोधी धातु-उपधातुके अंश और वनस्पतिके क्षार भी होते हैं। उनमेंसे ग्राह्य अंश ही ग्रहण होता है। जैसे मनुष्यके भोजनका पूर्णांशमें रस, रक्त आदि धातु नहीं बनती उसी तरह सुवर्ण आदि ग्रासका भी समझना चाहिए। पक्षच्छिन्न पारदका या पारद खोट, किसमें बीज मिलाया, यह भी विचार करना चाहिए। दोनोंकी विधिमें कुछ अन्तर है। आपने अपने लेखमें लिखा है कि.—

६४ वां हिस्सा ग्रास सुवर्ण या अन्य धातुका डाला जाता है यह कथन पूर्ण सत्य नहीं है। आयुर्वेद प्रकाश कारने लिखा है कि —

अथ सिद्धमते दोलायन्त्रेण हेमजारण यथा —

समासं पञ्च षड्भागै र्यवक्षारै र्विमर्दयेत्।
सूत तत्षोडशांशेन गन्धेनाष्टांशकेन वा ॥
ततो विमर्द्य जम्बीर रसे वा काञ्जिकेऽथवा।
दोलापाको विधातव्यो दोलायन्त्रमिदं स्मृतम्।
दिनत्रय या जीर्णार्थं दोला—
पाको विधातव्य इति भावः ॥

अब सिद्धमत (आयुर्वेद प्रकाशके अनुभूतमत) अनुसार समुख पारद बनानेके लिए सुवर्णके जारण विधि पारदके साथ १६ वां हिस्सा सुवर्णका पतरा (वर्क) तथा पाचवां या छठवां भाग जितना गन्धक या अष्टमांश गन्धक मिला, मर्दन करा, नींबूके रस या काञ्जीके रससे यथाविधि दोलायन्त्रमें वाष्प स्वेदन करके पाक करावें।

यह क्रिया सामान्यत: ३ दिन करायी जाती है। यथार्थमें जारण हो जाय, तब तक स्वेदन कराया जाता है।

दूसरा मार्ग कच्छप यन्त्रमें समुख पारद बनानेके लिए सुवर्णका ग्रास दिया जाता है। यहांपर सुवर्ण षोडशांश लिया जाता है, नीचे ऊपर अष्टमांश अष्टमांश विड रखा जाता है। (सबके साथ सुवर्ण, विड और नौसादर मिलाया भी जाता है) समुख पारद बनानेकी विधि देह वादके लिए है। धातु वाद मेंइसकी आवश्यकता नहीं है। एवं ६ ग्रास दिया जारण, यह भी नियम है। इसके आगे पुनः गन्धक जारण करा लिया जाता है। पश्चात् अभ्रक सत्वके यथा विधि ५-६ ग्रास देकर जारण कराया जाता है। तदनन्तर सुवर्ण बीजकी भस्मका जारण भी ग्रास मर्यादाको सम्हालकर चारण और जारण कराया जाता है।

समुख पारदार्थ सुवर्णका पतरा लिया जाता है। सुवर्ण बीजके लिए पतरा या वर्क कदापि नहीं चल सकता। सुवर्णमेंसे बीज भावकी प्राप्ति बड़े प्रयत्नसे करायी जाती है। विधि शास्त्रमें स्पष्ट कही हुई है।

अब समुख पारद बुभुक्षित बनानेके लिए रसेन्द्र चिन्तामणिकार का मत भी देखें। वे लिखते हैं कि:—

त्रिगुणमिह रसेन्द्रमेकमंशं
कनक पयोधर तार पङ्कजानाम्।
रसगुण बलिभिर्विधाय पिष्टिं
रचय निरन्तरसम्बुभिःकुमार्या ॥

३ भाग पारद और १ भाग सुवर्ण, अभ्रक, रजत; ताम्र, इनमेंसे एकका या सबका १-१ भाग मिलाकर फिर पारदसे ६ गुना गन्धक मिलाकर यथा विधि कज्जली करे। उसे घी कुमारके रससे ७ दिनतक मर्दन करके पिष्टी बनावें। फिर नलिका डमरू यन्त्रमें या काच कूपीमें यथा विधि जारण करावें।

६४ वे हिस्सेका ग्रास पहले फिर क्रमशः मात्रा बढाकर ग्रास देना, यह विधि समुख बनानेके निमित्त नहीं है। इस सम्बन्धमें सब आचार्योंकी संमति है।

आपके लेखमें "इसी प्रकार जारणके बाद पारद का बन्धन माना गया है।" तथा ४ पक्ति के बाद ही उल्लेख किया है कि "बन्धन संस्कारके बाद पारदमें

अभ्रक सत्वके जारणाकी शक्ति पैदा हो जाती है।"

यह कथन रस शास्त्रकी क्रियाका अनुभव न होने से लिखा गया है। जारणके बाद पारदका बन्धन होता है और बन्धन भी संस्कार रूप। बन्धन संस्कार करने पर अभ्रसत्वके जारण की शक्ति पैदा हो जाती है, यह कथन भूल वाला है।

रसहृदयतन्त्रकारने चतुर्थ अवबोधमें लिखा है कि—

मुक्त्वैकमभ्रसत्वं नान्य पक्षापकर्तने समर्थं।
तेन निरुद्ध प्रसरो नियम्यते बध्यते च सुखम्॥३॥

अभ्रक सत्वके अतिरिक्त अन्य किसी भी द्रव्यमें पारदके पक्षच्छेदन करनेकी शक्ति नहीं है। अभ्रक सत्व के ग्रासोंको यथा विधि चारण, गर्भद्रुति और जारण करानेपर ही सुखसे पारद की चञ्चलताका नियमन और बन्धन हो जाता है।

इसी तरह धरणीधर संहिता कारने भी कहा है कि—गगनग्रासं विना पारदस्य बलवत्वं वेधकशक्तिः पक्षच्छेदश्च न संभवस्यतो गगनग्रासादि संस्कारा कर्तव्याः॥

इन चारण, गर्भद्रुति और जारणके अतिरिक्त कोई बन्धन संस्कार नहीं है। आचार्योंने यद्यपि २५(या २६) जातिके बन्धन माने हैं किन्तु वे संस्कार (शुद्धि या गुणाधानके निमित्त होवे संस्कार) नहीं है। जो २५ जातिके बन्ध कहे है, उनके लिए जारणाके अनन्तर ही होना चाहिए, यह आग्रह नहीं है। उदा० क्रिया हीनबद्ध, क्षारबद्ध, पिष्टी बद्ध, कल्क बद्ध. कज्जली, पर्पटी आदि बनानेमें जारण किया हुआ ही पारद लिया जाय, यह आग्रह नहीं है।

मात्र कुछ बन्ध ऐसे हैं, जो अभ्रक जारण करके पारदको पक्षच्छिन्न बनाने परही किये जाते है। इस सम्बन्धमें रसहृदयतन्त्र कारने आगे लिखा है कि:—

पक्षच्छेदमकृत्वा रसबन्धं कर्तुमीहते यस्तु।
बीजैरेव हि स जडो वाञ्छत्यजितेन्द्रियो मोक्षम्॥

जिस तरह अजितेन्द्रिय (मन और इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त मनुष्य) निर्विकल्प समाधिको सिद्ध करके मोक्षकी वाञ्छा करता है, उसी तरह अभ्रक सत्वकी भस्मके चारण, गर्भद्रुति और जारण द्वारा पक्षच्छेद न करते हुए (सुवर्ण, रौप्य, आदिके बीजों की भस्मोंके जारण द्वारा) रस बन्ध (निर्जीव बन्ध, निर्बीज बन्ध, सबीज बन्ध या शृङ्खला बन्ध आदि करने का प्रयास करते हैं, वे जड़ (मूर्ख) हैं।

भाषणमें जो कहा है कि "बन्धन संस्कारके बाद पारदमें अभ्रसत्वके जारणाकी शक्ति पैदा हो जाती है।" यह रसशास्त्रकी अनभिज्ञताके कारण कहा है।

पुनः आगे कहते है कि "सुवर्ण ग्रासका जब जारण होता है तो उसकी दो क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। पहली देह सिद्धि और दूसरी लोह सिद्धि यह कथन भ्रमोत्पादक है। सुवर्णका ग्रास नहीं दिया जाता और सुवर्णके ग्राससे न देह सिद्धि होती है और न लोह सिद्धि। सुवर्णको बीज भावकी प्राप्ति करानेके पश्चात उसका आवाप करानेसे लोह सिद्धि (सुवर्ण सिद्धि) होती है। एवं देह सिद्धिमें भी वह सहायक बनता है। उसके आगे भी कुछ वचन और भी भ्रान्तिमें डालने वाले है। हमारे लेखक पूज्य पथ प्रदर्शक है, उनकी विरुद्धमें लेखनी उठावें, या कहे, हमें ही हृदयमें दुःख होता है। अनुसंधानका कार्य किया है, वह पाखण्ड नहीं है। जो हम मौन रहते है, तो अनुसंधानका कार्य पाखण्ड पूर्ण है, ऐसा वैद्य समाजको भास होता। इसलिये निरुपायवश हमें लिखना पड़ा है।

—सहायक संपादक
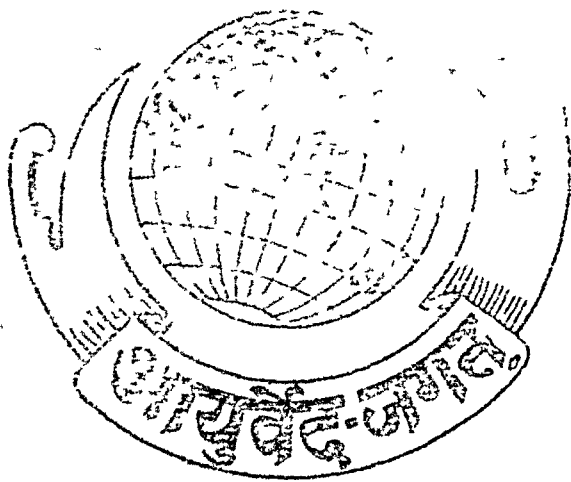
नम्र निवेदन

यह अंक प्रकाशन करनेमें देर हुई है, लेख यथा समय न मिलनेसे क्रिया क्रम या लेख क्रम नहीं सम्हाल सके। कई महानुभावोंके फोटो न मिलनेसे चित्र नहीं दे सके, किसी महानुभाव लेखकका विशेष परिचय इस अंकमें प्रकाशन करानेमें असमर्थ रहे, प्रूफरीडर कम्पोजिटरोंके विवाहादि कारणसे अधिक अनुपस्थिति रहनेसे प्रमाद वश छपाईमें भूल हुई हो, एवं अन्य जो जो दृष्टि दोषसे या समझके बाहर रह जानेसे भूल हुई हो, उसके लिए सविनय कर बद्ध क्षमा याचना करते हैं।

संस्था छोटेसे प्रारंभ किस तरह अधिक स्थिर बनी, विकसित हुई इस सम्बन्धमें कई सज्जनोंने प्रश्न किये थे। अनेक नहीं पूछ सके होंगे या लिख सके होंगे. उन सबके लक्ष्यमें संस्थाकी स्थापना, सेवा करने का उद्देश्य, नीति, स्थिति आदि जान सके, एव पारद अनुसन्धान कार्य कर्ज करके क्यों कर रहे हैं? तथा कर्ज होते हुए भारत वर्षके प्रत्येक प्रान्तोंसे वैद्योंको निमन्त्रित कर सम्मेलन बुलाकर क्यों कर भार बढ़ाया? ये सब आप जान सके इसलिए इनका स्पष्टीकरण श्री ठा० नाथूसिंहजीने पहले ही लेखमें किया है। जिस परसे सत्य आप सबको विदित हो सकेगा।

यह सेवा करने वाली संस्था है। पूर्ण नीतिका पालन करती है। रोगी, ग्राहक, कर्मचारी और लेन देन करने वालोंके साथ मनसा-वाचा-कर्मणा कभी लुच्चाई नहीं होती है; किसी को अन्याय नहीं दिया गया और भविष्यमें भी यही नीति दृढता पूर्वक पालन होती रहेगी। यहांपर औषध कृतिमें स्वार्थकी दृष्टि नहीं रखी गई। सेवा भावना ही रखकर औषध निर्माण होता है। यह भावना औषध उपयोग करने वाले वैद्य सब जानते ही हैं और अपरिचित जन व्यवहार करनेपर जान सकेंगे। "सेवैव परमोधर्म." यह हमारा सिद्धान्त व्यवहारके भीतर दृढ रहा है और रहेगा।

पारद परिचय, रस रसायनमें आने वाले द्रव्योंका परिचय, उनका शोधन, भस्म निर्माण विधि, पारद के संस्कारकी क्रिया, क्रियामें हेतु, नियम, आगेके गुणाधान कर्म, रस निर्माण विधि, कूपीपक्व निर्माण विधि; चिकित्सोपयोगी सूचना आदि लेख जो जो आवश्यक हैं, वैद्य समाजके विशेष उपयोगी हैं, और हमें मिल सके या लिख सके, वे सब दिये गये हैं।

संमेलनके समय जो वैद्य बन्धु दूर दूरसे पधारे थे। उनको संतोष देनेका हो सके उतना प्रयत्न किया गया था। क्रिया बोध, वस्तु बोध, द्रव्य परिचय, द्रव्य दर्शन आदि भावना वालोंको संतोष मिला है। ऐसा अनेक सज्जनोंने हृदय पूर्वक स्पष्ट कहा था और लिख भेजा है।

कुछ सज्जन राजस्थानमेंसे एवं २-४ बाहरके विशेष भावनासे पधारे थे। उनको सुवर्ण सिद्धिकी चाहना थी। वे सब इस विद्याका निचोड चाहते थे। सरल अनुभूत प्रक्रिया चाहते थे। कईयों ने स्पष्ट शब्दोंमें और कईयोंने मार्मिक शब्दोमें यह कहा। हताश होकर कुछ सज्जन क्रुद्ध हुए। उन से हम सविनय कर बद्ध क्षमा याचना करते हैं और स्पष्टीकरण करते हैं कि यह संमेलनका उद्देश्य वैद्य बन्धुओंकी आयुर्वेदोपयोगी क्रिया का परिचय देना था, जो हमें मिला है, सुवर्ण सिद्धि नहीं था। सुवर्ण सिद्धि हमारा विषय नहीं है। अविषयमें हम किस तरह संतोष प्रदान कर सकेंगे। आप ही पुनः शान्त हृदयसे विचार करनेकी कृपा करें। हम हमारी असमर्थता हृदय पूर्वक स्वीकार करते हैं। आपको हम पर नाराज न होना चाहिए। प्रसन्न हो और क्षमा प्रदान करें।

यह संस्था किसी मौज शोक करने वाले मालिको

की नहीं है। यह तो सेवा करने वाली संस्था है। इसके मालिक जनता जनार्दन हे। संस्थाका नियन्त्रण भविष्य में व्यवस्थित रहे, इसलिए स्वामी जी महाराजने जागीरदार जो आज भी सेवा भावी हैं, वैसे सज्जन, व्यापारी, डाक्टर और वकीलोको सस्थाके संरक्षक (ट्रस्टी) बनाये है। इस सस्थाका हिसाब व्यवस्थित रखा जाता है। प्रतिवर्ष ऑडीटरो द्वारा ऑडीट कराया जाता है और रिपोर्ट प्रकाशित करायी जाती है। इस तरह इस सस्थाकी स्थापना सेवा भावनासे ही हुई है। अतः स्वार्थको प्रधानता नहीं देती और आगे नहीं देगी।

इस संस्थाके कार्यमे आप सब सहायक बने, सेवा कार्यको सुदृढ बनानेका मार्ग और साधन हमें बतलावें आप हो सके उतनी तन-मन और धनसे सहायता करें ? यह आप सबसे नम्र निवेदन है।

धातु वाद पर कुछ प्रकाश डालना था। समय पर लेख तैयार नहीं हो सके। अतः रह गया है। कई द्वन्द्व, मकर बनाये गये हैं, मोगिया, अग्नि स्थायी सोरा, टकण, मल्ल, ताल, शिला आदि बनाये हैं, इन का उपयोग विशेषतः धातुवादमें होता है। ये सब क्रिया सही तो है, यह जाननेकी जिज्ञासासे निर्माण किये गये हैं। एवं इनका उपयोग औषध प्रयोगोंमें हो सकेगा या नहीं ? इनके आश्रयसे पारदका उडनेमें रक्षा हो सकेगी या नहीं ? बुभुक्षित और पक्षच्छिन्न सरलता से हो सकेगा ? ये सब प्रयोग करके निर्णय करेंगे। अभी हम विकट वनोके भीतर हैं या महा समुद्रके भीतर झौका खा रहे है। फिर भी हमे जितना बोध मिला, उतनोंका परिचय देनेके निमित्त आप सबको कष्ट दिया था। (सुवर्ण सिद्धिकी विद्या प्रदानार्थ नहीं)।

—सहायक सम्पादक

कृष्ण गोपाल धर्मार्थ चिकित्सालय

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन द्वारा सचालित कृष्ण गोपाल धर्मार्थ चिकित्सालय एवं आतुरालयमें १ मार्च सन् १९५९ से ३० अप्रेल सन् १९५९ तक २ मासमें ८१४७ रोगियोकी निःशुल्क चिकित्साकी गई उनमें नूतन रोगी १९२७ पुरातन रोगी ६२२० आये। नवागन्तुक रुग्णोंका रोगानुसार विवरण निम्न प्रकार है।

वातरोग ८९, अतिसार प्रवाहिका ३०, उन्माद १, उदररोग ८०, जीर्णज्वर ३८, पाण्डु कामला १८, कृमि ५, गुल्म १, रक्तस्राव ३, अजीर्ण-अग्निमांद्य ५९, चर्मरोग ६, रक्तपित १, शीतपित्त ३, मासिक धर्म विकृति १, शोथ २५, भग्न १, प्रसूतज्वर ४, पित्त प्रकोप ४, स्वरभंग २, कुकुरकास ४, निद्रानाश १, वमन १, स्मृति नाश १, हृदयरोग ६, उपदंश ६, अपस्मार न्यस्तना १, राजयक्ष्मा १५, मधुमूत्र १, श्वसनक ज्वर १४, ज्वर २७३, नेत्ररोग २१९, अम्लपित्त १०, प्रदर २१, अन्तर्विद्रधि २८४, दद्रुपामा ३०, दन्तरोग ७, प्रमेह ३४, आन्त्रिक ज्वर ८, सग्रहणी ९, कुष्ठ १, वि० ज्वर ५३, रक्तविकार १२, कास १६२, प्रतिश्याय ४२, कटरोग २ प्रसूताज्वर १७, श्वास कास ९९, विबंध २१, अर्श १४ कर्णरोग ६३, निर्बलता २३, शिरदर्द २२ पूयमेह २।

—हमारे एजेण्ट—

१. श्री दौलतराम शिवचरणदासजी
   कचहरीरोड (अजमेर)
२. श्री निहाल मेडिकल स्टोर
   गांधी बाजार भीलवाड़ा (राज०)
३. श्री वैद्य लक्ष्मीनारायणजी शर्मा
   तहसीलदारोंका रास्ता, रमा फार्मेसी (जयपुर)
४. श्री मोहन शुद्ध खादी भण्डार
   रामपुरा बाजार कोटा (राज०)
५. श्री वैद्य ओंकारलालजी
   ग्रामीण स्वास्थ्य सुधार केन्द्र भीनी रेतीका चौक
   उदयपुर शाखा—नाथद्वारा (राज०)
६. धन्वन्तरि औषध भंडार
   मांडवो, टावर रोड जामनगर (सौराष्ट्र)

साहित्य-समालोचना

सहयोगियोंका सम्मान

धन्वन्तरिका काय चिकित्सा विशेषांक—

प्रस्तुत विशेषांकमें बहुत ही उत्तम ढंगका चुनिन्दा साहित्य संग्रह किया है जो कि आयुर्वेदज्ञोंके लिए मननीय व रुचिकर है। जिसमें भी सम्पादक महोदय जीने भिन्न भिन्न ५७ प्रकारके विषयोका बड़ा ही मार्मिक तथा हृदयग्राही विवेचन किया है वह विशेष उपादेय है। काय चिकित्सा का अष्टांग चिकित्सामें प्रमुख भाग है क्योंकि बिना 'काय' के अन्य भिन्न-भिन्न सभी चिकित्सायें बेकार ही हैं। "चरकस्तु चिकित्सिते" चरकका मुख्य प्रतिपादनीय विषय काय चिकित्सा ही है। अत. तत्पदानुगामी यह विशेषांक जनताका उपकारक तो है ही किन्तु काय चिकित्सको एवं कायचिकित्साके हर श्रेणी के विद्यार्थियो को भी सहायक सिद्ध हो सकेगा।

दी टेक्स्ट बुक ऑफ आयुर्वेद आयुर्वेद शिक्षा

संपादक—डा० ए० लक्ष्मीपति भिषगरत्न

वोल्यूम न० १ के भाग १ तथा २ दोनो ग्रंथ:—

भारतीय आयुर्वेद शास्त्र एवं चिकित्साकी पुरातनता एवं पूर्ण विज्ञान मय होनेके ठोस प्रमाणोंके पोषक हैं।

स्थान स्थान पर लेखक महोदयकी विद्वत्ता एवं सफल परिश्रमकी सूचना मिलती है। ये ग्रन्थ आयुर्वेद शास्त्रको जीवित रखनेमें आदर्श हैं। इन ऐसे ग्रंथोको आयुर्वेदाचार्य जैसी उच्च कक्षाओंके पाठ्यक्रमोंमें अवश्य रखनेसे भावी शिक्षार्थियोंसे आयुर्वेदकी स्थिरता निसंदेह बनी रह सकेगी।

पुस्तक साइज दोनों भाग पृष्ठ संख्या ११७५।

आभार प्रदर्शन

श्री वैद्यराज बापालाल गड़बड़दास जी के यहांसे समालोचनार्थ २ पुस्तकें हमें प्राप्त हुई थी। किन्तु पू० स्वा० कृष्णानन्दजी महाराज तथा श्री राजवैद्य श्री शांति लालजीके जल वायु परिवर्त्तन हेतु बाहर पधार जानेके कारण हम उनका उल्लेख नहीं कर सके हैं। दोनो पुस्तकोंकी प्राप्ति हेतु हम उनके आभारी हैं।

साभार प्राप्ति स्वीकार

श्री स्वामी अखण्डानंदजी महाराज सस्तु साहित्यवर्धक कार्यालय अहमदाबाद

निम्नलिखित गुजराती साहित्यकी ९ पुस्तके प्राप्त हुई। हम उक्त संस्थाका सानन्द आभार प्रदर्शन करते हैं:—

१. मोक्षनो मार्ग
२ माण्डूक्य उपनिषद्
३. त्रीजी आंख
४ श्रेष्ठ हास्य प्रसंगो
५ काव्य संक्षेप
६. समर्पण
७. आत्म चिन्तन
८ रमूजी वार्त्ताओं
९. काठियावाड़ नी दंत कथाओ

निम्न लिखित तीनो छोटे संग्रहोमें अपने अपने विषयोका प्रतिपादन बड़े सुन्दर ढंगसे किया गया है। तदनुसार आचरण करते रहनेसे रोगसे त्राण मिल सकता है। तीनो लघु संग्रह ग्रहस्थियोंको अवश्य रखने चाहिये।

१ आहार सूत्रावली
२. मट्ठा या छाछके उपयोग

३. अनुपान विधि

प्रकाशक—श्यामसुन्दर रसायन शाला
गयाघाट-बनारस

आरोग्य विज्ञान

मई १९५९ अक्षय तृतीयाके शुभ मुहूर्त्तमें आरोग्य विज्ञानका पुन' प्रकाशन भारतके प्रख्यात वयोवृद्ध, अनुभवी वैद्यराज श्री प० ख्यालीराम जी द्विवेदी, आ. आचार्य आ. मार्त्तण्ड, चि. चूड़ामणि D. I. M. S. A. के प्रधान सम्पादकत्वमें प्रारम्भ हुआ है।

हम सहयोगीका स्वागत करते हुये आयुर्वेद विज्ञान के विज्ञान पूर्ण अनुभवो द्वारा वैद्य जगतको आलोकित करेगा ऐसी आशा करते हैं।

जटिल रोगोंकी सफल चिकित्सा

लेखक ने अपने अनुभवके आधार पर अति कष्ट साध्य व्याधियोके स्वयके अनुभूत तथा रोगियो पर अनेकशः प्रयोजित योगो द्वारा स्वस्थ हुये रोगियोंकी चिकित्साका सप्रमाण उल्लेख किया है। साथ ही अनुभूत प्रयोगोंका भी। यह निर्विवाद सत्य है कि आपने अच्छे अच्छे प्रतिष्ठित व कष्ट साध्य नागरिकोकी व्याधि चिकित्साका वर्णन किया है। वैसे ही सैकड़ो निर्धन व्यक्ति भी आप द्वारा अवश्य लाभ उठाते होंगे। प्रस्तुत पुस्तक चिकित्सकोके लिए मार्ग प्रदर्शिका है।

पृष्ठ ११७। मूल्य २)

प्रकाशक—वासुदेव आरोग्य वाटिका
जम्मू (काश्मीर)

सामार प्राप्ति स्वीकार

केन्द्रीय आयुर्वेदान्वेषण संस्था जामनगर

१ वार्षिक रिपोर्ट–१९५४-५५ एवं १९५५-५६।

१ वार्षिक टेकनिकल रिपोर्ट–१९५४-५५ एव १९५५-५६

१–निदान चिकित्सात्मक कार्यका प्रतिवेदन—
१९५४ से ५६

प्रबन्ध सम्पादक

आभार प्रदर्शन

श्री रायसाहिब लक्ष्मी नारायण ट्रष्ट बोर्ड देहली का हम परम अनुग्रह मानते हैं कि आपने अपने ट्रष्ट बोर्ड की ओरसे अपने वैद्यराज महोदयको सम्मेलनमें भेजनेकी महती कृपा की है। व्यवस्थापक—

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन
कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर)